बस्तर के पास आदिवासी क्षेत्र हेमलकसा में डा. प्रकाश आमटे और पुस्तक के लेखक विलास मनोहर लगभग 25 वर्षों से बेसहारा जंगली जानवरों को अपने बच्चों सा स्नेह देकर उन्हें जीवन-दान दे रहे हैं। बिना किसी सरकारी सहायता के शुरू किया गया उनका यह कार्य जंगली जानवरों के प्रति असीम स्नेह का परिणाम है। कई बार तो लेखक ने मनुष्यों से कहीं ज्यादा विश्वास इन हिंसक जानवरों पर किया, और हिंसक जानवरों ने भी उनके इस विश्वास की हमेशा लाज रखी।

इन जंगली जानवरों में सिंह, तेंदुए, भालू, पिसूरी, साही, मगरमच्छ, हिरन, बंदर, अजगर सभी प्रकार के जानवर हैं। इनके माता-पिता प्रायः मारे जा चुके होते हैं, और इन शिशुओं की देखभाल प्रकाश और मनोहर स्नेहमयी मां की तरह करते हैं। सिंह, तेंदुए और भालू जैसे हिंसक जानवरों के शावक प्रकाश और मनोहर के घर में उनके बच्चों की ही तरह डोलते फिरते हैं। इनके इस अद्वितीय कार्य की सबसे बड़ी खूबी यह है कि ये जंगली जानवर इनके पास रहते हुए भी पूर्णतः प्राकृतिक वातावरण में ही फल-फूल रहे हैं।

आज जब हमारे जंगलों का सफाया हो रहा है, यह पुस्तक युवावर्ग को आह्वान देती है कि वह भी इसी तरह के कार्यों का बीड़ा उठाये। अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब हम जंगली जानवरों को मात्र तस्वीरों में ही देख सकेंगे।

रु. 50.00

ISBN 81-237-2604-X

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

तरुण भारती

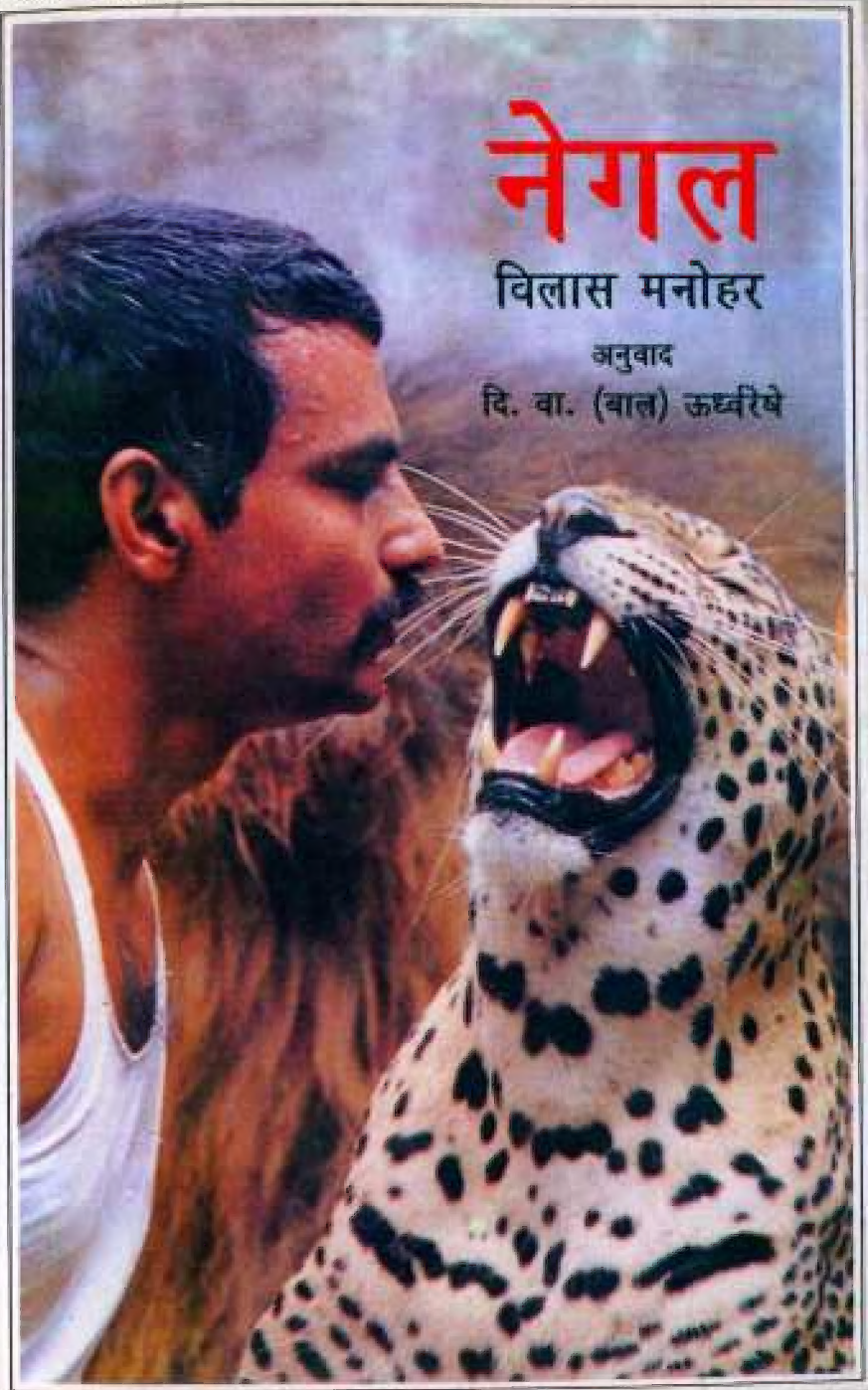

नेगल

विलास मनोहर

अनुवाद

दि. बा. (बाल) ऊर्ध्वरेषे

नेगल

विलास मनोहर

अनुवाद

दि. वा. (बाल) ऊर्ध्वरेषे

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

प्रिय सौ. बालू मौसी तथा दादा कुलकर्णी गोंदिया
को समर्पित जिनकी आर्थिक सहायता से हम
वन्य-प्राणियों के निकट सानिध्य
में रह सके।

—विलास मनोहर

आवरण छायाचित्र : शेखर सोनी

ISBN 81-237-2604-X

पहला संस्करण : 1999 (*शक 1920*)
मूल मराठी © विलास मनोहर
हिंदी अनुवाद © नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1999
Negal (*Hindi*)

रु. 50.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क,
नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित।

आह्वान

सन् 1975 में डा. प्रकाश आमटे के साथ काम करने के लिए मैं हेमलकसा पहुंचा था। हेमलकसा एक आदिवासी गांव है और चंद्रपुर जिले के घने जंगल में भामरागढ़ तहसील में आता था। अब यह भाग गड़चिरोली जिले में आता है। उस समय तक जंगली जानवरों से मेरा संबंध मेरे द्वारा किये गये शिकार तक सीमित था। मैं हेमलकसा पहुंचा तब यहां प्रकाश के पास एक चौसिंगा जाति का हिरन, एक बंदर, एक बड़ी जंगली गिलहरी, 'चिक्कू' नाम की लैब्राडोर जाति की कुतिया, 'कालू' नाम का एक देसी कुत्ता, बस इतने ही प्राणी थे। प्रकल्प प्रारंभ हुए एक वर्ष हो चुका था। जानवरों के जीवित बच्चे आदिवासी लाकर देने लगे थे। सभी जानवर खुले ही रहते थे। हिरन सदा प्रकाश की पत्नी मंदा भाभी के आसपास ही मंडराता रहता था। पहले चार-पांच दिन मैं यह सब केवल देखता रहा। पूर्व में पुणे में रहते समय निर्दयता से किये गये शिकार की यादें आतीं और अपने आप पर कुछ क्रोध भी आता। उस पर अचंभा इस लैब्राडोर जाति की कुतिया को देखकर होता था। इस जाति के कुत्ते खासकर शिकारी ही रखते हैं। पुणे में हमारा 'रेंजर' कुत्ता इसी जाति का था। उसे लेकर हम शिकार खेलने जाते थे। बंदूक की गोली की आवाज सुनते ही रेंजर कूद कर तुरंत दौड़ पड़ता था और मरे हुए जानवर को देखकर अथवा वह यदि जीवित हो तो उसे मारकर ही वापस जीप पर आता था। और यहां तो चिक्कू कुतिया उस जाति की होते हुए भी हिरन को मारने के बदले उसके साथ बड़े आनंद से खेलती थी। जब मैं यहां आया तब मेरे विचार पूरी तरह से शहरी थे। लग रहा था कि हमारा रेंजर कुत्ता रंग से गोरा है और यह कुतिया काली है, शायद इसी कारण यह अंतर होगा।

जैसे-जैसे मेरा उनके साथ रहना बढ़ता गया, मैं समझ पाया कि यह अंतर रंग के कारण नहीं है। यहां के पूरे परिवेश के कारण ही है। इन जंगली जानवरों का व्यवहार आसपास के परिवेश और लोगों के साथ रहने की वजह से बदल सकता है। प्रकाश व मंदा भाभी के सानिध्य में भी ये जंगली जानवर आपस में और दूसरों से प्यार करना सीख गये थे।

पिछले कुछ वर्षों में निसर्ग-प्रेमी लोगों का अनुपात बढ़ा है। उनमें से साठ प्रतिशत लोग पहले शिकारी रहे हैं। इन लोगों में जिज्ञासु और सच्चे निसर्ग-प्रेमी बहुत कम लोग हैं। दूसरे निसर्ग-प्रेमी लोग इन जंगली जानवरों को पिंजरे में बंद रखने के कट्टर विरोधी हैं। जंगल के जानवर जंगल में ही सुखी रह सकेंगे, यह बात हम लोग समझते

क्यों नहीं ? लेकिन क्या आज उन्हें जंगल में रहने लायक माहौल मिल रहा है? जंगलों पर सभी ओर से हमला हो रहा है। मनुष्य घने जंगलों में बहुत दूर तक भीतर घुसकर गैरकानूनी ढंग से जंगल काटकर और शिकार द्वारा जंगली जानवरों की तबाही कर रहा है। पहले जहां जंगल थे वहां अब बसी बस्तियों के जानवरों और वासियों पर ये जंगली जानवर हादसे के तौर पर ही हल्ला बोलते हैं। हमारे आसपास के घने जंगलों में भी इन जानवरों की तादाद इस हद तक घटने लगी है कि उन्हें देखने के लिए लोगों को हमारे प्रकल्प स्थल पर आना पड़ता है, क्योंकि ये जानवर अब जंगल में दिखते ही नहीं। भारतीय चीतों की तरह अन्य जंगली जानवर भी नष्ट हो जायेंगे। ऐसे समय में कुछ जानवरों का पिंजरे में पालन-पोषण किया जाये तो वे जीते जागते अगली पीढ़ी को देखने को मिल सकेंगे। यदि ऐसा न हुआ तो इक्कीसवीं सदी में इन प्राणियों के केवल चित्र ही आने वाली पीढ़ी को दिखाने पड़ेंगे, इस पर कोई विचार नहीं करता।

हमारे पास जो प्राणी पल रहे हैं, उन्हें हमने जंगल में जाकर नहीं पकड़ा है। वे एकदम नन्हे थे तभी आदिवासियों ने उन्हें जंगल से लाकर हमें सौंप दिया था। उस समय यदि हम उन्हें अपने पास रखने से इंकार कर देते तो वे जंगल में जिंदा वापस नहीं लौटते। जंगली जानवरों के वे नन्हे बच्चे उनके मां-बाप को मारने के बाद हमारे पास लाये गये थे। हमने उन्हें बड़े लाड़-प्यार से पाल-पोसकर बड़ा किया है। अब उन्हें भी बच्चे हुए हैं, और वे भी हमारे यहां ही बड़े हो रहे हैं।

कुछ वन्य प्राणी जैसे सिंह इस ओर के जंगलों में नहीं हैं। साथ ही, पिसूरी या बड़ी जंगली गिलहरी जैसे प्राणी शहरों के प्राणी संग्रहालयों अथवा चिड़ियाघरों में भी नहीं हैं। यदि इन जंगली जानवरों को चिड़ियाघरों में अदल-बदल कर रखा जाये तो ये प्राणी सबको देखने के लिए मिल सकेंगे। लेकिन यहीं पर वन संबंधी कानून आड़े आते हैं। वैसी रद्दोबदल करने के लिये वन विभाग अनुमति नहीं देता। निसर्ग-प्रेमी इसके विरोध में अपनी आवाज उठाकर बहुत कुछ कर सकते हैं। ऐसे प्राणियों का पालन-पोषण करने के लिए वन विभाग हमें अनुमति नहीं देता। लेकिन इसके विपरीत विश्व वन्य प्राणी निधि जैसी संस्था के अधिकारी यहां आकर, हमारे साथ यहां रहते हैं और हमारे प्रकल्प को "वन्य प्राणियों का अनाथालय" जैसा नाम देकर, नियोजित निधि से आर्थिक सहायता दे रहे हैं। कानून की विचित्र तलवार सिर पर लटकती रहती है। इस हालत में हमारे पास उपलब्ध सभी साधनों से और अपूर्ण आर्थिक स्थिति में ये प्राणी कैसे पाले जा सकेंगें और अन्य स्थानों पर कैसे पहुंचाये जा सकेंगे—इसी चिंता और भागदौड़ में हम लगे रहते हैं।

पिछले तेरह वर्षों में, इन प्राणियों के सानिध्य में समय बिताते हुए अन्य कई बातों ने मेरा ध्यान आकर्षित किया है। वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए वन विभाग के अधिकारी उत्सुक नहीं हैं। कई बार उन्हें अधूरी साधन-सुविधा, विविध कानून, लाल फीताशाही आदि

का सामना करना पड़ता है। यही कारण हैं कि शिकार कानूनी तौर पर तो बंद हैं, लेकिन फिर भी बड़े पैमाने पर खुल्लमखुल्ला शिकार हो रहा हैं। हमारे आदिवासी तो इतने अलग-थलग हैं कि शिकार करने पर ही उन्हें केवल चखने के लिये मांस मिल पाता है। अन्यथा कई बार तो उन्हें भरपेट खाना भी नहीं मिलता। उनकी भी शिकार करने की अपनी अपनी भिन्न पद्धतियां हैं। आदिवासी लोग केवल अपने शौक-मजे के लिए कभी भी शिकार नहीं करते। कभी उन्हें धार्मिक त्योहारों पर किसी विशिष्ट प्राणी की बलि चढ़ानी पड़ती है तो उस हेतु पूरा गांव मिलकर शिकार करता हैं। लेकिन जिस प्राणी का मांस वे नहीं खाते ऐसे प्राणी का शिकार वे प्रायः केवल खाल प्राप्त करने के लिये नहीं करते।

अपने तेरह वर्षों की 'प्राणियों के प्यार भरे सानिध्य की कथा' पाठकों को बताने के लिये ही मैंने यह लेखन-प्रयास किया है। वैसे मैं लेखक नहीं हूं। लेकिन जैसे-जैसे घटनाएं घटित होती गयीं, मैं लिखता गया। प्रकाश के पास सभी बातों का दिनांक सहित, सिलसिलेवार लिखित विवरण है। उससे मुझे सहायता मिली। प्रकाश के बहुत अधिक अनुभव हैं, साथ ही उसकी जानवरों से अधिक निकटता भी है। वह इन प्राणियों के बारे में भी कई आपबीती सच्ची घटनाएं बता सकता है। मेरी सीमित शक्ति द्वारा जितना हो सका उतना बताने का यह मेरा हार्दिक प्रयास है। 'हमारी तरह ही वन्य प्राणियों को भी जीवित रहने का अधिकार है। वे मजे से रह सकते हैं। जंगल में वे क्रूरता का जीवन जीते हैं — यह कथन बिल्कुल गलत है। शिकार करना उनका स्वाभाविक धर्म है। उसी पर उनका जीवन निर्भर है। फिर भी बिना भूख के कोई भी वन्य प्राणी किसी अन्य जीव को नहीं मारता। कोई किसी से व्यर्थ ही छेड़खानी नहीं करता। वह मनुष्य के समान अनावश्यक संग्रह नहीं करता। अपने लोभ के कारण हम दिन-ब-दिन उनके जंगलों में घुस रहे हैं और उनके विरोध करने पर हम उन्हें ही आक्रामक कहते हैं, क्योंकि वे कुछ बोल नहीं सकते। न उनके पास अस्त्र-शस्त्र हैं और न अपना प्रचार करने का माध्यम ही। डा. प्रकाश ने इन शावकों को अपने बच्चों के समान पाल-पोसकर बड़ा किया है। मैंने तो बस उसका हाथ बंटाया है। उनके स्नेह भरे सानिध्य में हमें आनंद की जो घड़ियां मिलीं वे हम कभी भी भूल नहीं पायेंगे। वही अनुभव इस लेखन के रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हैं।

बाबा आमटे जी ने हेमलकसा में आदिवासियों के लिये दवाखाना, शिक्षा और खेती का काम उपलब्ध कराने के लिए 1971 में "लोक-बिरादरी प्रकल्प"आरंभ किया था। डा. प्रकाश आमटे के साथ, कई अन्य लोगों की सहायता से, हम आज तक यह काम करते आ रहे हैं। यह कार्य करते हुए हमें फुरसत का जो भी समय मिला उसमें हमने यह वन्यजीवन विकसित किया है। भले ही इस प्रकल्प का हमें सहयोग मिलता रहा है, फिर भी आदिवासियों के उपयोग के लिए निर्धारित साधनों का हमने इन जानवरों की भलाई के लिये कभी उपयोग नहीं किया। प्रारंभ से ही श्री कमलाकर कुलकर्णी, श्री मधुकर, और कई अन्य लोगों ने

हमारी सहायता की है। हमने अपना भी कुछ धन इस प्रयोजन के लिये खर्च किया है। विश्व संगठन की आर्थिक सहायता तो है ही। फिर भी उन जानवरों पर होने वाले दैनिक व्यय, पिंजरों की देखरेख, नये पिंजरे खरीदना—इन कार्यों के लिये आर्थिक सहायता किसी से प्राप्त होने पर उसका हार्दिक स्वागत ही होगा। तेंदुए, सिंह आदि के लिए लगने वाले एक माह के गोश्त का खर्च तीन सौ रुपये आता है। पिंजरे में बंद प्राणियों के लिए आवश्यक स्वच्छ हवा, स्थान और सफाई के लिए हमने अपने सीमित साधनों से ही पूरा इंतजाम किया है। लेकिन नये पिंजरे आवश्यक हो गये हैं। छोटे जानवरों के लिये एक पक्का लोहे का पिंजरा बनाने में पांच हजार का व्यय होता है। किसी सहायता करने वाले के चाहने पर नये पिंजरे पर उस दाता या कंपनी का नामपट्ट लगाया जा सकता है।

जंगल बड़ी द्रुत गति से नष्ट हो रहे हैं। संभवतया अगली पीढ़ी को इन जंगली जानवरों की पहचान पिंजरों से ही करवानी होगी। शासन द्वारा डा. प्रकाश के अनुभव तथा ज्ञान का उपयोग करने से नगरों में स्थित कई प्राणी संग्रहालयों की हालत में अत्यावश्यक सुधार हो सकते हैं। वहां के कुछ वन्यप्राणी जंगलों में वापस भेजे जा सकते हैं, इसके लिये भी हम प्रयास कर सकते हैं। लेकिन कुछ कानूनी अड़चने हैं। जनता को भी उस कार्य के लिए सामुदायिक आवाज उठानी चाहिए। बहुत सी प्रकृति प्रेमी संस्थाएं हैं। वे भी बहुत कुछ कर सकती हैं। इस पुस्तक के द्वारा मैंने यह कार्य प्रारंभ किया है। पाठक आंदोलन की संस्था "ग्रंथाली" का इसे प्रमुख सहयोग प्राप्त है। इस पुस्तक से मिलने वाला पूरा आर्थिक लाभ भी मैं इसी कार्य के लिये देने वाला हूं।

आर्थिक सहायता निम्नलिखित पते पर भेजी जा सकती है— डा. प्रकाश आमटे, "वन्य प्राणी अनाथालय" सहायता केंद्र, लोक बिरादरी प्रकल्प, हेमलकसा, पोस्ट भामरागढ़, जिला गडचिरौली (महाराष्ट्र)।

आभार प्रदर्शन की औपचारिकता अच्छी नहीं लगती। फिर भी, प्रारंभ से ही मारुति चितमपल्ली, सुरेश द्वादशीकर, सुधीर शिवदेकर, नृपेन्द्र पौल, इन सज्जनों ने मुझे लेखन हेतू प्रोत्साहित किया है एवं सहायता प्रदान की है। प्रभाकर झारिया, कमलाकर कुलकर्णी, नरेन्द्र पौल, सुभाष रोठे ने कई कार्यों में सहायता की है। डा. प्रकाश आमटे और अनगिनत व्यक्तियों के कारण ही यह कार्य संभव हो सका है। लेकिन हम आपस में आभार प्रदर्शन की रीति पालते ही नहीं है। हम आपस में स्नेहशील कार्यों द्वारा ही उसे प्रकट करते हैं। इस पुस्तक में कुछ स्थानों पर मनुष्य और वन्य प्राणियों के स्वभाव की समानता, असमानता को दर्शाया गया है, वह मेरे स्वयं के व्यक्तिगत विचारों के आधार पर है। लोक बिरादरी प्रकल्प, और वहां कार्यरत लोगों के भी यही विचार हैं, यह मानकर न चलें क्योंकि यह मानना गलतफहमी होगी। वन्य प्राणियों को मैं मनुष्य से अधिक बढ़कर नहीं मानता। लेकिन उन्हें भी हमारे समान ही और उतना ही जीने का अधिकार है, यह भी मेरा दृढ़ विचार

है। यदि असावधानी से कुछ उल्लेखों के परिणामस्वरूप किसी के मन को दुख पहुंचा हो तो मैं पहले ही यहां क्षमायाचना करता हूं।

—विलास मनोहर

एक अगस्त 1985 का दिन हमारे लिए एक स्वर्णिम दिन बन कर आया। सुबह छह बजे ही प्रकाश ने आवाज दी। उसकी केवल आवाज तक में भी उसका आनंद छिप नहीं पा रहा था। मैं भागते हुए 'नेगली' के पिंजरे के पास पहुंचा। कुछ ही समय पूर्व नेगली की प्रसूति हुई थी। रात में दो बार हम उसके पिंजरे के पास हो आये थे। हमारी बनाई हुई लकड़ी की गुफा में उसने अपने को कल शाम से ही बंद कर लिया था। हमारे हिसाब के अनुसार उसे गर्भधारण किये कल ही 93 दिन पूरे हुए थे। प्रसूति होने की पूरी संभावना थी। पिछले चार-पांच दिनों से वह बहुत शांत थी। वह हमारे आसपास ही चक्कर भी काटती रही। अपना प्रसूति समय निकट आने की बात वह जान गयी थी। उसे हमारे सहारे की आवश्यकता थी।

नेगली यानी मादा तेंदुआ। इसे तो वैसे भी विश्वासघाती जानवर कहा जाता है। फिर अब बच्चे होने पर 'नेगली' पैंथरेस हमें आसपास भी फटकने तक नहीं देगी, अपने बच्चों के पास जाने पर वह हम पर झपट पड़ेगी, ऐसा डर सभी के मन में था। किंतु मुझे और प्रकाश को, दो वर्षो के अनुभव के कारण यह नहीं लगता था। लेकिन अन्य सभी के इस तरह कहने से हमारा मन भी कुछ शंकित हो गया था।

पिछले दो वर्षों से नेगली हमारे साथ खुली रहती थी। साथ ही घूमा भी करती थी। साथ ही खाती थी, गोद में सिर रखकर सोती थी। हमारे तेंदुए से वह जरा अधिक ही गुस्सैल थी। लेकिन दो वर्षों में उसने कभी गलती से भी हम पर हमला करने का प्रयास तक नहीं किया। फिर भी सभी प्रकार की सावधानी बरतने के लिए हमने प्रसूति के लिए पूर्व से ही तैयार किये पिंजरे में तीन अलग-अलग कमरे बना रखे थे। दो कमरों में खिसककर बंद होने वाले लोहे के दरवाजे लगे थे। प्रत्येक कमरे में बाहर भी लोहे का दरवाजा था। प्रसूति होने पर नेगल और नेगली को अलग रख पायें तथा हमारे लिए भी बाहर से वहां जाना संभव हो सके, इसका हमने पक्का इंतजाम किया था।

पिंजरे तक मेरे पहुंचने से पहले ही प्रकाश ने नेगली को लकड़ी की गुफा से बाहर आते ही दूसरे कमरे में बंद कर दिया था। प्रकाश पिछले दरवाजे से अंदर चला गया था। मैं भी अंदर गया। अंदर एक ही बच्चा था। गुफा में जाकर हमने उस शावक को बाहर निकाला। वह नन्हा सा था। आंखें बंद थीं, नाखून बाहर निकल आये थे। वह इतना प्यारा लग रहा था कि थोड़ी देर तक हम उसे देखते ही रहे। नेगली पास वाले कमरे के बीच

वाले दरवाजे से हमें देख रही थी। जरा भूखी होने पर वह गले से जैसी आवाज निकाला करती थी, वैसी ही आवाज निकालकर वह अपनी नाराजगी जता रही थी। लेकिन वह क्रोधित नहीं थी। भार तोलने का कांटा लाकर हमने नन्हे बच्चे का वजन देखा जो साढ़े चार सौ ग्राम था। नर शावक जब पहले पहल हमारे पास लाया गया था, तब उसका वजन भी साढ़े चार सौ ग्राम ही था। शावक नर है या मादा, यह निश्चयपूर्वक बताना प्रथम दो सप्ताह तक जरा कठिन ही होता है। उस बच्चे को थोड़ी देर प्रकाश ने और फिर थोड़ी देर मैंने हाथों में लेकर ठीक से देखा। वह नर था। उसे गुफा के प्रवेश द्वार पर रखने पर वह स्वयं ही घिसटते हुए अंदर जा बैठा। प्रकाश ने बीच वाले दरवाजे से हाथ डालकर नेगली को अपना हाथ सुंघाया। प्रकाश ने यह सब इतनी सहजता से किया कि मैं भी थोड़ा घबरा गया। नेगली ने तुरंत उसका पूरा हाथ चाट कर शावक की गंध मिटा दी। उसका बरताव सदा की तरह प्यार भरा ही था। उसके वहां न होते हुए हम उसके बच्चे के पास गये। अपनी नाराजगी वह नजर से प्रकट कर रही थी। वह एक विचित्र सी जोरदार आवाज निकाल रही थी। लेकिन गुफा से बच्चे ने 'म्यांव, म्यांव' जैसी आवाज निकाली तो वह शांत हो गयी। शायद अपने शावक के साथ उसका यह संवाद था। "इन दोनों से तुझे कुछ खतरा नहीं है।" वह अपने बच्चे को शायद यह समझा रही थी।

नेगली मादा तेंदुआ हमारे पास 1 अगस्त 1983 के दिन आयी थी। तब वह तीन महीने की थी। अपनी आयु के 26 वें महीने में गर्भवती होकर उसने इस बच्चे को जन्म दिया था। यह भी एक अद्‌भुत कार्य ही था जो पिंजरे में पैंथर की ब्रीडिंग कराने में हम सफल हुए थे। हम उसी से खुश थे। उसके लिए प्रकाश और मैंने कितने कष्ट उठाये थे और साथ ही घर तथा बाहर वाले कितने लोगों की नाराजगी मोल ली थी, वह हम ही जानते थे। उन सारी मुसीबतों का मीठा फल अब साम्हने था। हम अपने को भाग्यशाली मानते थे। नेगली को किसी भी प्रकार का कष्ट हुए बिना सहज रूप से प्रसूति हुई थी। एक ही बच्चा हुआ, यह अच्छा ही था। बच्चा स्वस्थ था और इस कारण नेगली का स्वास्थ्य भी ठीक रहता था। हम दोनों इतने खुश हुए कि एक दूसरे से बोल नहीं पा रहे थे। अब हमारी जिम्मेदारी बढ़ गयी थी। यह सब सोचते-सोचते हम घर लौट आये। पिछले दस सालों का बीता समय फिर से आंखों के सामने नाचने लगा। प्रारंभ से संभाले हुए सभी जानवर सामने आ गये।

प्रथम, 1975 में मैं जब डा. प्रकाश आमटे के साथ काम करने के लिये हेमलकसा-भामरागढ़ विभाग में घने जंगल में बसे प्रकल्प परिसर में आया तब मेरा वन्य जानवरों से संबंध केवल उनके शिकार करने तक ही सीमित था। मेरे द्वारा किये गये शिकार के संबंध में एक पूरा अलग अध्याय ही बन सकता है। मैंने जीप या मोटरसाइकिल पर बैठकर, बड़े-बड़े सर्चलाइट तथा 315, 306, 22 बोर राइफल और 12 बोर गन की सहायता

से शिकार किये थे। रात के समय वन्य जीव शिकार करने या पानी पीने बाहर निकलते तो मैं उनका शिकार किया करता। इस कारण जंगली जानवरों से मेरा प्रत्यक्ष सम्पर्क तब हुआ जब उनका शिकार हो चुका था। वे मौत के घाट उतारे जा चुके थे।

मैं जब हेमलकसा आया तब प्रकाश के पास एक 'भेकर', चौसिंगा जाति का हिरन, एक लाल बंदर, एक गिलहरी और चिक्कू नाम की एक लैब्राडोर जाति की कुतिया तथा 'कालू' नाम का एक देसी कुत्ता, बस इतने ही जीव थे। तब प्रकल्प प्रारंभ हुए एक ही वर्ष हुआ था। आदिवासी भेंटस्वरूप जिंदा वन्य प्राणी दे जाते थे। भेकर का नाम रखा गया था 'पेंटी' और गिलहरी का 'रेखा'। सभी जानवर पूर्णतः खुले ही रहते थे। पेंटी हिरन सदा ही प्रकाश की पत्नी मंदा भाभी के आसपास ही मंडराता रहता था। विशेष बात यह थी कि पेंटी हिरन और दोनों कुत्ते आपस में आराम से खेलते रहते थे। पहले दो तीन दिन मैं केवल यह सब देखता ही रहा। न मुझे अपने ऊपर विश्वास होता था न उन जानवरों पर। अतीत में पुणे में रहते हुए मैंने निर्दयता के साथ जो शिकार किये थे, उन्हें स्मरण कर मैं उन दिनों के मित्रों और सहयोगियों को कोसता रहा। सब से ज्यादा अचरज होता था 'चिक्कू' लैब्राडोर कुतिया को देखकर। लैब्राडोर जाति के कुत्ते शिकार के लिये सर्वोत्तम माने जाते हैं। पुणे में, जब भी हम शिकार खेलने जाते थे तब 'रेंजर' नाम का हमारा सफेद लैब्राडोर कुत्ता सदैव हमारे साथ रहता था। वह जीप के बोनट पर बैठता था। बंदूक की आवाज सुनते ही वह तेजी से दौड़ता और मरे हुए जानवर या जख्मी जानवर को मार कर उठा लाता था। यहां तो चिक्कू कुतिया उसी जाति की होने पर भी हिरन को मारने के बजाय उससे खेलते हुए दिख रही थी। पहले मै समझा कि रेंजर तो सफेद लैब्राडोर था और चिक्कू काली लैब्राडोर है, इसी कारण यह फर्क होगा। लेकिन दिन बीतने के साथ यह बात मेरी समझ में आ गयी कि "इंसान की पहचान उसकी संगत से होती है।" इस अर्थ की अंग्रेजी कहावत के अनुसार जानवरों का स्वभाव भी उनके आसपास के माहौल और व्यक्तियों के अनुसार बदलता रहता है। प्रकाश और मंदा भाभी के सानिध्य में यहां के शिकारी कुत्तों जैसे प्राणी तक अन्य प्राणियों से प्रेम बांटना सीख गये थे।

एक बार प्रकाश कुछ मेहमानों के साथ जंगल के माड़ीया आदिवासियों के देवता के दर्शन के लिये गया था। जंगल से कुछ आदिवासी दो लाल बंदरों का शिकार करके लौट रहे थे। नर और मादा मारे गये थे। फिर भी मादा की छाती से एक चार-पांच दिन का बच्चा चिपका हुआ था। उसकी मां जीवित नहीं है—इसकी उस बच्चे को कोई खबर ही नहीं थी। परिसर के आदिवासी गत एक वर्ष से डा. प्रकाश को पहचानते थे। प्रकाश ने यह बच्चा उनसे मांग लिया। उन्होंने भी कोई आनाकानी न करते हुए उसे दे दिया। घर लाकर प्रकाश ने बड़े कष्ट उठाकर उसे जीवित रखा। बोतल से दूध पिलाकर, सदा अपने

पास रख कर, उसे बड़ा किया। चार पांच दिन में ही वह अपनी मां को भूल गया। या यूं कहिये वह प्रकाश को ही अपनी मां समझने लगा। बच्चा मादा था और 'बबलाई' जाते हुए वह मिला, इसलिये उसका नाम 'बबली' रखा गया।

बबली नौ वर्ष तक हमारे साथ रही। इन दस वर्षों में हमारे पास कुल 58 वन्य जानवर आये। कुछ का जन्म ही हमारे यहां हुआ। आज हमारे पास 47 वन्य जानवर हैं। लेकिन 'बबली' बंदरिया, 'रानी' भालू (मादा), 'राजा' जंगली भैसा, और 'नेगल' इन्हीं को सबसे अधिक लाड़-प्यार मिला। अभी रानी भालू जीवित है। सांप के काटने से नेगल नहीं रहा लेकिन उसका बच्चा 'हेमल' हमारे साथ है।

बबली प्रारंभ से ही बड़ी नटखट थी। प्रकाश के कंधे पर कंधा या बनियान पकड़कर वह बैठती थी। कभी प्रकाश न भी हो तो हम चार-पांच तो थे ही। फिर भी प्रकाश के बाद बबली को शांताबाई से ही अधिक प्यार था। वह शांताबाई की लाड़ली थी। वह शांताबाई की पिंडली पकड़कर बैठती थी। बचपन में सभी बंदर के बच्चे अपनी मां के पेट से चिपक कर रहते हैं। शांताबाई पूरे घर में अपने काम से घूमती रहे, बबली उसकी पिंडली से चिपकी रहती। क्या बंदर अन्य जानवरों से अधिक समझदार होता है? निश्चित ही। लेकिन मुझे तो वह अधिक धूर्त भी लगता है। चालाक लोमड़ी की कई कहानियां हमने बचपन में किताबों में पढ़ी थीं। हमारे आसपास लोमड़ियां बहुत रहती हैं। समय आने पर अपने भाइयों को भी मार कर खाने वाली लोमड़ियां क्रूर जरूर होती हैं, लेकिन उनकी धूर्तता हमारे देखने में कभी आयी नहीं। ईसप नीति में चालाक बंदर की कोई कहानी नहीं है। ईसप के समय की और आजकल की नीति संबंधी कल्पनाओं में बड़ा बदलाव आने के कारण ऐसा होगा। या फिर भविष्य में वैज्ञानिक बंदर मनुष्य का पूर्वज होने का सिद्धांत रखने वाले हैं, इसका पूर्वाभास ईसप को होगा, इसीलिये उसने धूर्त बंदर की कोई कहानी नहीं लिखी।

बबली 1982 तक हमारे पास रही। प्रकल्प के विस्तार के साथ ही दूर-दूर से माड़ीया, गौंड आदिवासी दवाखाने में रोज सैकड़ों की तादाद में आने लगे। फिर हमारे लिए कुछ पिंजरे बनाना आवश्यक हो गया। बबली की उपस्थिति से लाभ यह हुआ कि उसकी उछल कूद देखते हुए आदिवासी आनंद से बैठे रहते। बबली सब की चहेती बन गयी। बबली से बहुधा कोई नाराज नहीं होता और नाराजगी दर्शाने पर भी उसका कुछ खास परिणाम बबली पर नहीं होता। वह "ची ची" आवाज करते हुए हमारी ही एक दूसरे से शिकायत किया करती थी। फिर उसकी दिलासा के लिये हम एक दूसरे को डांटते। बबली को जो लोग देखने आते, उनमें उसके मां-बाप को मार कर खाने वाले आदिवासी भी होते थे। उसे देखकर उन्हें जीवित जानवर के अच्छेपन पर विश्वास होने लगा। वे आपस में इस संबंध में बातें करते। उसी से हमारे प्राणी-प्रेम का संदेश प्रसारित हुआ था। फिर बाद में

शिकार खेलते समय जंगल में मिले जानवरों के नन्हे-मुन्ने बच्चे वे हमें भेंट में देने लगे। खाने के लिये तथा अपने धार्मिक रीतिरिवाजों के लिये जानवरों के शिकार करने में आदिवासियों के मन में कोई हिचकिचाहट नहीं थी। शिकार तो निर्विघ्न चलता रहा। लेकिन शिकार हुए मां-बाप के बच्चे किसी जानवर के हों, आदिवासी अब उन्हें हमें सौंपने लगे। यहां के आदिवासी किसी भी जानवर का मांस खा लेते हैं। चलने-फिरने वाला कोई भी जंगली जीव वे खा जाते हैं। फिर तो सभी गांव वाले शिकार के समय जीवित पकड़े हुए बच्चे भी हमें आकर देने लगे। उसके बदले में उनकी कोई खास उम्मीद भी नहीं थी। फिर भी हम कुछ न कुछ पुरस्कार उन्हें दे देते थे। बस्तर के अम्बूझमाड़ भाग की पहाड़ी पर रहनेवाले बड़ा माड़ीया लोग कुछ जानवर लाकर देते थे। वे पैसों की उम्मीद रखते थे। इसका एक कारण यह था कि उनके गांव से हमारे यहां आने-जाने तक उनके दो-चार दिन निकल जाते थे। दूसरा कारण यह था कि कई बरसों से बस्तर क्षेत्र में जानवरों की खालें तथा मैना आदि जैसे जंगली पंछी खरीद कर उसका चोरी-छिपे व्यापार करने वाले कई लोग उस इलाके में हैं। उनसे इन आदिवासियों को नगद पैसा मिलता था।

बबली की जाति के लाल मुंह वाले बंदर का एक बच्चा कुमरगड़ा गांववालों ने सन् 1975 में हमें दिया। बबली के कारण जल्दी ही उसने भी इस माहौल को अपना लिया। हमारे पास अभी तक बंदर के आठ-दस बच्चे आ चुके थे, उनमें दो-तीन काले मुंह वाले लंगूर भी थे।

फिर भी बंदर जाति की सही-सही जानकारी हमें जिस लाल मुंह वाले बंदर ने दी, उसका नाम हमने केवल 'पिल्ला' ही रखा था। बंदर हमारे पूर्वज थे, यह अनुभव से सिद्ध हो जाता है। बंदर से आदमी बनने के प्रगति काल में मनुष्य के हाथ-पांव, चेहरा तथा बुद्धि का तो विकास हुआ, लेकिन असली स्वभाव में अधिक बदलाव नहीं आया है। हमारे पूर्वजों का पूरा स्वभाव हमारे अंदर न आकर वह विभाजित हुआ और मनुष्यों के कई प्रकार के स्वभाव बने। मनुष्य के अलग-अलग स्वभावों का मिश्रण हमें बंदर के स्वभाव में दिखाई पड़ता है।

रोज ही शाम को हिरन, दोनों कुत्ते, बंदर, प्रकाश, मंदा भाभी और मैं सब मिलकर नदी किनारे घूमने जाते थे। नदी तीन-चार कि.मी. दूर है। पार्लकोटा, यामुलगौतमी और इंद्रावती नदियों का संगम यहीं होता है। रास्ता एकदम कच्चा है। वह केवल छह महीने खुला रहता है। पिछले साल तक पहली बारिश के बाद ही आठ महीनों तक हमारा बाहरी दुनिया से संपर्क ही टूट जाता था। रास्ते के दोनों ओर माड़ीयों की थोड़ी बहुत खेती होती थी। बाकी सब घना जंगल था, जो आज भी है। 'भेकर' हिरन मंदा भाभी से सटकर चलता था। बबली अधिकतर प्रकाश के कंधे पर ही होती थी। चिक्कू और कालू आगे-पीछे चलते

रहते थे। पिल्लू बंदर एकदम छोटा था। उसे हमेशा किसी न किसी को गोद में उठाना पड़ता था। एक दिन सिर्फ मजाक में ही पिल्लू बंदर को कालू कुत्ते की पीठ पर बिठा दिया। पहले तो कालू ने विरोध किया, लेकिन हमारे डांट देने पर उसने पिल्लू को अपनी पीठ पर बैठने दिया। शुरू-शुरू में तो पिल्लू एकदम कालू से चिपक कर बैठा। लेकिन थोड़ी ही देर बाद, जैसे हम घोड़े पर सवार होते हैं वैसे उसने कालू को सवारी बना लिया। उस दिन से हमें पिल्लू बंदर की कोई चिंता नहीं रही। वह सदा ही कालू की पीठ पर बैठा रहता। कालू भी उसे ठीक से संभालता था। दिन भर प्रकाश के प्रकल्प क्षेत्र में यह जोड़ी घूमती रहती। कालू को पिल्लू फिर जंगल में भी ले जाने लगा। सिंदबाद के किस्से वाले बूढ़े जैसा पिल्लू बंदर हमेशा कालू कुत्ते की पीठ पर सवार रहता। पता नहीं, उनका आपस में क्या और कैसा स्नेह हो गया था। लेकिन कालू ने पिल्लू को कभी अकेला नहीं छोड़ा। जंगल में घूमते हुए बंदर को पेड़ पर कुछ खाने लायक दिखाई देता तो वह झट पेड़ पर चढ़कर खाने जा बैठता। उस समय कालू सिंदबाद की तरह उसकी राह देखते हुए पेड़ के नीचे ही बैठा रहता।

एक दिन संध्या को वे दोनों हमारे साथ घूमने के लिये नहीं आये। रात होने पर भी वे नहीं लौटे। हमें चिंता होने लगी। बंदर और कुत्ते का रास्ता भूलना असंभव था। अंधेरे में ढूंढ़ने जाना भी कठिन था। घने जंगल में कुछ सूझना भी मुश्किल था। रात को 11 बजे कालू के दूर से भौंकने की आवाज आयी। चिक्कू भी भौंकने लगी। बड़ी देर तक यही चलता रहा। चिक्कू अपने दोस्त के लिये बहुत बेचैन हो रही थी। कालू का भौंकना भी 'SOS' की तरह हमें कुछ चिंताजनक लग रहा था। वह शायद हमारी मदद मांग रहा था। चिक्कू मुझे व प्रकाश को उस ओर चलने के लिये सुझाने लगी। फिर लालटेन और कुल्हाड़ी लेकर मेरे और प्रकाश के उठते ही चिक्कू चलने लगी। दो एक कि.मी. चलने पर हमने देखा कि कालू एक पेड़ के नीचे खड़ा होकर परेशान सा ऊपर की ओर देखकर भौंक रहा था। हमें देखते ही वह बहुत खुश हुआ। फिर ध्यान में आया कि पिल्लू बंदर फल खाने के लिये पेड़ पर चढ़ गया होगा। वह इतना मग्न हो गया होगा कि उसके ध्यान में नहीं आया होगा कि अंधेरा कब हो गया और अंधेरा होने पर वह नीचे उतरना नहीं चाहता था। बेचारा कालू अपने दोस्त को रात में वहां अकेला छोड़ना नहीं चाहता था। हमारे आवाज देते ही पिल्लू जी चीं-चीं आवाज करते हुए नीचे उतरे और फौरन कालू की पीठ पर सवार हो गये। अब उसे डांट-फटकार पड़ेगी, इस डर से हमारा ध्यान दूसरी ओर खींचने के लिये वह यूं ही दो-तीन बार चिक्कू की ओर दांत दिखाकर चीं-चीं आवाज करने लगा।

बंदरों के बारे में मेरे अनुभव में सन् नवंबर 1975 की एक संध्या की एक घटना ने बड़ी वृद्धि की। शाम को सदा की तरह हम सब बाहर निकले। धान की फसल कट जाने से खुले खेतों में केवल कुछ पशु ही थे। पेंटी हिरन प्रकाश और मंदा भाभी के बीच में

चल रहा था। सिंदबाद कालू और उसकी पीठ पर सवार पिल्लू बंदर हम से कुछ आगे चल रहे थे। बबली प्रकाश के कंधे पर थी। चिक्कू तो शुरू से ही मेरे साथ चल रही थी। आगे का संयोग इतनी तेज गति से घटित हुआ कि हम कुछ समझ ही न पाये। कालू गलती से गाय के बछड़े के पास गया था या नहीं, कुछ समझ में नहीं आया। जब मैंने देखा तब एक गाय ने सिर जमीन की ओर झुकाये हुए कालू पर धावा बोल दिया था। एक क्षण में ही उसने कालू की जमीन पर पटक दिया था। मैं जोर से चिल्लाते हुए उस ओर भागा। गाय भी डरकर भागने लगी। हम सब भागते हुए कालू के पास पहुंचे। चिक्कू अपने जाति भाई की सहायता के लिये सब से आगे भाग रही थी। कालू संभलते हुए उठ खड़ा हुआ। वह बहुत ही घबराया हुआ था। एक बार तो मन में शंका हुई कि पिल्लू बंदर दबकर मर गया होगा। पिल्लू कहीं नहीं दिख रहा था। गाय अब पीछे को हट चुकी थी। हमने आसपास देखा। हम से अधिक कालू को बंदर के स्वभाव की जानकारी थी। कालू ने ऊपर पेड़ पर देखा। हमने भी देखा। जैसे कुछ हुआ ही न हो, इस ठाठ से पिल्लू बंदर पेड़ पर एकदम ऊपर की ओर जाकर बैठा हुआ दिखाई दिया। संकटकाल में वह अपने मित्र की सहायता कभी करने वाला नहीं था। वहां से वह अपनी खाल बचाकर भाग गया था। जान को कोई भी खतरा न होने का यकीन होने पर ही वह धीरे से पेड़ से उतरा और कालू की पीठ पर सवार हो गया। हमें खुश करने के लिये वह उस दिशा की ओर देखते हुए अपनी गर्दन के बाल उछालते-उछालते दांत दिखाकर आवाज करने लगा जिस दिशा में गाय भाग गयी थी। उस दिन फिर आगे न जाकर हम लौट पड़े। हमने यह पढ़ा था कि जंगल में गिलहरी और बंदर पहरेदारी करते है। संकट आने पर वे पहले अपना बचाव करते हैं और स्वयं पर कोई संकट न होने पर ही वे अन्य जानवरों को चिल्लाकर खतरे की सूचना देते हैं। कुदरत ने उन्हें केवल पहरेदारी का काम सौपा है, लड़ने का बिलकुल नहीं।

यह घटना मेरे मन में घर कर गयी। हम बंदर के वंशज हैं। कल खुद हम पर और दोस्तों पर ऐसी ही शामत आने पर हम क्या करेंगें? मित्र की सहायता करेंगें या वहां से भाग खड़े होंगे? मनुष्य की बात ही निराली है। उसका दिमाग तेज है। इसलिये वह स्वयं को कभी दोषी सिद्ध नहीं होने देता। वह अपने प्रत्येक कार्य का समर्थन इस प्रकार करता है कि अंत में वह अपनी गलती दूसरे के सिर पर मढ़ देता है। एक विचार यह भी मन में आया कि मित्र से विश्वासघात करने का अथवा संकटकाल में सटक जाने का यह गुण (या दुर्गुण) मनुष्य में स्वाभाविक नहीं है। वह उसे अपने पूर्वजों से विरासत में मिला होगा। चलो छुटकारा मिला!

कुछ समय बाद सन् 1976 में, कालू कुत्ते ने एक गाय के बछड़े पर हमला कर दिया। बछड़ा मरते-मरते बचा। कहीं बछड़े ने पिल्लू बंदर पर तो आक्रमण नहीं किया था? कुछ

समझ नहीं आ रहा था। लेकिन कालू ने इससे पहले कभी भी ऐसा हमला नहीं किया था। हम घबरा गये। हम तो यहां पर आदिवासियों के लिये कार्य कर रहे थे। हमारी ओर से अथवा हमारे द्वारा पाले गये किसी भी प्राणी की ओर से उन्हें या उनके जानवरों को किसी भी प्रकार से कष्ट न पहुंचने पाये—इसकी हम पूरी सावधानी रखते थे। हमारे प्रयत्नों पर उनका वह विश्वास आज भी कायम है। यदि किसी ने उन्हें कष्ट दिया तो उस व्यक्ति या जानवर को हमारी ओर से क्षमादान मिलने वाला नहीं था। हमने दुखी मन से कालू को नागपुर भिजवा दिया। भालू, तेंदुए जैसे जंगली जानवरों को भी खुला छोड़े रखने पर लोगों को खतरा पहुंचने की संभावना है। यह अनुभव करने पर हमें अपनी इच्छा के विरुद्ध उन्हें पिंजरों में बंद करना पड़ा।

निसर्गप्रेमी लोगों की संख्या इन दिनों छूत की बीमारी की तरह अनाप-शनाप फैल गयी है। उनमें से 95 प्रतिशत तो इससे पहले बेधड़क शिकार खेलते थे। इनमें जिज्ञासु स्वभाव के सच्चे निसर्गप्रेमी बहुत ही कम हैं। ये लोग जंगली जानवरों को पिंजरे में बंद रखने के कड़े विरोधी हैं। वे मानते हैं कि जंगली जानवर खुले जंगल में ही अच्छे लगते हैं। यह बात क्या हमें पसंद नहीं है? जरूर है, लेकिन आज उनके जंगलों में चैन से जीने लायक परिस्थिति है कहां? जो भी जानवर आज हमारे साथ पल रहे हैं, उन्हें हम स्वयं पकड़कर नहीं लाये हैं। वे बिल्कुल बचपन में ही हमें सौंप दिये गये थे। उस समय या आज भी यदि हम उन्हें पास रखने से मना कर दें तो वे वापस जाकर अपने मां-बाप की तरह मनुष्य का ही भोजन बनेंगे, यह हमारा विश्वास है। केवल इसीलिये हम उन्हें अपने पास संभाले हुए हैं।

कालू कुत्ते को नागपुर भेजने के 15 दिन बाद ही पिल्लू बंदर हमें एक सुबह अपने गले की सांकल को फंदा बनाकर झूलता हुआ दिखाई पड़ा। यह देखकर हमें बहुत दुख हुआ। कालू के चले जाने पर अब उसे स्वयं ही हर काम करना पड़ेगा, इस डर से कहीं पिल्लू बंदर ने आत्महत्या तो नहीं कर ली? या फिर वह अपने मित्र का विरह सहन नहीं कर पाया? इस प्रकार के दो प्रश्न मेरे मन में उठे अवश्य। क्या बंदर में आत्महत्या करने की इतनी समझ विकसित होगी? केवल बंदर को ही अपने अनुसंधान का विषय बनाकर शोध करने वालों ने या पुस्तक लिखने वालों ने क्या इस दृष्टि से शोध कार्य किया होगा? मुझे तो अभी तक इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला है। मनुष्य अन्य प्राणियों से प्रेम करता है, और वैसा संबंध बनने पर प्राणी भी—जंगली जानवर भी—मनुष्य से उतना ही प्रेम करते हैं, यह तो मेरे निजी अनुभव की बात है। लेकिन क्या एक जानवर अन्य किसी और जाति के जानवर से भी वैसा ही स्नेह कर सकता है? प्राणी से मनुष्य का प्रेम स्वार्थ भरा है। मालिक के देहावसान से दुखी होकर उसके कुत्ते ने प्राण त्याग दिये—इस तरह की कहानियां हम पौराणिक काल से सुनते आये हैं। लेकिन किसी लाड़ले जानवर के मरने पर मनुष्य

के प्राण त्याग देने की कोई घटना हमने आज तक नहीं सुनी। अधिकतर मनुष्य उस प्राणी के स्मरणार्थ कोई स्मारक बना देता है या उसकी यादगार में अपनी किसी प्रिय वस्तु का त्याग कर देता है। लेकिन दो जानवर भी क्या आपसी दोस्ती की खातिर अपनी जान दे सकते हैं? दूसरी नस्ल के जानवरों के बारे में यह कहना शायद सही हो सकता है। लेकिन क्या बंदर भी? इसे एकदम स्वीकार करने को मन नहीं करता क्योंकि वे हमारे ही पूर्वज हैं। जीवों द्वारा आत्महत्या किये जाने के बहुत उदाहरण हैं। विशेषतया जतिया आताम नामक गांव में एक खास दिन सैकड़ों पक्षी दहकती आग पर झपट कर अपनी जान कुरबान कर देते हैं। ये समाचार तो पाठकों ने पढ़े ही होंगे।

हमें ताड़गांव से एक काकड़ (हिरन) का छौना मिला। भेकर जाति का हिरन हमारे पास पहले से ही था। प्रारंभ में हमारे पास जंगली जानवरों की जानकारी देने वाली पुस्तकें नहीं थीं। फिर जब लोगों ने हमारे पास जानवर देखे और उन्हें हमारी कठिनाई समझ में आई, तब कुछ लोगों ने हमें पुस्तकें भेंट स्वरूप देना प्रारंभ किया। नागपुर के प्रभाकरजी ने पुस्तकें दिलवाने में और हमारे पास पल रहे जानवरों के फोटो खिंचवाने में हमारी बड़ी सहायता की। लेकिन प्रारंभ के दिनों में इन सब बातों को समझने के लिये हमारे पास कोई पुस्तक नहीं थी। इसलिए हमें बड़ी कठिनाई हुई। इस छौने को पहचानने में हमें बहुत दिक्कत हुई। न वह 'भेकर' जाति का हिरन लगता था और न ही इसकी चमड़ी पर सफेद धब्बे ही थे कि उसे चीतल कहें। चिंकारा भी नहीं। बहुत पहले मैंने चिंकारा मृग का शिकार किया था। यह नीलगाय भी नहीं लगता था। सोमनाथ प्रकल्प से पहले ही प्रकाश ने एक नीलगाय पाली थी। न यह पाढ़ा था न पिसूरी। सारी अटकल बाजी लगाते-लगाते यह तय हुआ कि यह छौना काकड़ अर्थात् 'बार्किंग' हिरन ही है। बार्किंग हिरन भेकर हिरन से ऊंचाई में थोड़ा कम होता है। वह बहुत ही शर्मीला होता है। मनुष्य से अधिकतर दूर ही रहता है। सामने के पैरों से उसके पिछले पांव अधिक लंबे होते हैं। वह पैरों को घुटनों से मोड़कर चलता है। इस जाति का हिरन भागने में बहुत तेज होता है। केवल नर के ही सींग होते हैं। चीतल-सांभर हिरन के समान इसके भी हर साल पुराने सींगों की जगह नये सींग आ जाते हैं। इसके चेहरे पर नाक से लेकर आंखों तक अंग्रेजी के V अक्षर जैसा काला पट्टा होता है। जब वह सतर्क रहता है या खुशी में होता है तब अपने सामने के पैरों को पटकते हुए चलता है। उसकी नाक के पीछे दो फूले हुए छोटे-छोटे उभार रहते हैं। असल में तो यह उसकी दूसरी नाक ही होती है। जब मोटर 40 कि.मी. की रफ्तार से चल रही हो तो मोटर चलने की दिशा में बाहर मुंह निकालने पर हवा के जोर के कारण हमें सांस लेने में कठिनाई होती है। वैसे ही तेज गति से भागने वाले चीतल, बार्किंग डियर आदि को कुदरत ने यह दूसरी नाक दी है। तेज गति से भागते समय वे इस उभारों को और फुलाते हैं और उसके भीतर के छिद्रों द्वारा सांस लेते हैं। जब मादा-नर आपस में प्यार

करते हैं, तब भी इन उभारों को फुलाकर वे अपना आनंद प्रकट करते हैं। सभी जाति के हिरनों को विशिष्ट गंध और आवाज याद रहती है। हमारा साथी तुकाराम हिरनों के लिये चारा, झाड़-पत्तियां जंगल से लाया करता था। लाने का समय भी निश्चित था। किसी दिन किसी कारणवश उसके आने में विलंब हो जाने पर हिरन बेचैन हो जाते थे। हिरन के पिंजरे में या बाहर ही खड़े होकर ठीक से निरीक्षण करने पर या उनकी ठिठौलियां देखते-देखते समय कैसे कट गया, इसका पता ही नहीं चलता था।

एक बार मैं हिरनों के पिजरे के पास पहुंचा। काकड़ हिरन बेचैन दिख रहा था। खास बात यह थी कि मुझे देखने पर भी वह सदा की तरह मेरे पास नहीं आया। पिंजरे में कहीं सांप वगैरा तो नहीं है? मैंने ध्यान से देखा। वैसा कुछ नहीं था। यदि वैसा कुछ होता तो वह काकड़ हिरन, जिसे हम बिंटू कहते थे, एक ही दिशा की ओर न देखता रहता। बिंटू कुछ सूंघते हुए बाहर ही देख रहा था। फिर उसने अपने पीछे वाले नथुने फुलाये, यह विशेष बात थी। बिंटू नर था और काकड़ जाति की मादा हमारे पास नहीं थी। जंगल से मादा की गंध आने के लिये मदकाल का मौसम भी नहीं था। मैंने उसे आवाज देकर अपने पास बुलाया और उसे अपने हाथों से दूध पिलाया। उसने मेरे हाथों को सूंघा भी। लेकिन वह मुझसे खेलना नहीं चाहता था। साधारण तौर पर वह सिर नीचा कर मुझे एक दो धक्के दिये बिना नहीं रहता था। लेकिन आज वह फिर अपने पैर पटकते हुए एक तरफ हट गया। उसे क्या हुआ है, यह मैं समझ ही नहीं पा रहा था। मेरा ध्यान पेंटी की ओर गया। वह भी अपनी गर्दन उठाए, दोनों कान खड़े कर कुछ ध्यान से देख रही थी। वे दोनों ही किसी की बाट जोह रहे थे। उतने में वे दोनों पिंजरे के दरवाजे के पास आने लगे। तुकाराम चारे का गट्ठा लिये हुए आ रहा था। अब बात मेरी समझ में आ गयी। तुकाराम को आने में आज विलंब हुआ था। उसी की गंध और आहट ही उन्हें आ रही थी।

आगे चलकर मुझे रोज ही सुबह तुकाराम के लिये उनकी बेचैनी देखने को मिलती। उनकी हड़बड़ाहट देखते ही तुकाराम के दो फर्लांग दूर होने पर भी, उसके आने का संकेत मैं समझ जाता था। मेहमानों को उसके बारे में बताने पर वे अचंभा करते थे। वे समझ नहीं पाते कि यह कैसे पहचान लेता था। प्रकाश, तुकाराम, दादा पांचाल, बबन, कवडू, मनोहर येम्पलवार, सभी लोग इन जानवरों की पहचान के थे। वे भले ही दूर से जा रहे हों, मैं जानवरों की गतिविधि से ही ताड़ जाता हूं। उनकी चहल-पहल से मैं सब कुछ घर में बैठे हुए ही बता देता हूं। मेहमान ऐसी विचित्र कल्पना कर लेते हैं कि मैं इस जंगल में आकर कुछ जादू सीख गया हूं।

प्रत्येक प्राणी का आनंद प्रकट करने का अपना अलग ढंग होता है। कौन व्यक्ति उस पर जितना कम या अधिक स्नेह रखता है, उसी के अनुसार उसका व्यवहार भी होता है, यह बात निश्चित है। जंगली प्राणियों में भी प्यार करने में एक प्रकार का अनुशासन

होता है। जैसे उदाहरण के लिये यदि प्रकाश और मैं एक साथ ही अपने तेंदुए नेगल के पास जाएं तो सर्वप्रथम वह प्रकाश के हाथ चाटेगा। लेकिन मेरी भी अनदेखी नहीं करेगा। तुरंत ही वह मेरे पास आकर मेरा भी हाथ चाट लेगा। फिर वह कुछ प्यार भरी आवाज निकाल कर हमें पिंजरे में बुलाने लगेगा। यदि हम तुरंत अंदर नहीं गये तो पिंजरे की जाली से वह अपना बदन रगड़ने लगेगा और फिर बहुत ही करुण स्वर निकालेगा। इस पर भी यदि हम बाहर ही खड़े-खड़े रह गप्पें लगाते रहे तो वह जरा नाराज होकर कोने में दुबक कर बैठ जायेगा। फिर उसे जरा चिढ़ाने के इरादे से यदि हमने अधिक अनदेखी की तो वह पिंजरे के अंदर ही रखे लकड़ी के ठूंठ के पीछे जाकर बैठ जाएगा। कान पीछे मोड़कर आंखें भींच कर वह जरा ध्यान से हमें देखेगा। उसका ऐसा रुख हमें असावधान देखकर हम पर हमला करने के इरादे से होता है। तब मैं दूसरी ओर देखकर अपनें असावधान होने का नाटक करता, या हम पिंजरे के पास एकदम करीब जाकर भी अपनी बातों में तल्लीन होने का नाटक करते। प्रकाश उसकी प्रत्येक हलचल पर नजर रखता। प्रकाश मुझे केवल नजर के इशारे से ही बताता रहता कि वह हमला करने वाला है। तब मैं द्रुतगति से पलटकर जोर की आवाज निकालकर उसे डराता था। उस पर कभी तो वह एक ही छलांग लगाकर पिंजरे की जाली तक पहुंच जाता था या फिर बीच में ही मेरी आवाज सुनते ही इतना चौंक जाता कि अपने को संभाल नहीं पाता और उलटा-पुलटा गिर पड़ता। इस पर यदि हम जोर से हंस पड़े तो वह बहुत नाराज होकर दो तीन बार पिंजरे की जाली से जोर-जोर से टकराता और भीतर चला जाता था। हमारे हंसने से वह अपने आपको अपमानित अनुभव करता होगा। फिर तो वह पूरी तरह हमें अनदेखा कर हमारी तरफ पीठ फिराकर बैठ जाता था। दो-तीन बार आवाज देने पर भी वह हमारी ओर ध्यान नहीं देता था। फिर पहले प्रकाश भीतर जाता। अब ऐसे रुठे हुए मन से स्वागत करने की उसकी रीति ही अलग होती थी। यदि वह वैसे ही रुठा बैठा रहता तो, वह जहां होता वहीं जाकर उसकी गर्दन पर या पूरे बदन पर हाथ सहलाना पड़ता। यदि वह चिढ़कर रुठा हो, तब तो वह प्रकाश को एक छलांग में ही पकड़ लेता। वह इतनी ताकत से उस पर झपटता कि प्रकाश अपने को संभाल ही न पाता था। फिर दूर जाकर वापस आता और प्रकाश के पैरों को पकड़ कर उसे नीचे गिराने का प्रयास करता। तब अगर प्रकाश के हाथ उसकी गर्दन पर तथा बदन पर फिरने लगते तो नेगल एकदम शांत हो जाता, और प्रकाश के हाथ-पांव चाटने लगता। प्रकाश के नीचे बैठने पर वह उसकी गोद में जा बैठता। फिर उसकी गोद में अपना सिर रखकर वहीं लेट जाता। लेकिन यह सब करते समय उसके नाखून कभी भी बाहर नहीं निकलते थे। अपने नाखून वह पूरी तरह से अंदर कर लेता था। नेगल को जरा शांत होने पर ध्यान में आता कि मैं तो अभी तक बाहर ही हूं। वह हम दोनों के हंसने पर नाराज हुआ था, यह बात वह बिलकुल भूलता नहीं था। वह पिंजरे

के द्वार तक आकर मुझे बुलाता। लेकिन उसके चेहरे पर इतने नटखट भाव होते मानो कह रहा हो कि एक बार अंदर तो आ फिर देखता हूं। ऐसी शरारत भरी नजर से वह मुझे देखता। उसके सभी भाव तथा उसकी आंखों की भाषा समझने के लिये किसी को भी वहां आकर उसकी संगति में महीने भर के लिये तो रहना ही पड़ेगा। उसके नाखनों के दो-चार बार घाव भी झेलने पड़ेंगे। लेकिन यह अनुभव थोड़ा साहस और इन जानवरों पर विश्वास रखकर कोई भी व्यक्ति प्राप्त कर सकता है।

मैं फिर भी पिंजरे के भीतर नहीं जाता था। तब वह दुबारा से पिंजरे में जाकर प्रकाश से खेलने लगता। मेरा यह प्रयास इसलिए होता कि मैं पिंजरे के पास पहुंचूं और वह मुझे असावधानी में पकड़ ले। यह जानते हुए मैं स्नेहवश उसके पिंजरे के एकदम पास खड़ा रहता था। ऐसे ही किसी असावधानी के क्षण में मुझे पाकर वह अपने कूल्हे मेरी ओर करके बड़ी लंबी पेशाब की धार छोड़ देता। यह सब समझने के पूर्व ही यह अभिषेक स्नान पूरा हो जाता। असमंजस में मैं चिल्लाता। तब मैं गुस्से से खीज पड़ता और वह खुश हो जाता। उसकी खुशी में प्रकाश भी जब उसका साथ देता तो मैं लज्जित हो जाता। वह तो अब खुशी से छलांगें मारने लगता।

फिर मैं दरवाजा खोलकर अंदर चला जाता था। ऐसे मौके पर मुझे बहुत सावधानी रखनी होती थी, क्योंकि वह छलांग मारकर मुझ पर झपटता और मेरे दोनों पैरों को पकड़ कर मुझे गिराने का प्रयास करता था। व्यर्थ के झंझट से बचने के लिये मैं झट नीचे बैठ जाता था। लेकिन इससे उसका जी नहीं भरता था। सामने से मेरे कंधे पकड़ कर या मुझे पीछे से कसकर पकड़कर वह मुझे चारों खाने चित गिरा देता था। इस प्रकार हम दोनों की कुश्ती पूरी हो जाने पर वह प्यार से मेरा बदन चाट कर मुझसे दूर हो जाता था। ऐसे समय प्रकाश द्वारा उसकी इस जीत की प्रशंसा होती है अथवा नहीं, इसका भी वह ध्यान रखता था। जैसे ही खुशी की झलक प्रकाश के चेहरे पर दीख पड़ती तो वह पूंछ नीचे कर उसके छोर को हिलाना प्रारंभ कर देता। बस मैं सावधान हो जाता क्योंकि यह प्रशंसा का स्वीकार चिह्न होता था। दुबारा फिर हमारे ऊपर हमला करे इसके पहले ही मैं और प्रकाश पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार तुरंत उठकर पिंजरे से बाहर चले आते। लेकिन हम दोनों अभी भी उसके साथ खेलें, इस इच्छा से वह धीमी आवाज कर हमें मनाता रहता। कभी-कभी विजय उसी की होती थी। हम फिर अंदर जा बैठते। इस आपसी खेल का कोई अंत नहीं होता। घंटों कैसे बीत जाते, हमें पता नहीं चलता। घड़ी की ओर देखने पर हमें ध्यान आता कि घर वालों की दृष्टि में भोजन से पहले हमारा नहाना आवश्यक होता था, अन्यथा हमारे कारण नेगल को कोसा जाता। इसलिए हम तुरंत बाहर निकल आते थे।

सन् 1975 के अंत में पल्ली गांव के लोगों ने मुझे एक जंगली गिलहरी भेंट में दी।

हमने उसका नाम 'रेखा' रखा। यह गिलहरी बड़ी होने पर बिल्ली के आकार की हो जाती है। और फिर वह मनुष्य से इतनी हिलमिल जाती है कि उससे कष्ट ही अधिक होते हैं। एक बार आपके साथ रहने की आदत पड़ने पर वह हमेशा आपसे खेलते ही रहने की उम्मीद रखती है। वैसा न करने पर वह आपके कंधे पर चढ़ कर आपके बाल नोचती है, या कान काटती है। इस जाति की गिलहरियां संख्या में बड़ी तेज गति से कम होती जा रही हैं। हर गर्मी के मौसम में एक विशेष त्योहार के दिन आदिवासियों के हर गांव में इस जाति की एक गिलहरी की बलि चढ़ाई जाती है। अभी हमारे आसपास 90 गांव हैं। अब सोचिए! फिर खाने के लिये उनका जो शिकार किया जाता है, वह अलग। उनका शिकार करने का तरीका भी इतना खराब है कि उसमें जंगल की बहुत क्षति होती है। इस जाति की गिलहरी किसी खूब ऊंचे और विशाल पेड़ पर 50 से 60 फुट की ऊंचाई पर नन्ही-नन्ही टहनियों से अपना घोंसला बनाती है। बहुत ही फुर्तीली होने के कारण वह एक पेड़ से दूसरे पर 25-30 फुट दूरी तक छलांग लगा सकती है। आदिवासियों का पूरा गांव शिकार करने निकल पड़ता है क्योंकि गांव के त्योहार के लिये तो इस गिलहरी की बलि चढ़ानी ही होती है। हर घर से एक व्यक्ति को तो जाना ही होता है। प्रारंभ में गिलहरी किस पेड़ पर है, यह देखना जरूरी होता है। वह निश्चित होने पर आसपास के 50 फुट तक के दायरे के सभी वृक्ष काट डाले जाते हैं। अब गिलहरी की एक पेड़ से दूसरे पर जाने की संभावना नहीं रहती। फिर एक व्यक्ति गिलहरी वाले वृक्ष पर चढ़ता है, बाकी 30-40 लोग नीचे से चिल्लाते रहते हैं। गिलहरी के लिए किसी भी तरह केवल नीचे उतरने के सिवा कोई चारा नहीं रहता है और नीचे 30-40 लोग डंडे लाठी-कुल्हाड़ी लेकर तैयार रहते हैं और साथ ही उतनी ही संख्या में कुत्ते भी तैनात रहते हैं। उसमें से गिलहरी का निकल भागना असंभव ही होता है। संयोगवश या सौभाग्य से गिलहरी यदि भाग भी जाती है तो फिर अन्य 15-20 वृक्षों का नाश। त्योहार के लिये शिकार पर निकलने पर खाली हाथ वापस लौटा नहीं जाता। उसका शिकार होने तक, आवश्यक हो तो दो-तीन दिन, जंगल में ही बिता दिये जाते हैं।

हमारा सन् 1976 का साल बड़ा ही शुभ रहा। केवल जानवरों की संख्या ही नहीं बढ़ी, बल्कि हमारे अनुभव में भी वृद्धि हुई। भालू जैसा जंगली जानवर एक वन-संरक्षक अधिकारी ने भेंट में दिया। पिसूरी जाति का हिरन माउस डियर भी जो अब दुर्लभ हो चुका है, हमें मिला। उन्हीं दिनों हमें ऐसा आदेश भी प्राप्त हुआ कि गैरकानूनी ढंग से हमारे पास जो जंगली जानवर पल रहे थे, उन्हें जब्त कर लिया जायेगा।

सन् 1976 में ही झोपड़ियां छोड़कर हम पक्के घरों में रहने आ गये थे। ये केवल दो ही खपरेलू छप्पर वाले घर थे। एक में प्रकाश-मंदा-रेणुका रहने लगे। दूसरे घर में मैं, दादा और पांचाल रहने लगे। दो घरों के बीच 16 फुट x 28 फुट की खुली जगह थी।

बाकी दोनों दिशाओं को बांस की जाली से बंद कर एक पिंजरा बना दिया गया था। पेंटी, बिंटू, बबली, तोता, हरियल, पंछी, लिंबू, लंगूर सभी को इस एक ही पिंजरे में रखा गया। अन्य लोगों को इन जीवों को अपने घर में रखना पसंद नहीं था। वे अधिक से अधिक निकट रहे सकें इसी इरादे से यह व्यवस्था की गयी थी। हम दोनों के कमरों की खिड़कियां आमने-सामने से पिंजरे की ओर खुलती थीं। जब भी मन चाहे, तब हम पिंजरे के भीतर जाकर या बाहर से झांक कर इन प्राणियों का ध्यान रख पाते थे।

हमें सन् 1976 के प्रारंभ में छह 'हरियल' पक्षी भेंट में मिले। हरियल अर्थात् जंगली कबूतर। उसका रंग हरा-हरा रहता है। पेट की ओर थोड़ी पीले रंग की छटा होती है। हरियल पूरे जीवन भर कभी भी जमीन पर कदम नहीं रखता। मरने पर भी वह पैर ऊपर की ओर कर अपनी पीठ के बल ही पड़ा रहता है। हमने यह किंवदंती यहां व पुणे में भी शिकारी समूह में सुनी थी। यह तो सही है कि मरने पर वह पांव ऊपर कर पीठ के बल पड़ा रहता है, लेकिन वह जीवन भर जमीन पर पैर ही नहीं रखता, यह बात बिलकुल झूठ है। अपने पिंजरे में नीचे उतर कर भात खाते हुए मैंने कई बार उसे चुपके से देखा है। चोरी-चोरी इसलिए क्योंकि यह हरियल इतना शर्मीला होता है कि वह किसी के सामने कभी नीचे उतरता ही नहीं। उसके सामने पांच छह घंटे लगातार बैठे रहने पर भी वह कभी भी पानी पीने या खाने के लिए नीचे नहीं उतरता। पिंजरे में बंद होने की मजबूरी में शायद उन्हें नीचे उतरना पड़ा हो। जिन्होंने हमें वे हरियल भेंट में दिये थे उन्होंने भी उन्हें नदी-किनारे बालू में जाल बिछाकर ही पकड़ा था। यह दृश्य मैंने स्वयं प्रत्यक्ष रूप में देखा था। इसलिये इस किंवदंती पर मैं तो विश्वास नहीं करता। गत दस वर्षों में मैं यह समझ पाया कि ऐसी कई कहानियां केवल किस्से भर हैं। इन हरियलों ने हम से कभी दोस्ती नहीं की। पूरे दो साल वे हमारे पास रहे। बाद में वे कभी नहीं मिले। वैसे भी पिंजरे में पंछी को बंद करके रखना हमें पसंद नहीं था। अब हरियल की बात ही चल पड़ी है तो मेरा एक हरियल के शिकार का भी किस्सा सुनिए।

मुझे शिकार का शौक पुणे में रहते हुए 1970 से 73 तक की कालावधी में लगा। उन दिनों पुणे में 30-35 लाइसेंसधारी शिकारी थे। कानून के अनुसार शिकार करना लगभग बंद ही था। इन शिकारियों में कारखाने के मजदूर से लेकर राजनीतिज्ञ तक थे। कुछ धनी लोग जीप में आते सो कुछ मोटर साइकिल से, कुछ साइकिल पर तो कुछ पैदल ही शिकार करने पहुंच जाते थे। दो- तीन या चार-पांच व्यक्तियों के दल होते थे। साधारणतया सिंहगढ़, नेशनल डिफेंस अकादमी, पौड, पाषाण, औंध, कालज घाट, दिवे घाट, सोलापुर रोड़, यही शिकार के स्थान थे। हमारा चार लोगों का समूह था। कभी-कभी हम दो-दो की संख्या में मोटरसाइकिलों पर जाते थे। वायुसेना का एक अधिकारी हमारा मित्र था। सब ने मिलकर एक जीप ले ली थी। कभी-कभी उसमें भी सवार हो हम शिकार पर जाते थे। हम सब

एक दूसरे से परिचित थे। शिकार खेलना गैरकानूनी होने के कारण वैसे हम सब चोर-चोर मौसेरे भाई थे। अगस्त-सितंबर में जब हम एक दूसरे से मिलते तो हरियल कबूतर के शिकार के बारे में बातें होती थीं। उस सीजन में किसने कितने हरियल मारे, उसकी संख्या बढ़ा-चढ़ाकर बतायी जाती। मैं हरियल के शिकार पर कभी गया ही नहीं था। चंदू दो-तीन बार हो आया था। उसके रिकार्ड में 40 हरियल थे। क्रिकेट खिलाड़ियों के रनों के रिकार्ड के समान शिकारियों का भी रिकार्ड होता है। लेकिन पूरा चोरी का मामला होने से सभी बातें केवल मौखिक ही होती हैं। इस कारण बढ़ा-चढ़ाकर भी संख्या बतायी जा सकती है। वैसे कुछ शिकारियों के बैठकखानों में शेर, हिरन, भालू आदि की भूसा भरी खालें या चेहरे लगे रहते हैं।

कोंकण में जून के महीने में मूसलाधार वर्षा प्रारंभ होने पर ये हरियल कबूतर घाट लांघकर पुणे की ओर आ जाते हैं। यह बात मुझे एक शिकारी ने ही बतायी थी। मुझे कुछ भी पता नहीं था और शिकार के नियमानुसार बुजुर्गों पर विश्वास रखना लाजमी था। देखा जाए तो हमारे यहां भामरागढ़ के जंगल में कोंकण से अधिक जोरदार वर्षा होती है। लेकिन यहां के हरियल और कहीं न जाकर यहीं रहते हैं। कोंकण के हरियल भारी वर्षा के कारण स्थानांतर नहीं करते। पिछले कई सालों में उधर काफी जंगल काट दिये गये थे, इसलिए भारी वर्षा में उन्हें वहां भरपेट खाना नहीं मिल पाता था। तभी वे वहां से भोजन की तलाश में उन पेड़ों की ओर आ जाते जो केवल राजमार्ग पर होने के कारण कटाई से बचे हुए थे। ये सारे वटवृक्ष फलों से लदे रहते हैं। हरियल के शिकार की हमारी शुरुआत वटवृक्ष के नीचे ही हुई।

अगस्त के दूसरे सप्ताह में, मैं और मेरा दोस्त चंदू सुबह ही मोटरसाइकिल पर चल पड़े। उसने टेलीस्कोप लगी राइफल अपने रेनकोट में छिपा रखी थी। सुबह का उजाला होने तक हम पुणे से 20-25 कि.मी. दूर पलटन रोड पर दिवे घाट के पास पहुंचे। पुणे और हड़पसर हम पीछे छोड़ आये थे। दोनों ओर केवल खेत ही खेत थे। हमें दूर से ही गांव दिखाई पड़े तो हम वहीं पर रुक गये। मेरा कहना था कि गांव पार कर आगे चला जाये। लेकिन चंदू का कहना था कि थोड़ी देर वहीं गांव के पास ही रुकना ठीक है। चोरी का मामला होने से मैं जरा डर रहा था। चंदू ने पहले भी हरियल का शिकार किया था लेकिन मैं अभी नया शिकारी था। इसलिये मैंने उसकी बात मानना ही ठीक समझा। फिर उसके खाते में 30-40 हरियल के शिकार का रिकार्ड था। मोटरसाइकिल सड़क के किनारे खड़ी कर दी गयी। आसपास किसी के न होने की तसल्ली कर ली गयी। फिर बंदूक निकाली, टेलीस्कोप लगाया और गोलियां भर लीं। कोलतार की सड़क पर बड़ के पेड़ के नीचे पंछियों की विष्टा के सफेद धब्बे थे। हरियलों द्वारा आधे खाकर नीचे फेंके हुए बड़ के फल भी पड़े थे। यह जगह शिकार के लिये बिलकुल सही लग रही थी। चंदू ने इशारा किया। मैं

ऊपर देखने लगा। पत्तों व फलों के अलावा मुझे कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। वहां कुछ हलचल भी नहीं दिख रही थी। ऊपर देख-देख कर हम दोनों की गर्दनें दुखने लगीं। ऐसा लग रहा था कि सदा की तरह आज भी खाली हाथ ही लौटना पड़ेगा। चंदू मुझसे भी अधिक निराश था। उसे लगा कि उसके पुराने रिकार्ड पर शंका की जायेगी। हम दोनों विश्राम के लिये सड़क के किनारे पुल पर बैठ गये। यदि पत्थर फेंक कर देखते तो हरियल उड़ जाने पर वापस नहीं लौटते। हम गलत मौसम में आये थे या अभी मौसम प्रारंभ ही नहीं हुआ होगा, या फिर आज सुबह ही वहां कोई हरियल का शिकार कर गया होगा,इस तरह की कई शंकाएं चंदू ने व्यक्त कीं। वापस चलने का निश्चय होने पर मैंने पत्थर मार कर देखने के इरादे से पत्थर उठाया। तभी सामने से पास के ही गांव का एक चरवाहा जानवर लेकर आता दिखाई दिया। उसने भी हमें देखा। जानवरों को चरने के लिये छोड़कर वह हमारी ओर आया। उससे राम-राम हुई। अपने साथ की लाठी पर हाथ रखकर वह वहीं खड़ा हो गया। हमारी बंदूक और लिबास को देखकर शायद उसने भांप लिया कि आज सुबह ही सुबह अच्छे शिकार फंसे हैं --उसके चेहरे पर मुझे कुछ ऐसे ही भाव दिखाई देने लगे। हमने सिगरेट पेश कर उससे दोस्ती करनी चाही तो उसने स्वीकार करने से साफ मना कर दिया। उसने झट कहा कि वह तो खैनी खाता है और तंबाकू खरीदने के लिये भी उसके पास पैसों की कमी है। उसके व्यवहार से मुझे ऐसा लगा कि शिकारियों को झटपट झांसा देने में वह माहिर है। फिर उसने पहल कर हमसे पूछा ही लिया, "कहिये साहब, आज इधर कैसे?" बंदूक लेकर कोई मंदिर में पूजा करने के लिये नहीं आता, इतना तो वह भी समझता था। चंदू ने पूछा, "क्यों इस बार हरियल क्या इस ओर आये ही नहीं?" उसका यह सवाल सहज ही था क्योंकि उसे कोई हरियल नजर ही नहीं आया था। फिर भी उसने पूछा इस अंदाज से कि हरियल आने से पहले जैसे इन गांव वालों को खत लिखकर अग्रिम सूचना देते हों। "बहुत हैं ना साहब।" चरवाहे ने कहा। मुझे ऐसा लगा जैसे वह अपनी हंसी दबा रहा था। "फिर हमें एक-दो दिखा तो सही।" हमने कहा। गांव वाले दोस्त ने बड़ा गंभीर चेहरा बनाकर गर्दन ऊपर उठाई और आंख पर हाथ रख कर पेड़ पर हरियल ढूंढ़ने का बहुत कुशल अभिनय किया।

वह अपनी आंख से हाथ नीचे लाकर हमें मना करे, इससे पहले ही मैंने एक चवन्नी उसके हाथ में थमा दी। फिर तो उसे समय ही नहीं लगा हमें बताने में। करीब 10 फुट दूरी पर एक हरियल उसने झट उंगली के संकेत से हमें बताया। मैं और चंदू सन् 1972 और 73 वर्ष की रायफल निशानेबाजी के राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता थे। फिर हर चवन्नी पर एक-एक के हिसाब से तुरंत ही आठ हरियलों का शिकार कर हम लौट आये। उस अनाड़ी को हरियल दिखे, फिर वे हमें क्यों नहीं दिखे? इस प्रश्न का उत्तर दस वर्ष बाद मुझे इस भामरागढ़ के जंगल में मिला।

पाठशाला में पढ़ते समय मैंने एक नाटक देखा था। उसमें एक वाक्य था "चींटी ने भेरू पर्वत नहीं निगला?" मुझे अभी भी वह उक्ति याद है। वैसे ही यदि मै कहूं कि एक नन्हे से चूहे ने डसकर एक नाग को मार दिया तो क्या आप उस बात पर विश्वास करेंगे? हेमलकसा में ही घटित एक किस्सा मैं बताता हूं। जंगल में तो सांप होते ही हैं। हमारे भामरागढ़ के जंगल में बारह जातियों के सांप होते हैं। उसमें नाग, बैंडेड क्रेट, मण्यार, फुरसा तो जहरीले होते हैं, लेकिन बाकी जहरीले नहीं होते। मनुष्य की प्रवृत्ति ही ऐसी होती है कि सांप दिखते ही उसे मार दे। मैंने हेमलकसा आने के बाद प्रकाश से सांप की जाति पहचानना और सांप को पकड़ने का तरीका सीखा। हमारे प्रकल्प के परिसर में ही हमने सन् 1976 में एक नाग पकड़ा था। हमारे रसोईघर में ही निकलने की वजह से हमें उसे पकड़ना पड़ा। एक जालीदार पिंजरा बनाकर उसे उसमें रखा। नाग द्वारा फन उठाकर केवल फुंफकारने से ही मनुष्य मर जाता है, ऐसी यहां के लोगों की धारणा थी। पिंजरे में रखे नाग को भी आदिवासी बड़ी दूर से देखते थे। ऐसे समय हम खुद पिंजरे के पास जाते थे। नाग तुरंत ही फन फैलाकर फुंफकारता। आदिवासी हमारी ओर बड़ी हैरत से देखते। उन्हें हम फिर समझाते थे कि नाग के काटने पर ही मनुष्य मर सकता है। लेकिन उसके दंश से बचाने के लिये भी हमारे पास दवा है, वह दवा भी हम उन्हें दिखाते थे। सांप काटने पर ओझा के पास ले जाने के बदले मरीज को इधर लाने के लिये भी समझाते थे। फिर भी वे सब लोग बार-बार आकर हमारे जीवित होने की तसल्ली कर लिया करते थे। अब वे ही ये सारी बातें हमें बताते हैं। अब तो पास-पड़ोस में किसी के घर नाग, सांप दिखते ही वे हमें बुलाते हैं। हम केवल जहरीले सांप या नाग को ही पकड़कर लाते हैं। वह भी केवल तब यदि वह किसी के घर में घुस गया हो। हमें जो मिला था वह नाग गेहूं रंग का था। गर्दन पर पीछे की ओर 10 का अंक दिखता था। उसके गोरे रंग के कारण हम उसे कोंकणस्थ नाग कहते थे।

अंग्रेजी में नाग को 'कोबरा' कहते हैं। यह नामकरण कोंकणस्थ ब्राह्मण के कारण तो नहीं बना? केवल नाग ही क्यों, कई जंगली जानवरों के स्वभाव भी मनुष्य में दिखते हैं और इसलिए किसी जाति-उपजाति से उसका कोई वास्ता नहीं है। उसके लिये बस जानवरों के स्वभाव का अभ्यास होना चाहिए। प्रथम 10-12 दिनों तक यह नाग बड़ा ही चंचल था। किसी के भी पिंजरे के पास जाते ही वह तुरंत फन फैला देता था। बाद में वह सुस्त रहने लगा। हम समझे कि कुछ खाना न मिलने से वह कमजोर हो गया होगा, यह सोचकर हम उसके लिये खाना ढूंढ़ने में लगे रहते थे। वहां चूहे खूब थे लेकिन वे तेज थे। वे हमारी पकड़ में ही नहीं आते थे। बड़े प्रयास के बाद आखिर एक छोटा चूहा हमारी पकड़ में आया। हमने उसे पिंजरे में छोड़ दिया। दूसरे दिन सुबह पिंजरे में देखा तो चूहा जिंदा था। दो-तीन दिन बाद भी वह भला-चंगा था। दोनों की दोस्ती देखकर हमें अब दोनों की चिंता हुई।

चौथे दिन सुबह वहां बड़ी धूम मच गयी। सभी लोग पिंजरे के आसपास खड़े थे। नाग मरा पड़ा था, और चूहा फन का मांस खा रहा था। फन का बड़ा हिस्सा तो वह खा भी चुका था। हमें अपनी ही आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। गलती हमारी ही थी। नाग की केंचुली निकलने को थी। इस कारण उसे कुछ दिखाई ही नहीं देता था। उन दिनों वह कुछ खाता भी नहीं है। चूहा चार दिन से वहां भूखा था। उसे खाने के लिये हमने कुछ दिया भी नहीं था। चूहा शाकाहारी नहीं होता, वह सर्वभक्षी होता है। उसके बाद हमने वैसी गलती कभी नहीं की। हमने खूब सारे नाग, क्रेट, वाइपर पाल रखे थे। उन्हें खाने के लिये हमने चूहे दिये, लेकिन साथ ही चूहों के खाने के लिए रोटी भी रखी।

28 मार्च 1976 को ताड़गांव से संदेश मिला कि भालू के दो बच्चे वहां मिले हैं, आकर ले जाइए। संयोग से उस समय मकान का काम चल रहा था, हमारे पास ट्रैक्टर भी था। वैसे सन् 1981 तक वर्षाकाल में नदियों के पूरे बहाव में आने पर प्रकल्प के परिसर में हम कोई वाहन रख नहीं पाते थे क्योंकि वहां पक्की सड़क नहीं थी। ट्रैक्टर लेकर दोपहर में ही हम ताड़गांव पहुंच गये। भालू के दो बच्चे एक टोकरी के बंद थे। एक दिन पूर्व सारा गांव जब शिकार खेलने गया था तो वे वहां मिले थे। गांव वाले बता रहे थे कि उनकी मां भाग गयी थी। लेकिन उसे निश्चित रूप से गांव वाले मारकर खा गये होंगे। चूंकि मां मार दी गयी इसलिए उसके वापस आने का प्रश्न ही नहीं उठता था। लेकिन छुट्टी पर गये हुए फारेस्ट गार्ड के वापस लौटने का गांव वालों को अधिक डर था। सन् 1982-83 से शिकार करना कम हुआ है, लेकिन उससे पूर्व शिकार बेरोकटोक चल रहा था। फारेस्ट गार्ड शिकार खेलने पर किसी पर मुकदमा वगैरा नहीं करता था। शिकार का बड़ा हिस्सा उसके पास पहुंचना जरूरी था। अब शिकार में कमी आई है क्योंकि जंगल में जानवर संख्या में ही कम हो गये हैं। व्यक्ति भले ही किसी भी धर्म का हो मुफ्त मिलनेवाली भेंट स्वीकार करने में कोई भी धर्म आड़े नहीं आता। हिंदू गार्ड नीलगाय का मांस नहीं खाता, अतः नीलगाय का शिकार करने पर उसे गांव की ओर से एक मुर्गी भेंट में देनी होती। मुसलमान गार्ड केवल हलाल का ही मांस खाते हैं, इसलिए प्रत्येक शिकार के बदले में उसे एक मुर्गी भेंट देने की प्रथा है।

भालू के दोनों बच्चे लेकर शाम को हम लौट आये। उन्हें देखने के लिये बड़ी संख्या में लोग जमा हो गये थे। हर कोई सुझाव दे रहा था और जानकारी भी दे रहा था। भालू सीधा सामने से न देखकर अपने पिछले पांवों के बीच गर्दन डालकर पीछे देखता है। वह मनुष्य को गुदगुदाकर, हंसा-हंसाकर लोट-पोट कर देता है। सिर नीचे झुकाकर वह पेड़ पर चढ़ता है। लेकिन हमारे लिए बच्चों को पिटारे से बाहर निकालकर उन्हें पहले दूध पिलाना जरूरी था। दो दिनों से वे भूखे ही थे। अपने ही पंजे मुंह में लेकर चूसते हुए चूं-चूं कर रहे थे। टोकरी को जरा भी धक्का लगते हो वे गुस्सा हो जाते थे। सभी के सुझाव

चार हाथ दूर से ही आ रहे थे। मैंने रस्सी खोलकर टोकरी का ढक्कन हटा दिया। उसे तिरछा करने पर दो काले रंग के गोल-मटोल बच्चे आवाज करते हुए इधर-उधर भागने लगे। इतनी देर तक तमाशा देख रहे सभी लोग अब उन्हें देखते ही भागने लगे थे। दो लोग तो पास ही के पेड़ पर तत्परता से चढ़कर उन्हें किस तरह पिटारे में फिर से बंद किया जाये, इस बारे में सुझाव दे रहे थे। बच्चे जरा गुस्से में दिख रहे थे। वे जोर से चीख रहे थे। हमें फिर ख्याल आया कि उन्हें किसी के सहारे की आवश्यकता है। उनकी मां तो वहां पास थी नहीं। फिर हिम्मत कर एक को गर्दन से पकड़कर प्रकाश ने उठा लिया तथा दूसरे को मैंने पकड़ा और दोनों हाथों से छोटे बच्चे की तरह उसे बगल में थाम लिया। हमने उनकी आंखों को एक हाथ से ढंक दिया। तब कहीं बच्चों का चिल्लाना बंद हुआ। हम पालथी मार कर बैठ गये। हमारी गोद में बच्चे चुपचाप पड़े रहे। गर्दन की पकड़ हमने जरा ढीली कर दी और अपना हाथ निकाल लिया। आंखों पर से हाथ हटते ही उजाला देखकर मेरी गोद वाला बच्चा फौरन चिड़चिड़ाया और उसने मेरी जांघ में काट लिया। मुझे भयंकर पीड़ा हुई। फिर मैंने एक हाथ से उसकी आंखें ढंक दीं और दूसरे हाथ से गर्दन के नीचे धीरे-धीरे उसे सहलाने लगा। बच्चा धीरे-धीरे शांत हुआ। अपना अगला पैर मुंह में लेकर गुड़-गुड़ आवाज करते हुए वह पड़ा रहा। अब मैं भी कुछ शांत हुआ। मेरे माथे पर पसीना था, लेकिन उसे पोंछने के लिये मेरा कोई हाथ खाली नहीं था और अब अपना हाथ हटाने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। प्रकाश के पास दूसरा बच्चा था, अब मुझे उसकी याद आयी। उसका हाल जानने के लिये मैंने उधर देखा। प्रकाश ने तो अच्छी प्रगति की थी। बच्चे को चूसने के लिये उसने अपना हाथ उसके मुंह में दे रखा था और वह भी इस प्रकार से कि उसके हाथ से बच्चे की आंखें भी ढंक गयी थीं। हम दोनों ने नजर से ही एक दूसरे को 'सब ठीक है' का इशारा किया। 'राजू बंदर की कहानी' के समान सब कुछ शांत हुआ देखकर, कई लोग तो वापस लौट गये थे। उनकी आंखों में हमारे लिये प्रशंसा थी। भालू से भी अधिक हमारा बखान करना स्वाभाविक ही था। मेरी जांघ में काटे हुए स्थान पर बहुत दर्द हो रहा था। इस तारीफ की कीमत तो मैं पहले ही दे चुका था। प्रशंसा पाकर व्यक्ति को जो सुख होता है, उससे यातनाओं का दर्द मिट जाता है। तारीफ करने वाले का भी कुछ जाता नहीं है। किसी का बखान होने पर जो लोग ईर्ष्या करते हैं उन्हें इस मार्ग को अपनाकर देखना चाहिए। लेकिन वे इसके लिए तैयार नहीं होते। उन्हें तो बस आलोचना ही करनी आती है।

अब तो सभी सहायता करने लगे थे। थाली में दूध-चावल लाया गया। बहुत संभालकर बच्चों को थाली के सामने रखा गया। वे 'फुर्र फुर्र' आवाज करते हुए दूध-चावल गपकने लगे। भालू खाने के मामले में सब से लोभी और गंदा प्राणी होता है। दोनों ने ही मस्ती में अपने पांव थाली में रखे थे। आधे से अधिक खाना उन्होंने नीचे बिखेर दिया था। अब

वे बहुत शांत हो गये थे। मेरे पास जाने पर वे दोनों मेरे पैरों के बीच आकर खड़े हो गये। अपने अगले पैरों से एक ने मेरे पैर की पिंडली पकड़ ली। उसके नाखून बड़े नुकीले थे। नीचे झुककर उसे गर्दन से पकड़ने का प्रयास करते ही उसने मुझे कोहनी पर ही काट लिया। फिर मैंने उसे गोद में उठा लिया। चूसने के लिये मैंने उसके मुंह में उंगली दी। कुछ ही क्षणों में वह सो गया। अब तो सभी उसे छूने की इच्छा से आगे बढ़ रहे थे। थोड़ी देर बाद बच्चे ने अपनी मिचमिची आंखें खोलकर मुझे देखा। अब उसकी दृष्टि स्नेहभरी थी। मैं भी खुशी से उसकी पीठ पर हाथ फेरता रहा। धीरे-धीरे पीठ पर से हाथ फेरते हुए पूंछ तक ले गया। बच्चे ने राहत की सांस लेते हुए आवाज दी। यह कैसी आवाज? तुरंत पता चला कि उसने मेरी गोद में ही टट्टी-पेशाब कर दिया था। मन में आया, "यदि तू ऐसा ही शांत और सभ्य रहेगा तो यह कष्ट भी मैं सह लूंगा।" अंधेरा होने पर मैंने दोनों को फिर टोकरी में रख दिया। उन्हें थोड़ी गर्मी मिले, इसलिये उस पिटारे में कपड़ा रखकर टोकरी को एक बाथरूम में रख दिया। उन्हें फिर रात को 11 बजे दूध-चावल खिलाया गया।

दूसरा दिन ठीक बीता। प्रकाश की बाजू तथा हाथ का अंगूठा, मेरी जांघ और कोहनी जख्मी हुए थे। लेकिन भालू-बच्चों का आनंद देखकर हमें वह दर्द महसूस नहीं हो रहा था। कल के खाने का उन्हें अजीर्ण हुआ लगता था। गंदा होने पर हमें तीन बार नहाना पड़ा। दोपहर में बड़ी देर तक उन्हें खुला छोड़कर हम पास ही में बैठे रहे। तीसरा दिन भी आनंद से बीता। भालू अब हमें आवाज और गंध से पहचानने लगे थे। हम बहुत खुश थे। चौथा दिन बदकिस्मती वाला था। सुबह जागने पर वहां गये तो कोई आवाज ही नहीं आई। बाथरूम का दरवाजा खुला पड़ा था और बच्चे नदारद थे। उन्हें ढूंढ़ने के लिये हम दिन भर खाली पेट बहुत भटके। सभी तरफ दूर तक देखा। झाड़ी-झुरमुट, खाई, गड्ढे सब छान मारे। शाम को निराश होकर लौट आये। तीन दिनों में उन्होंने काटने से अधिक प्यार ही दिया था। जख्मों की पीड़ा से भी हमें बच्चों के चले जाने की पीड़ा अधिक थी।

कुछ उत्साही लोगों ने हमारे पास आकर बच्चों की मां के पदचिह्न दिखाई देने की बात बतायी। "मां ही आकर अपने बच्चों को ले गयी, अच्छा हुआ। और तो और रात में उसने किसी पर हमला भी नहीं किया" ऐसी तसल्लियां वे हमें दे रहे थे और हमदर्दी दिखा रहे थे। ऊपर से हमें ही सिखा रहे थे कि हिरन, गिलहरी, बंदर पालना ठीक है, लेकिन भालू, शेर को घर में रखना खतरे को न्योता देना है। मां जिंदा होती तो ये बच्चे हमें मिलते ही नहीं। यदि यह भी मान लो तो मां रात में वहां आयी थी तो बाथरूम के दरवाजे की सांकल खोल देने वाली मादा भालू भला कहां से आ गयी? रात में बाथरूम का दरवाजा खोलकर किसी ने अगर बच्चों को निकाल दिया होता तो बच्चे इतने छोटे थे कि थोड़े ही समय में वे इतनी दूर कैसे निकल जाते, क्योंकि हमने आसपास का चार-पांच मील का

इलाका पूरी तरह छान मारा था। बाद में 1981 में दो माड़ीया लोगों के झगड़े में हमें पता चला कि उसमें से एक ने उन बच्चों को रात में चुरा कर खेत में उन्हें अपना शिकार बना लिया था। उस समय उन्हें मालूम नहीं था कि इन बच्चों को हमने पाला है। आज यदि हमारा पाला हुआ कोई जानवर छूट कर भाग भी जाये तो उसे आदिवासी मारकर नहीं खायेंगे, यह बात निश्चित है।

वह महीना ही कुछ खराब बीता। भेकर और बार्किंग डियर के पिंजरे का दरवाजा वैसे तो छोटा ही था। शुक्रवार को सब्जी के छिलके खिलाने के लिये रेणुका पिंजरे में जा रही थी। तभी बार्किंग डियर बिंटू बाहर निकल आया। पिंजरे के बाहर वह दुबककर खड़ा रहा। पिछले आठ महीनों से वह हमारे पास था। हम चारों को वह अच्छी तरह से पहचानता भी था। प्रकाश, मैं, मंदा भाभी सामने ही घर के दरवाजे पर खड़े थे। लोगों ने उसके आसपास घेरा बनाकर उसे रोका भी, लेकिन शोर न करते हुए शांत खड़े रहना उनके ध्यान में नहीं रहा। जिस तरह गाय-भैंसों को चुराते समय उन्हें घेरने के लिये आवाज निकालते हैं, उसी तरह आवाज कर वे उसे पिंजरे में बंद करने का प्रयास कर रहे थे। उसे तो वहां केवल रेणुका ही पहचान की दिख रही थी। लोगों के शांत रहने पर रेणुका ने उसे निश्चित ही आवाज देकर अंदर बुला लिया होता। लेकिन बिंटू वैसे भी बहुत डरपोक और शर्मीला था। इतना हो-हल्ला सुन और भारी भीड़ देखकर वह काकड़ हिरन बिदक गया। तुरंत ही घेरा तोड़ते हुए, एक ही छलांग में वह दूर निकल भागा। लोगों के पीछा करने पर तो वह कुलांचें भरता हुआ और दूर भाग गया। हमारे वहां पहुंचने से पहले ही वह ओझल हो चुका था। बाद में कई बार हिरन या अन्य जानवर पिंजरे से बाहर निकल आते। लेकिन हमारी सब को यह हिदायत थी कि शोर न करते हुए वे केवल घेराव कर के उसे रोके रखें। फिर पहचान वाला कोई भी जैसे प्रकाश, पांचाल, मैं, कवडू, तुकाराम आकर उसकी रुचि का चारा या पपीते के पेड़ के पत्ते खिलाते हुए उसे पिंजरे में वापस ले जाता। हिरन तो सीधे भीतर आ जाते। दूसरे जानवरों के बारे में कभी अड़चनें खड़ी हो जातीं। भालू, तेंदुआ छूटने पर उनका घेराव करने की कोई हिम्मत ही नहीं करता था। लेकिन वे दोनों भी इधर-उधर न भटककर सीधे प्रकाश के घर में ही आ जाते। हम लोग फिर आराम से उन्हें उनके पिंजरे में छोड़ आते थे।

जो काकड़ हिरन बिंटू भाग गया था, उसके गले में कपड़े का एक पट्टा बंधा हुआ था। वह जंगल की ओर भाग गया था क्योंकि आसपास घना जंगल था। वहां उसे खाने की कोई कमी नहीं पड़ने वाली थी। वह अब लगभग एक वर्ष का था। जंगल में अकेला रह सकता था। हमें डर था तो उसके शिकार होने का। दूसरी बात यह थी कि यदि वह जंगल में ही बड़ा होता रहा तो साल भर में उसके गले का पट्टा छोटा पड़ जायेगा। यहां होता तो गर्दन बढ़ने पर हम उस पट्टे को जरा ढीला कर देते या उसे निकाल ही देते। चार

महीने बाद वह हिरन हमें जंगल में मिला, तब उस पट्टे के कारण ही हम उसे पहचान पाये थे।

मार्च 1976 में ही कोसपुंड़ी गांव के लोगों ने सियार का एक बच्चा लाकर हमें दिया। गुच्छेदार पूंछ और छोटे से मुंहवाला वह गीदड़ का बच्चा बड़ा ही प्यारा लगता था। पहले दिन से ही वह थाली में दूध-चावल खा लेता था। कभी कोई भालू का बच्चा मिल जाय, उस तैयारी में हमने एक पिंजरा पहले ही बना रखा था। उसी में ही हमने इस नन्हे सियार को रखा। महीने भर में वह जरा तगड़ा हो गया था। कहा जाता है कि सियार चतुर या धूर्त होता है। यह सच है या नहीं, एक चर्चा का विषय हो सकता है। लेकिन गीदड़ बड़ा ही डरपोक होता है। दिन भर वह पिंजरे के अंदर ही घूमता रहता। थोड़ी सी आवाज होने पर चौंक जाता। शाम को और रात्रि में बड़ी जोर की आवाज में वह चिल्लाता रहता। वैसे सियार की चिल्लाहट सुनना अशुभ माना जाता है। हम सभी गत दस वर्षों से ये चिल्लाहटें सुन रहे हैं। लोगों द्वारा हमारी और हमारे काम की जो आलोचना होती रहती है, कहीं उसकी सूचना तो यह सियार हमें अपनी पुकार से नहीं देता है? मंगूस का मुंह देखना शुभ माना जाता है, उसे भी मैं रोज ही देखता रहता था। शायद इस कारण शुभ और अशुभ की आपस में काट हो जाती होगी।

आसपास के जंगल में गीदड़ के बंधु-बांधव होने से वे एक दूसरे को आवाज देते रहते हैं। फिर हमारा यह गीदड़ भी उसी सुर में सुर मिलाकर चिल्लाने लगता । दो-चार दिनों तक यह चलता रहता। फिर वह झुंड कहीं दूर निकल जाता और एक दो महीने शांति रहती। इसका भी आगे चलकर बहुत लाभ हुआ। सियार से बकरियों को बड़ा धोखा रहता है। बकरियों के झुंड में जंगल में चरने के लिये जाने पर कहीं कोई बकरी अकेली पड़ जाये या बच्चा अकेला दिख जाये तो सियार उसे मार देता है। जंगल में सियार का झुंड होने पर हमारे सियार और झुंडवालों का बड़े जोर-जोर से चिल्लाकर आपस में संवाद चलता। सियार कहां हैं, किधर जा रहे हैं, इसका हमें रात में पता चल जाता था। फिर हम बकरियों को किसी दूसरे हिस्से में चरने ले जाते। तब से हमारी बकरियां गीदड़ों की चपेट से बच गयीं।

उसी गर्मी के दिनों में हेमलकसा और बोटनफुड़ी गांव के लोगों ने बबली की जाति के दो बंदर के बच्चे लाकर हमें दिये। दोनों ही नर थे। एक का नाम रखा राजू, दूसरे को कहने लगे नागू। नाम पुकारने पर बंदरों को तुरंत पता चल जाता है। खास व्यक्ति यदि उन्हें आवाज नहीं देता तो बंदर नाराज हो जाता है। फिर वह आवाज निकाल कर उस व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर खींचता है। आसपास कौन वयस्क खड़ा है, कौन उन्हें खाने पीने को देता है, इन सब बातों का बंदर बहुत ध्यान रखते हैं। उन्हीं व्यक्तियों से वे स्नेह रखते हैं। उन्हीं के नाराज हो जाने पर उन्हें खुश करने के लिये या उनके इशारे पर सामने

कितना ही बड़ा व्यक्ति या जानवर क्यों न खड़ा हो वे तुरंत उस पर हमला कर देते हैं। अपने प्रिय व्यक्ति पर उन्हें इतना भरोसा रहता है। बंदर की निष्ठा परिस्थिति के अनुसार बदलती रहती है। हमें अभी तक बहुत लाल बंदर मिले हैं। बड़े हो जाने पर हम उन्हें जंगल में छोड़ देते है या और कहीं भेज देते हैं। हमारे यहां रहने तक वे बंदर मेरी आज्ञा में रहते थे। लेकिन बड़े होने पर जब हम उन्हें सोमनाथ-नागपल्ली प्रकल्प में भेज देते तो वहां जाने के बाद वे वहां के किसी अन्य व्यक्ति के इशारे पर मुझ पर ही हमला कर सकते थे। किंतु हिरन, भालू और तेंदुआ बचपन की पहचान को सालों बाद मिलने पर भी नहीं भूलते हैं।

आंगन में ही तीन खंभे गाड़कर उन पर लकड़ी की पट्टियां लगा दीं। इन तीनों खंभों का आपस में अंतर इतना रखा कि जंजीरें आपस में उलझ ना सकें। तीनों ही बंदर एक दूसरे को आपस में छू सकते थे। यह आवश्यक था, क्योंकि दिनभर तो हम उनसे खेल नहीं सकते थे। उनका बहुत सारा समय तो एक दूसरे के बाल साफ करने और आपस के झगड़ों में ही बीत जाता था। पिल्लू बंदर को फांसी लग गयी थी या उसने आत्महत्या की थी, इसका आज तक पता नहीं चलने के कारण जंजीर लगाते समय हमने इस बारे में सावधानी रखी थी। बंदर दिन भर खंभों पर नीचे-ऊपर करते रहते थे। अपनी जंजीर के दायरे में किसी के आने पर वे उसे नोंचते या काट खाते थे। उनका यह खेल देखते-देखते घंटों बीत जाते थे। राजू नर ने थोड़े समय में ही प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। राजू था भी चतुर। उसने जंजीर खोल लेना भी सीख लिया। स्वयं को छुड़ाकर, बहुत सारे घरों में घुसकर बरबादी करने लगा था। बाद में तो वह अपने साथ ही दूसरों की भी जंजीर खोल देता। उसी समय पुणे से हमारी नेली कुतिया आ गयी। उससे राजू डरता था। नेली राजू को पकड़वाने में बड़ी सहायता करती थी।

अप्रैल 1976 में मैं एक महीने के लिये पुणे गया था। वहां सभी पुराने शिकारी दोस्त मिले। बड़े दिनों बाद मिलने से उन्होंने शिकार पर चलने के लिये आग्रह किया। मेरा अब शिकार खेलने के लिये जाना असंभव था। हेमलकसा में पालतू जानवरों के बारे में उन्हें मैंने सब बताया। उन्हें शायद लग रहा था कि मैं गप्पें हांक रहा हूं। वे स्वयं वहां आकर देखे बगैर समझ नहीं सकते थे। मैं भी हेमलकसा लौट जाने के लिये बेचैन था। वहां के वासियों का स्नेह मुझे पुकार ही रहा था। किंतु उससे अधिक वहां के जानवर मित्रों का खिंचाव बेचैन किये था।

मई 1976 में हेमलकसा लौट आया। पिंजरे में जाने की बड़ी उत्सुकता थी। मुझे देखकर पेंटी हिरनी भागती हुई आकर मुझसे चिपक गयी। सियार, मंगूस, गिलहरी, तेंदुआ सभी ने आनंद प्रकट किया। जब नाग ने भी मेरी पहचान प्रकट की तो मुझे बड़ा अचंभा हुआ। बबली, राजू और नागू तो कई घंटों तक मुझे पकड़े रहे। मेरे इतने दिनों तक बाहर रहने

पर मैं उन्हें कहीं भूल तो नहीं गया, इस बात की उन्होंने परीक्षा की होगी। बबली कंधे पर बैठकर मेरे सिर के बालों को देखने लगी। मेरे लिये वह दूसरों पर खों-खों कर दौड़ पड़ी।

यहां आने पर मैंने पिसूरी हिरन (माउस डियर) के संबंध में बहुत सुना था। लेकिन उसे देखा यहीं आकर। आदिवासी उसे 'तुर्रे' कहते हैं। पूरी तरह जवान हो जाने पर भी यह हिरन बिल्ली से भी छोटा होता है। उसके शरीर पर हरे रंग के बालों में सफेद पट्टे और धब्बे होते हैं। वह बहुत ही शर्मीला होता है। हाथ से दूध पिलाने पर भी पालतू नहीं हो पाता है। दूध पिलाना बंद करने पर वह अपने शरीर को छूने भी नहीं देता है। हमारे पास अब तक चार माउस डियर के बच्चे आये। अब भी हमारे पास दो बाकी हैं। संयोग ऐसा रहा कि जब भी दो रहे, एक साथ भले ही हों लेकिन दोनों या तो नर या मादा का जोड़ा रहा। इस कारण ये हिरन बंद पिंजरे में बच्चे देते हैं या नहीं, इसका पता नहीं चल सका। उनका शिकार हो ही रहा है। कुछ बरसों बाद उनकी जाति ही नष्ट होने का डर है।

गोपनार गांव में माउस डियर का एक बच्चा होने की खबर हमें मई 1976 में मिली। मोहन ट्रैक्टर लेकर उसे लाने गया। शाम को बड़ी उत्सुकता से हम सब उसकी राह देख रहे थे। ट्रैक्टर की आवाज सुनते ही मैं दरवाजे की ओर दौड़ पड़ा। मोहन खाली हाथ लौटा था। 'यह क्यों और कैसे हुआ' हमने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। हंसते हुए मोहन ने सिर पर से हैट उतारा। और सवालों से पहले ही उसने हैट हमारे आगे कर दिया। मैंने देखा कि एक बड़े चूहे के आकार का हिरन हैट में था।

मैंने बोतल में दूध बनाया। प्रकाश ने उसे दूध पिलाने का प्रयास किया। परंतु वह दूध पीने को तैयार नहीं था। प्रकाश ने बोतल मेरे हाथों में थमा दी। लेकिन फिर भी वही बात। प्रकाश ने बोतल लेकर निपल उसके मुंह में डालकर वहीं दबाये रखा और हंसते हुए मुझे बच्चे की पूंछ के निचले हिस्से में खुजलाने को कहा। मैं धीरे-धीरे वहां खुजलाने लगा। उसके शरीर के सारे बाल बहुत ही मुलायम थे। कुछ ही क्षणों में हिरन ने पेशाब की और साथ ही चुर्र चुर्र आवाज करते हुए दूध पी डाला। फिर भी वह निपल चूसता ही रहा। उसने मेरे खुजला रहे हाथ पर शी-शू दोनों ही कर दी थी। एकदम नये आये जानवरों के बच्चों को दूध पिलाने का यह पाठ मैंने प्रथम बार सीखा था। निसर्ग के नियम के अनुसार, प्रत्येक मादा–भले ही शेरनी हो या रीछनी– जब तक उसके बच्चे बाहर का खाना प्रारंभ नहीं करते तब तक उनकी विष्टा अपनी जीभ से चाट कर खा लेती है। ऐसा करने से से बच्चे जान जाते हैं कि वह उनकी मां पास है और उसका दूध पीने में कोई खतरा नहीं है। सभी जंगली जानवरों के बच्चों की साधारणतया दस दिनों तक आंखें बंद रहती हैं। इसका एक कारण और भी है। जंगल में सभी मादाएं अपने बच्चों को छिपा कर रखती

हैं। उनके छिपाने की जगह का किसी को पता न चले, उनकी यही इच्छा रहती है क्योंकि प्रत्येक जानवर का कोई न कोई शत्रु तो है ही। बच्चों की विष्टा चाटकर साफ करने से उसकी गंध से शत्रु को उनका पता चलने का भय भी नहीं रहता। वही तरीका हमारे साथ रहने वाले जानवर भी अपनाते और अपने बच्चों को उसी तरह पालते-पोसते। इसी कारण नवजात बच्चे को दूध पिलाते समय हमें अपने हाथ खराब करवाने ही पड़ते हैं। दो-चार दिनों में ही हमारे हाथ की गंध और स्पर्श से परिचित हो जाने पर बच्चा अपने आप दूध पीने लगता है। माउस डियर धीरे-धीरे बड़ा हो रहा है। उसका शरीर बहुत छोटा होने से हमने उसे घर में ही रखा था। पंद्रह दिनों के बाद वह ताजा कोमल चारा खाने लगा। उसका नाम रखा मेंटी। ये सारे नाम यहां के आदिवासियों के हैं। उनकी याद रहे इसके लिये जो भी कोई हमें जानवर लाकर देता उस पर या उसकी पत्नी के नाम पर हम उस नर या मादा बच्चे का नाम रखते थे। इससे उनकी याद भी बनी रहती थी।

इस जंगल में जुलाई 1976 में जान पर आ बनने वाली एक बात हुई। 4 जुलाई को प्रकाश, मंदा, रेणुका, मैं, मुकुंद, शरद, कल्याण, जगदीश गोड़बोले और अन्य बच्चे घूमने के लिये बेजूर गांव के पास पहाड़ी पर गये। दोपहर का समय था। बरसाती हवा चल रही थी। पहाड़ की चढ़ाई भी थका देने वाली थी। इसी कारण हम सब धीमी गति से ही चल रहे थे, गप्पें हांकते, हंसते-खेलते। आगे चलने वाला साथी चिल्लाया, "हिरन, हिरन।" हम आगे दौड़े–सामने काकड़ खड़ा था। मैंने उसे तुरंत पहचान लिया। यह तो हमारा ही 'बिंटू' था जो चार-पांच महीने पहले भाग गया था। प्रकाश, मंदा भाभी, रेणुका सभी ने उसे पहचान लिया। गले में कपड़े का बंधा पट्टा वैसा ही था। खाने-पीने का उसे कोई कष्ट नहीं हुआ था, यह बात उसकी पुष्ट देह से स्पष्ट थी। हम एकदम समझ नहीं पाये कि क्या करें। हमने उसे आवाज दी। उसने हमें पहचान लिया। वह सामने से चलकर पास ही एक किनारे जाकर खड़ा रहा। उसके अपरिचित लोग अधिक थे। हर कोई हिरन देखने को बेचैन था। जो पीछे थे वे भी भागते हुए आगे आने लगे। हमने जोर से फिर आवाज दी। बिंटू दूर खड़ा रहा। उसने हमें पहचान तो लिया था, लेकिन जैसे-जैसे अपरिचित लोग बढ़ने लगे, उसने पीछे भागते हुए एक बार फिर पीछे मुड़कर देखा और फिर एक छलांग लगाकर अदृश्य हो गया। वह जीवित है और हमें भूला नहीं है, हमें इसी बात का बड़ा आनंद था। हम सभी आगे बढ़ते रहे, और पहाड़ी के ऊपरी सिरे तक पहुंचे। हम कुछ समझ पायें इससे पहले ही सब भागते नजर आये। पहाड़ की खड़ी चट्टान के एकदम नीचे से बड़ी मधुमक्खियों का उत्तेजित बादल सा उभर रहा था। उनके हमले के डर से सभी भागते हुए गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते किसी तरह रात में घर पहुंचे। हममें से एक बेहोश होकर राह में गिर पड़ा था। उसे बैलगाड़ी भिजवाकर उठा लाये। हरेक को सौ से भी अधिक मक्खियों ने काटा था। प्रकाश का नन्हा लड़का केवल दस महीने का था, उसे भी 50-60 मक्खियों ने बुरी तरह

काटा था। सौभाग्य से वह बच गया। आगे पूरा महीना उसी की परेशानी रही। जरा स्थिति शांत होने पर विचार आया कि बिंटू हिरन आगे हमारी ओर बढ़कर फिर दूसरी दिशा में क्यों मुड़ गया? क्या उसे खतरे का कुछ अंदेशा था? मैं और प्रकाश केवल दो ही होते तो अवश्य ही हिरन का पीछा करते। कहते हैं कि बिल्ली के रास्ता काटने पर काम नहीं बनता है। तो क्या हिरन के रास्ता काटने पर आगे कुछ खतरा है, यह भी मान लिया जाये?

बरसात के मौसम में गोल्लागुड़ा गांव से एक काला बंदर अर्थात लंगूर लाया गया। वह अभी बच्चा ही था। काले मुंह के बंदर इस प्रदेश में अधिक नहीं हैं। लाल मुंह वाले बंदरों के तीन-चार झुंड हमने नदी किनारे देखे हैं। परंतु लंगूर नहीं। लाल बंदर की तरह वे बस्ती में घूमते भी नहीं हैं। वे न घरेलू बनते हैं, न पालतू ही। वे स्वभाव से ही गरीब होते हैं, परेशान भी नहीं करते। इस लंगूर के बच्चे का नाम 'लिंबू' रखा। काले बंदर भी लाल बंदरों की तरह ही कंधों तथा शरीर पर खेलते रहते हैं, लेकिन काटते या नोंचते नहीं हैं। फिर सारा समय उनसे ही खेलते रहने की वे जिद भी नहीं करते। वे अपना मनोरंजन स्वयं ही कर लेते हैं। अपनी ही मस्ती में खेलते रहते हैं। लिंबू बहुत तेजी से बड़ा हुआ। दो वर्ष वह हमारे साथ रहा। मेरे और प्रकाश के पास से निकलने पर आवाज करते हुए वह हमें बुलाता। उसका खेलना भी हमें आनंद प्रदान करता था। वह कभी नोंचता या काटता नहीं था। उसकी शीघ्र ही पिसूरी हिरन मेंटी से दोस्ती जम गयी। उन दोनों की आपस में खूब बनती। मेंटी अपना खाना पीना होने के बाद लिंबू के पास ही रहती थी। लिंबू जब था तब तक हमें मेंटी की कोई फिकर नहीं करनी पड़ी। लिंबू पीठ के बल उल्टा पड़ा रहता और मेंटी को अपनी छाती से चिपकाये रखता। लिंबू को कभी पेशाब करते हुए हमने नहीं देखा। मेंटी शायद उसका पेशाब पी जाती थी। बचपन से दूध पीने का शौक वह इस प्रकार पूरा करती थी। लिंबू बड़ा हो गया था। उस जाति की यहां कोई मादा भी नहीं थी। उस कारण भी उसे इससे सुख मिलता होगा। उनका यह आपसी प्यार आखिर तक चलता रहा। हिरन और चारा खाने वाले सभी जानवरों के लिए नमक खाना आवश्यक होता है। वह मेंटी को लिंबू के मूत्र से भरपूर मात्रा में मिलता होगा। हमारे पास कैमरा भी नहीं था। होता तो इस अवसर का फोटोग्राफ बहुत लोकप्रिय होता। जंगल की जमीन वैसे ही कई जगह पर नमकीन होती है। जंगल के जानवर वहां की मिट्टी चाट कर अपनी नमक की आवश्यकता पूरी करते हैं। ऐसे स्थान हर जंगल में जरा कम ही होते हैं। ऐसे स्थानों का पता चलने पर शिकारी बड़े प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वहां आने वाले जानवरों का शिकार करना आसान हो जाता है। इन आदिवासियों का दिमाग भी कभी बहुत अजीब ढंग से चलता है। पहाड़ी माड़ीया आदिवासी गांव के पास ही जंगल में एक असुविधाजनक जगह चुनते हैं। फिर गांव के सभी पुरुष, स्त्रियां, बच्चे केवल वहीं जाकर पेशाब करते

हैं। गर्मी के मौसम में मूत्र जमीन सोख लेती है। ऊपरी सतह पर केवल क्षार (नमक) रहता हैं। इसलिये वहां जब हिरन क्षार चाटने को आने लगें तब वहां चूहे या मक्खी मारने का जहर फैलाकर आराम से उनका शिकार हो जाता है।

भोपाल गैस त्रासदी के बाद ही जहरीली दवाइयों के बारे में जरा अधिक चर्चा होने लगी है। चूहे मारने वाली या वैसी अन्य दवाएं धड़ल्ले से जंगली जानवर मारने के काम में लाई जा रही हैं। पता नहीं इस बात की ओर प्रशासन कब ध्यान देगा? राम जाने। हर वर्ष हमारे प्रदेश में और पास ही लगे हुए बस्तर क्षेत्र में कम से कम दो-तीन तेंदुए और दो-तीन बाघ इस चूहामार जहर से मारे जाते हैं।

कभी-कभी बाघ और तेंदुए आदिवासियों के जानवर मार देते हैं। इसमें इन जानवरों की कोई गलती नहीं। जंगल काटकर मनुष्य दिन-प्रतिदिन जंगली जानवरों के इलाके पर हक जमाता जा रहा है। जंगली प्राणियों द्वारा जानवरों के मारे जाने पर खेतीहर आदिवासियों के नुकसान की पूर्ति वन विभाग स्वयं करता है। लेकिन वह धनराशि अपर्याप्त होती है और उसे लेने के लिये आवश्यक कार्यवाही और कानून इतने कष्टदायक और पेचीदा होते हैं कि कभी किसी को उस धनराशि का भुगतान शायद ही हुआ हो। यह भी सच है कि वन विभाग के कर्मचारी और अधिकारी भी वन्य जीवों के संरक्षण के प्रति बहुत उदासीन हैं। आदिवासी भी फिर नुकसान की धनराशि पाने के झंझट में पड़ने के बदले मारे हुए जानवर के शरीर में चूहामार जहर भर देता है। दूसरे दिन बचा हुआ शिकार खाने पर बाघ वहीं तड़प कर मर जाता है। यह खाल दो-तीन हजार रुपये देकर खरीदने वाले व्यापारियों के दलाल इस प्रदेश में इसी ताक में घूमते रहते हैं। यही खाल विदेशों में भेजकर व्यापारी खूब धन कमाते हैं।

पहले दो वर्षों तक तो हम जंगल में खूब घूमते थे। इतना बड़ा और घना जंगल होने पर भी उस अनुपात में पक्षी बहुत कम थे। आदिवासी और उनके बच्चे छोटा से छोटा पंछी भी मार कर खा जाते हैं। कहीं भी बाहर जाते समय पक्षी मारने का छोटा धनुष साथ लिये बगैर कोई बाहर नहीं जाता। इस प्रदेश में धनेश पक्षी सर्दियों में दिखता है। ऐसा लगता है मानो उसकी दो चोंच हों क्योंकि उसकी चोंच के ऊपर एक फलास सा रहता है। लंबी गर्दन और काले सफेद रंग वाला यह पक्षी चील की तरह बड़े आकार का होता हैं। वह ऐसे उड़ता है जैसे हवा में तैरते हुए एक पेड़ से दूसरे पर आ पहुंचा हो। उसकी आवाज बहुत ही कर्कश होती है। वह अंडे देने के लिये इस प्रदेश में आता है तथा गर्मी के दिनों में लौट जाता है। नवंबर 1976 के आसपास हेमलकसा गांववासी बंडू ने बंदूक के छर्रों से जख्मी हुआ एक पक्षी हमें लाकर दिया। उसकी गर्दन और सीने से हमने चार-पांच छर्रे निकाले। हमारे द्वारा भात के छोटे-छोटे गोले बनाकर उसे खाने को देने पर वह भात के दानों को हवा में उछालता और फिर मुंह खोलकर उन्हें चोंच में पकड़कर खा जाता।

जब देखो तब वह अपनी चोंच से मारने को दौड़ता। पांच-छह दिनों में ही वह हमें पहचानने लगा। गर्दन के नीचें खुजलाना उसे बहुत अच्छा लगता था। पास जाते ही गर्दन पीछे की ओर झुकाकर वह खुजलाने के लिये हमें सुझाता। बाद में उसके जख्म गहरे हो गये तथा वह 15 दिन बाद मर गया। फिर उसके बदन को साफ कर उसमें दवाइयां भर कर स्टफ करके हमने उसे बरामदे में रख दिया। मुंबई के मशहूर संस्थान मुंबई नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी का वह प्रतीक-चिह्न है। उनके भवन का नाम भी हॉर्नबिल हाउस ही है। संस्था के सदस्य जंगल निरीक्षण करने के लिये यहां आये थे। हमारे पास रखे प्राणियों की तारीफ सुनकर एक दोपहर वे हमारे यहां पहुंचे। बरामदे में रखा पंछी देखकर उन्होंने पूछा कि वह कौन-सा पंछी है, "अरे, आप तो मुंबई नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी के सदस्य हैं और आप इसे नहीं पहचानते? हमारे यह कहने पर वे बहुत नाराज हुए। उन्होंने हॉर्नबिल नहीं देखा था, यह बताने में उन्हें शर्म आ रही थी। "हॉर्नबिल तो यहां होता ही नहीं, आप इसे कहां से लाये? वह तो केवल अंडमान निकोबार में ही होता है।" इतना कहकर वे वापस लौट गये।

मैंने दिसंबर में पहली बार बैंडेड क्रेट जाति का सांप देखा था। यह सब से अधिक जहरीला होता है। जरा तिकोने सिर का, बदन पर एक इंच चौड़े काले-सफेद पट्टेवाला यह सांप दिखने में बहुत सुंदर होता है। किसी नाग से यह सोलह गुणा अधिक जहरीला कहा जाता है। इसे बिलकुल यमदूत ही समझिये। हमारे प्रकल्प के आसपास सादे क्रेट सांप बहुत निकलते हैं। वे भी नाग से चार गुणा जहरीले होते हैं। आंगन में, घर में, बाथरूम-संडास में भी ये सांप आ जाते हैं। अभी तक इस प्रकल्प में किसी को भी जहरीले सांप ने नहीं काटा है। सांप या नाग किसी को भी अकारण ही नहीं काटते। नाग बदले की भावना रखता है, यह भी सरासर झूठ बात है। गत दस वर्षों में हमने सभी जाति के पांच-सौ के करीब सांप पकड़े हैं। जहरीले होने पर उन सांपों को हम पिंजरे में रखते हैं। अन्य सांपों को न मारकर हम उन्हें जंगल में छोड़ देते हैं। सांपों के साथ 110 घंटे बिताने जैसे प्रयोग के संबंध में पढ़ने पर लगता है कि हमारे इतने वर्षों को यदि घंटों में गिना जाये तो हम सभी का नाम गिनीज बुक में आना चाहिए। फिर सांपों के संग का प्रयोग करने वाले को अपने आसपास के सांप दिखते रहते हैं, लेकिन हमारी वैसी बात नहीं। एक किस्सा सुनिए! सन् 1980 में पकाने के लिऐ सीताफल घास से ढंककर एक टोकरी में रखे थे। सुबह मंदा भाभी यह देखने गयी कि सीताफल पक गये हैं या नहीं। ऊपर की घास हटाने पर उसे हाथ में कुछ विचित्र सा स्पर्श हुआ। टोकरी बाहर उजाले में लाने पर उसने देखा कि एक क्रेट जाति का सांप घास की गर्मी में बैठा था। केवल सौभाग्य से मंदा भाभी सर्प दंश से बच गयी। बाद में एक दिन रसोईघर में भोजन के लिये पत्तलें बिछाई हुई थीं। जब हम थोड़ी देर बाद वहां पहुंचे तो देखा कि एक नाग पत्तल पर कुंडली मारकर बैठा था। मैंने

सोचा यह नये खाद्य-पदार्थ को बनाना हमारा रसोइया कब सीख गया! यह एक अचरज की बात थी।

तिरकामेटा गांव के लोगों ने सन् 1977 के प्रारंभ में हमें मोर के चार बच्चे भेंट में दिये। दिखने में वे एकदम मुर्गी के चूजों जैसे ही थे। लेकिन आकार में उनसे कुछ बड़े थे। दिन भर वे कुछ न कुछ खाते ही रहते। परंतु स्वभाव से मोर बड़ा मिलनसार होता है। चूजे आकर गोद में बैठ जाते। गर्दन के आसपास जरा सा खुजलाने पर वे सो जाते। वे सदा हमारे ही पीछे-पीछे घूमते रहते। फिर खाना खाते समय हमारी थाली में से भी खाना चुगने लगे, इसलिये हमने खाने के समय उन्हें बंद करना शुरू कर दिया। हम जरा कहीं भी बैठ जायें कि बस वे गोद में आकर बैठ जाते और झपकी लेने लगते। जरा हलचल होने पर वे गर्दन उठाकर देख लेते। हम वहीं बैठे हैं, यह विश्वास होने पर वे फिर ऊंघना शुरू कर देते। अन्य जानवरों के सोते समय हम उठकर कहीं जा सकते थे, लेकिन मोर के बच्चों को छोड़कर नहीं जा पाते थे। एक मोर तो सदा ही मेरे सिर पर चढ़कर बैठता था और "चोर के सिर मोर" की कहावत चरितार्थ करता था। फिर सभी मुझे उसी मुहावरे को लेकर चिढ़ाते। जब मैं पुणे में रहता था तब शिकार खेलने के लिये मुझे चोर बनना ही पड़ता था। लेकिन एक ही महीने बाद मोर का एक बच्चा मर गया। बाकी तीनों काफी दिनों तक हमारे पास रहे। उन्हें पिंजरे में कभी नहीं रखा। वे घर के ऊपर या पेड़ पर बैठे रहते और खाने के लिये घर में आ जाते। बाद में सन् 1982 से एस.टी. की बस चार महीने के लिये इधर आने लगी। इन तीन में से एक मोर नर था। वह सदा ही सड़क पर या दरवाजे के पास बैठा रहता था। हमारी जीप-ट्रक के आने पर झट से उस पर चढ़कर अंदर आ जाता। उसे मोटर की आवाज की पहचान हो गयी थी। ऐसे ही एक दिन वह एस. टी. बस के ऊपर चढ़ बैठा था और बस चलने लगी। वह बैठा ही रहा। कुछ लोग उसे देखकर पीछे दौड़े। लेकिन न तो बस ही रुकी, न वह मोर ही वापस लौटा। बस से यात्रा करने वाला वही प्रथम मोर होगा।

मोरों की वजह से ही हमने मेंढक पकड़ना सीखा था। मोर घर में हमेशा भात खाते। फिर दिन भर कीड़े-मकोड़े खाते रहते। शाम को पेंटी, बबली, नेली के साथ वे हमारी सर्कस का साथ देते थे। सड़क पर जमा हुए पानी में से वे मेंढक पकड़कर खाते। सावधान होने पर मेंढक पानी में डूबकी लगा देते। मोर के बच्चे निराश होकर देखते रह जाते। फिर प्रकाश और मैं उन्हें मेंढक पकड़कर देने लगे। लेकिन हमें अधिक मात्रा में मेंढक नहीं मिलते थे। और यदि पानी मटमैला हो तो और भी कठिन। एक रात दवाखाने में कोई मरीज आया था। उसे दवाई देकर जब में लौट रहा था तो टार्च के उजाले में मुझे एक मेंढक दिखाई दिया। उसकी आंखों पर रोशनी पड़ने से वह निश्चल हो गया था। मैंने झुककर उसे पकड़ लिया। फिर उसी तरह आंखों पर रोशनी फेंक कर हमने दो-चार और मेंढक पकड़े। वैसे

खरगोश, हिरन, सुअर आदि जानवरों का शिकार भी इसी तरह आंखों पर सर्चलाइट डालकर करते हैं। यह भी वैसा ही तरीका था। फिर तो हम रात में टॉर्च और खाली डिब्बा लेकर बार-बार मेंढक पकड़ने जाने लगे। मेंढक पकड़ने की इस कला का लाभ हमें 'मगर' मिलने के बाद हुआ। अभी भी सप्ताह में दो बार हम मेंढक पकड़ने जरूर जाते हैं। उसी समय वहां पर हमें कई सांप भी मिले। फिर हम दो डिब्बे ले जाने लगे। एक तो मेंढकों के लिए तथा दूसरा सांप रखने के लिये। बैंडेड क्रेट सांप केवल सांप ही खाता है—चूहा-मेंढक नहीं खाता। इसीलिये सांप पकड़कर लाना हमारे लिये आवश्यक हो गया था।

हम यह विश्वास के साथ कह सकते हैं कि मेंढक कब और कहां अधिक संख्या में मिलेंगे। सांप हमने कभी नहीं मारे। बैंडेड क्रेट के पिंजरे में हम जिंदा सांप ही छोड़ देते थे। उसके द्वारा सभी सांप खा लेने पर हम दूसरे पकड़कर ले आते थे। यह बैंडेड सांप जंगल में खुला रहने पर जितने सांप मारकर खाता, उतनी ही संख्या में वहां सांप नष्ट हुए थे। कोई भी वन्य प्राणी भूख लगने पर ही शिकार मार कर खाता है, अन्यथा नहीं। आवश्यकता से अधिक शिकार करना उसका धर्म ही नहीं है। प्राणियों का मनुष्यों जैसा स्वभाव नहीं है। वे बहुत दूर की सोचते हैं। मनुष्य आवश्यकता न होने पर भी प्राणियों का शिकार कर उन्हें फ्रिज में रख देता है। जानवर यदि जिंदा रहें तो उनकी संख्या में वृद्धि ही होगी, इतना भी वह नहीं सोचता। यह एक बड़ी गलतफहमी है कि कुत्ते आवश्यकता न होने पर भी जानवर मारते हैं। ऐसा लगता है कि इस बात पर शोध होना चाहिए। हमारे पास भी बहुत से जंगली कुत्ते हैं। लेकिन आज तक उन्होंने कभी व्यर्थ ही किसी जानवर को मारा हो, यह नहीं देखा। इससे एक दिलचस्प किस्सा याद आया। मुंबई में मेरे एक मामा रहते हैं। मुंबई में रहने के लिये जगह होगी भी कितनी बड़ी। उतने में ही उन्होंने एक कुत्ता पाल लिया था। और मामी ने एक बिल्ली रख ली थी। दोनों ही अपने-अपने लाड़लों के खेल बखान करते। एक दिन मामा के घर लौटने पर मामी बोली, "देखो, तुम सदा ही मेरी बिल्ली को कोसते रहते हो। बिल्ली कल से केवल संडास में ही जाकर टट्टी-पेशाब करती है, वह तुम्हारे कुत्ते जैसी नहीं है।" मामा भी यह सुन कर हंस दिये। वे बोले, "तुम्हारी बिल्ली अवश्य ही बड़ी होशियार हो गयी है। लेकिन कहीं ऐसा न हो कि कल आवश्कता से अधिक चूहे मिलने पर वह उनको मारकर फ्रिज में रख दे। फिर तुम मुझसे शिकायत न करना।"

वन संरक्षक विभाग के वरिष्ठ अधिकारी मई 1977 में हमारे प्रकल्प में पधारे। यहां के जानवरों की देखभाल और उनका स्वास्थ्य देखकर वे खुश हुए। हमने गैरकानूनी ढंग से जानवर पाल रखे हैं, उस शिकायत पर जांच करने के लिये शायद वन विभाग ने उन्हें यहां भेजा था। उन्हीं दिनों आल्लापल्ली में वन विभाग के पास भालू का एक बच्चा था। हमने उसकी मांग की। उन्होंने प्रकाश का प्राणियों के प्रति लगाव और उसे उनका

पालन-पोषण करते देखा था। उस बच्चे की देखभाल यहां अच्छी हो सकेगी, इसका उन्हें विश्वास था। इसलिये दूसरे ही दिन भालू का बच्चा हमें सौंपने का उन्होंने आदेश दिया। उनके अधीन काम करने वाले अधिकारी बेचैन हो गये। वे वन विभाग के नियमों का उल्लेख करने लगे। अंत में उन्होंने कहा कि वह भालू का बच्चा वन विभाग के रिकार्ड में दर्ज हो चुका है। कैसे दिया जा सकता है? ऐसा सवाल उठाया गया। अब कानूनी मुद्दा उठाने पर बड़े साहब बोले, "उस बच्चे की हालत मैंने देखी है, वह अपने पास अधिक दिन जिंदा नहीं रह सकता। कल ही उसको मरा हुआ बताकर उसका पंचनामा करो और उसे यहां जिंदा पहुंचा दो।" कानूनन मृत दर्ज हुई वह मादा भालू 'रानी' आज भी शान से हमारे पास ही रहती है। जब वह लाई गयी थी, तब महीने भर की रही होगी। पहले दो दिन दूध-भात देने पर वह खाती रही। उसे अजीर्ण होने का जब हमें ध्यान आया तो दो-तीन दिन में ही उसकी खुराक का हमें अंदाज हो गया। इससे पहले भी पाले गये भालुओं का अनुभव हमें था। उसके लिये प्रारंभ से ही रात के लिये पक्का पिंजरा बना दिया था। उसमें रात को ताला भी लगा देते थे। उसकी एक चाबी प्रकाश के पास, और दूसरी मेरे कमरे में रहती। भालू का बच्चा पकड़ने पर काट खाता है, क्योंकि जंगल में जब बच्चे छोटे होते हैं तब कुछ भी खतरा लगने पर या कोई आवाज सुनाई देने पर वे अपने मुंह से अपनी मां के लंबे बाल पकड़कर लटक जाते हैं। मां उनको एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है। जन्म से ही उन्हें यह समझ होती है। मां के बिना बड़े हुए बच्चे यही तरीका दोहराते हुए पास ही के व्यक्ति को काटते हैं, यानी उसे मुंह से पकड़ लेते हैं। हमारे शरीर पर लंबे बाल न होने से शरीर पर जख्म हो जाता। लेकिन एक बार आपके शरीर की गंध की पहचान कर लेने पर वे न काटते हुए पैरों के बीच आकर खड़े हो जाते हैं। प्रथम कुछ दिनों तक रानी ने हम दोनों को कई बार काटा। लेकिन बाद में कभी नहीं काटा। रानी जितना लाड़-प्यार किसी दूसरे जानवर को नहीं मिला। वह सारा दिन तक अधिक समय खुली ही रहती थी। वह या तो कभी प्रकाश के कमरे में या फिर मेरे कमरे में मिलती। जब दोपहर में प्रकाश पढ़ता रहता, तब रानी उसके दो पैरों की बीच पसरी रहती। वह उसके पांव का अंगूठा मुंह में चूसते हुए, गुड़-गुड़ आवाज करती हुई सो जाती थी। भालू नींद में भी बहुत सावधान रहते हैं। रानी बदन पर सिर रख सोयी हो तो किसी के आने की आहट होते ही वह घबरा कर हमसे लिपट जाती थी। भालू के बच्चों की नजर बचपन में कमजोर होती है। वे किसी बड़ी चीज या ज्यादा सफेद या काले रंग से डरते हैं।

हमारे यहां हर रोज सुबह घंटा भर उसके नहाने का कार्यक्रम होता था। पम्प के पानी से नहाने में उसे बड़ा आनंद आता था। पहले शरीर पर पानी पड़ने पर वह थोड़ी सी चिढ़ती, लेकिन बाद में उसे बड़ा ही आनंद आता था। आंखों पर या नाक पर पानी गिरने पर वह नाराज होती थी। हमारे द्वारा शरारत से वैसा करने पर वह 'ख्याक् ख्याक्' आवाज करते

हुए हमारे ऊपर ही दौड़ पड़ती थी। हम जब थोड़ी दूर तक चले जाते तो वह फिर से पम्प के नीचे बैठ जाती थी। हमारे वापस न जाने पर बड़ी करुण सी आवाज देकर हमें बुलाती। जब कभी हम उस पर भी वहां न जाते तो वह हमारे पास आकर बिनती करती। फिर भी हमारे ध्यान न देने पर सीधी आकर हमारे पैर पकड़ लेती। फिर तो मजबूर होकर हमें जाना ही पड़ता था। यह सब खेल ही खेल में होता था। उसने हमें कभी काटा नहीं था। हम दोनों को छोड़कर अन्य किसी को इस कार्यक्रम में भाग लेने की मनाही थी। तीसरे किसी के भी वहां आने पर वह मुंह में पानी भरकर उसके ऊपर उड़ाती थी। मेहमान के भागकर दूर चले जाने पर रानी आनंद से नाचती। इतने पर भी यदि उस व्यक्ति ने फिर उसके पास आने की हिम्मत की तो वह क्रोधित हो जाती। दिल्लगी करने के लिये हम कभी किसी नये मेहमान को यह बात पहले नहीं बताते। वह एकदम उस पर दौड़ पड़ती थी। सावधान नहीं रहने पर वह वहीं गिर पड़ता था। यदि सावधान होकर वह वहां से भागता तो रानी उसका पीछा करती। प्रकाश के केवल 'नो' कहते ही वह जहां होती, वहीं रुक जाती। फिर वहां से धीरे-धीरे लौट आती। बीच में ही पीछे मुड़ कर देखती, यह यकीन करने के लिये कि वह मेहमान फिर से उसके पीछे तो नहीं आ रहा है। कभी-कभी हड़बड़ाहट में वह स्वयं गिर पड़ती। हमारे हंस पड़ने पर वह हम पर झपटती। प्रकाश की ओर भी लपकती, लेकिन रानी ने उसे कभी गिराया नहीं। मुझे तो सजा मिलना लगभग निश्चित ही होता।

मनुष्य और जानवरों के छोटे बच्चों के स्वभाव में बड़ी समानता दिखाई देती है। छोटे बच्चे डांटने पर या मारने पर थोड़े ही देर बाद सब भूल जाते हैं और फिर से खेलने लगते हैं। दोनों ही जैसे-जैसे बड़े होते है वैसे ही उनका स्वभाव बदलने लगता हैं। जानवर स्वभाव से नहीं बदलते। लेकिन मनुष्य के बच्चे रूठते हैं, क्रोध करते हैं और कभी-कभी बदला भी लेते हैं। यह सब उनके आसपास के माहौल का ही कम-अधिक परिणाम होता है। जानवर का स्वभाव बड़े होने पर भी छोटे बच्चे जैसा ही निरीह और मासूम रहता है। हमारी रानी अब नौ वर्ष की हो गयी थी लेकिन उसका मिलनसार स्वभाव नहीं बदला था। मनुष्यों के बच्चों के अनुपात में जानवरों के बच्चे आकार में शीघ्रता से बढ़ते हैं। रानी भी शरीर से भारी-भरकम हो गयी है। लेकिन वह अभी भी मेरी गोद में बैठना चाहती है। वह प्यार से हमारा पैर मुंह में पकड़ लेती है। उसके नाखून प्राकृतिक रूप से ही बड़े होते हैं। पहले से अब वे तकलीफदे हो गये हैं, यही उसे नहीं सूझता। जानवर आपस में बेखबर खेलते हैं। तुम्हें भी वे अपने में से ही एक मानते हैं। इसलिए हमें कभी दांत लग जाते हैं तो कभी नाखून। हमें अपने द्वारा कोई कष्ट देने का उनका कोई इरादा नहीं होता। वे तो केवल खेलना जानते हैं और उसी में ही हमें कभी-कभी कुछ लग जाता है। हमें गुस्सा तो आता है, लेकिन हमें वस्तुस्थिति पर भी विचार करना चाहिए।

जानवर जैसे-जैसे बड़े होते हैं, उनके शरीर के बाल, खुरदरे होते जाते हैं। मनुष्य के बड़ा होने पर उसका मन रूखा (खुरदरा) होता जाता है। जानवर का शरीर भारी होता है, तो मनुष्य के विचार जड़ होते जाते हैं। जानवर के नाखून तीखे होते हैं तो मनुष्य की जबान। मनुष्य की बातों से भले ही शरीर जख्मी न हो, लेकिन मन पर लगाए जख्म सदा हरे रहते हैं।

रानी जब हमारे यहां आई थी, तब माड़ीया आदिवासी जाति का एक लड़का बीमार हो जाने के कारण गोपनार गांव छोड़कर यहां हमारे पास ही रहता था। उसका नाम था मालू। मां बाप गोपनार गांव में ही रहते थे। मेरे ही कमरे में वह सोता था। हमारे साथ ही खाना खाता था। छोटा ही था-- केवल पांच वर्ष का। प्रारंभ में बीमार होने से सोता ही रहता था। रानी भी दोपहर में वहीं सोती थी। दो महीने में वह खूब बड़ी हो गयी थी। उसका वजन चार किलो हो गया था। रानी अपने स्वभाव से ही खिलाड़ी थी। साथ ही जरा नटखट भी थी। मुझे और प्रकाश को छोड़ अन्य कोई भी उसके साथ रहने से घबराते हैं, यह उसे भी पता था। हमें छोड़ दूसरों के तो वह पीछे ही पड़ जाती थी। फिर उस व्यक्ति के चिल्लाने या भागने पर उसे बहुत ही आनंद आता था। ऐसे समय मैं या प्रकाश यदि उसे डांट कर नहीं वहीं रोकते तो वह और उधम मचाती। सभी जानवरों को भी बच्चे प्यारे लगते हैं। उनसे वे बड़े प्यार से खेलते हैं। हम अपने बच्चों को जानवरों से इस डर से दूर रखते हैं क्योंकि वे काटते हैं, उनके नाखून लगते हैं। यदि बच्चों में यह डर पैदा न किया जाए तो वे शेर के साथ भी बड़े आनंद और बराबरी से खेल सकते हैं। बाघ जैसे जानवर को भी बच्चों के साथ बहुत संभल कर खेलते हुए मैंने देखा है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण प्रकाश की लड़की आरती है। वह तो हमारे साथ रह रहे भारी भरकम नेगल की पीठ पर घोड़े की तरह सवारी करती रहती है। इस बात का श्रेय पूर्णरूप से प्रकाश को ही जाता है।

रानी के मन में मालू से खेलने की इच्छा रहती, लेकिन मालू इसके लिये तैयार नहीं था। माड़ीया आदिवासी शेर से भी अधिक भालू से डरते हैं। उसके कई निराले कारण हैं। उस संबंध में हम आगे चर्चा करेंगे। मालू को बचपन से ही इसका डर बता दिया गया होगा। आदिवासी माड़ीया भाषा में 'भालू' को 'ऐडजू' कहते हैं। जब दोपहर में रानी मालू के पास जाती तब मालू 'ऐडजू', 'ऐडजू' चिल्लाकर पलंग पर चढ़ जाता था। रानी भी पलंग पर चढ़ जाती थी। मालू उस पलंग से मेरे पलंग पर छलांग लगाता था। मेरे पलंग पर रानी को अपने सिवा किसी दूसरे का आना कतई पसंद नहीं था। वह चिल्लाते हुए उस पर झपटती। यह देखकर फिर एक दिन मैंने अनिच्छा से रानी को डांटा। मारा भी। वह रोते-रोते पीछे हट गयी। बाद में फिर केवल 'नो' कहते ही वह मालू की तरफ जाते हुए रुककर पलट जाती थी। मालू जैसे अपने कमरे में है ही नहीं, फिर वह इस तरह रहने

लगी। लेकिन उसने मालू को मेरे पलंग पर कभी नहीं आने दिया। रानी जब प्रकाश के पास बैठी हो, तब मेरे भी वहां जाने पर वह हमेशा आवाज और नजर से मेरे प्रति नाराजगी प्रकट करती थी। वह मुझ पर कभी झपटती नहीं थी। भालू को शहद और जमीन में लगा दीमक खाने में बहुत अच्छा लगता है। रानी को दूध चावल के साथ शहद और दीमक की खुराक मिल रही थी। उधर मालू हमेशा हमारे साथ ही खाता-पीता था। चार महीने में ही रानी का वजन आठ किलो हो गया था। तब मालू दस किलो का था। आज नौ वर्ष बाद रानी 82 किलो की है और मालू 44 किलो का है।

मालू और रानी साथ-साथ ही हमारे यहां बड़े हो रहे थे। रानी हमारे साथ स्नेह से खेलती और घूमने जाती। हमारे लिये दिनों-दिन उसका प्यार बढ़ता ही जा रहा था। मालू प्रारंभ में हमारे साथ ही रहता था। फिर स्वस्थ होने पर वह प्रकल्प के विद्यालय में जाने लगा। उसकी तबीयत ठीक हो गयी थी। उसे नये संगी-साथी मिले। जैसे-जैसे खेलने में मन रमता गया, वैसे-वैसे वह हमसे दूर रहने लगा। उसने बगैर किसी कारण से रानी की पूंछ खींचना, उसे लकड़ी से धकेलने-कौंचने जैसे खेल शुरू कर दिये। उसे मैंने एक बार समझाया भी कि मेरे डांटने के कारण रानी उसे कष्ट नहीं देती है। एक दिन बिना किसी वजह से मालू ने रानी को मारा। शायद वह हमेशा ही उसे मारता होगा। लेकिन उस दिन मैंने देख लिया। गत कुछ दिनों से मैं देख रहा था कि रानी उससे डरती थी और उससे दूर ही रहती थी। तब यह बात मेरी समझ में आ गयी। मैंने उसे बहुत डांटा। फिर से उसे रानी को डंडे से न मारने की मैंने हिदायत भी दी। हालांकि मैंने मालू के शरीर को छुआ भी नहीं, फिर भी वह मुझसे बड़ा नाराज हुआ। वह मुझसे पहले से अधिक दूर रहने लगा। वह रहता हमारे ही साथ था। लेकिन यह भावना न तब थी और न आज है कि हम उस पर एहसान करते थे। हम उसके लिए जो भी करते थे, अपना कर्तव्य समझकर ही करते थे। अपने स्वयं के संतोष के लिये करते थे। "मेरे से भी इन्हें भालू रानी अधिक अपनी लगती है। बड़ी होने पर जब वह इन्हें फाड़ खाएगी तब पता चलेगा।" इस तरह की बातें उसने जब दूसरों से कीं और हमें उसकी खबर मिली, तब हमें बड़ा दुख हुआ। जानवर बोल नहीं सकता। वह अपनी भावनाएं प्रकट नहीं कर पाता। हमने ही उन पर बंधन लाद रखे हैं। प्रारंभ में मालू को छेड़ने पर रानी ने मेरे हाथों बहुत मार खायी थी। वह फिर कभी उसके पास नहीं गयी। लेकिन उसने कभी आज तक मुझसे नाराजगी नहीं जतायी।

मालू सन् 1980 में चौथी कक्षा पास कर अपने घर लौट गया। रानी बड़ी होती रही। अब हमारे प्रकल्प में काफी अधिक संख्या में लोग और बच्चे भी आ गये। रानी का नटखट स्वभाव पहले जैसा ही था। इस बीच वजन बढ़ने के साथ ही उसकी ताकत भी बढ़ गयी। उसने अचार की बरनी फोड़ दी, या हंडा फोड़ दिया, ऐसी शिकायतें बढ़ने लगीं। फिर हमें

उसे पिंजरे में रखना पड़ा। फिर उसे साथी भी मिल गया जिसके साथ वह घुल-मिल गयी। लेकिन हमारे साथ उसका प्यार कम नहीं हुआ था। सन् 1980-81 तक हम उसे रोज शाम अपने साथ घूमने के लिए बाहर निकालते थे।

मालू अपने घर में बड़ा हो रहा था। कभी-कभी वह हमें दिखता भी था। वह आसपास के माहौल के अनुसार बदलता रहा। मालू रास्ते में दिखने पर शरमाता था। 1985 में छह वर्ष बाद मालू हमारे यहां आया, तब साथ में वह जंगली गिलहरी का बच्चा लाया था। उसके बाप ने हमारे लिये याद से भेजा था। मुझे मालू के मिलने पर बड़ा आनंद हुआ। वह अब अच्छा जवान दिख रहा था। उसके साथ इधर-उधर की कुछ बातें हुईं। "तुम्हें क्या चाहिये?" मैंने पूछा। हर एक जानवर के लेने पर बदले में हम कुछ भेंट देते थे। उसे गिलहरी के बच्चे के बदले में कुछ चाहिये था। साधरणतया हम सबको सिले हुए कपड़े, सब्जी जैसी चीजें भेंट के रूप में देते थे। मैंने उसे एक कमीज और कुछ सब्जी दी। उसे एक और कमीज अपने बाप के लिये चाहिये थी। हमने एक कमीज और दे दी। आदिवासियों ने मारकर खाने के बदले हमें जानवरों के बच्चे लाकर दिये, इसे ही हम उनका बड़ा एहसान मानते आये हैं।

मुझे रानी और मालू के बचपन के दिन याद आ अये। मुझे मालू का पिछला आचरण भी याद आ रहा था। मैंने फौरन खड़े होकर उससे कहा, "चल मालू, रानी के पास चलते हैं।" यह तैयार नहीं हुआ। बहुत घबराया सा था। मैंने उसे कहा, "डरो मत, रानी पिंजरे में बंद है, पहले की तरह खुली नहीं है।" मैंने मन ही मन कहा, 'मनुष्य को कष्ट होगा इसलिये नहीं, बल्कि उसे मनुष्य से कष्ट न हो इसलिये।' मैंने मालू को पिंजरे के बाहर खड़ा किया। वह दूर ही खड़ा रहा। रानी ने उसे पहचान लिया था। अपने बचपन के इस साथी खिलाड़ी को वह यकीनन भूलने वाली नहीं थी। इसी मालू की खातिर उसने मेरे हाथों मार खायी थी। लेकिन यह बात वह बहुत पहले ही भूल गयी थी। उसके मन में मालू के लिये केवल स्नेह ही शेष था। लेकिन मालू अपना क्रोध अभी तक भूला नहीं था। साथ ही अब उसके मन में डर भी था। रानी ने पिंजरे की जाली के पास आकर गर्दन नीचे कर ली। मालू अपने हाथों से उसकी आंखों के पास उसे थपथपा दे, उसकी इस मंशा को मैं समझ रहा था। वह अपने व्यवहार से मानो यही कह रही थी। फिर मैंने ही आगे बढ़कर उसे थपथपाया। मगर मालू पाठशाला में जाकर शायद यही सीखा था कि जिससे लाभ की आशा नहीं, उससे स्नेह क्यों करें। मुझे दुख हुआ। रानी को भी। वह अऽ अंऽ जैसी आवाज निकालकर अपना दुख जता रही थी। मैं एकदम पिंजरे के अंदर गया।

मालू के चेहरे पर मुझे आश्चर्य और डर दिख रहे थे। तभी रानी भागते हुए मेरे पास आ गयी। पहले उसने देखा कि मैं उसके लिये क्या लाया हूं? मेरे पास कुछ भी न होने पर वह मेरा हाथ चाटने लगी। "रानी, तुझे न कपड़ों की दरकार है ना पैसों की। तुझे तो

बस प्यार चाहिये। लेकिन वह भी अब मिलना मुश्किल होता जा रहा है।" मेरा स्पर्श और संवाद निश्चय ही वह समझ गयी। वह बार-बार मालू को देख रही थी। फिर उसने बड़ी करुण दृष्टि से मेरी ओर देखा। मेरी आंखों में भी आंसू भर आये। ऐसा लगा कि मेरे आंसू पहली बार सार्थक हुए हों। मालू से भी अधिक मुझे स्वयं पर और रानी पर दया आ रही थी। हम दोनों मनुष्यों को पहचान गये थे। हमारे साथ हम जैसा एक और व्यक्ति था। उस समय मुझे एकदम प्रकाश की याद आ गयी। उन दिनों वह किसी काम से नागपुर गया हुआ था। मन किया कि उसके लौटते ही उसे सब कुछ बता दूं। लेकिन फिर लगा कि मुझसे भी अधिक अच्छी तरह रानी ही सब कुछ बता पायेगी। प्रकाश को रानी के पिंजरे में लाकर केवल "मालू आया था" इतना कहते ही रानी अपनी क्रियाकलापों से उसे सब कुछ बता देगी, ऐसा मुझे विश्वास था। बचपन से ही मैं एक इन्सान की तरह बड़ा हुआ, इस बात का मुझे अब जरा भी गर्व नहीं है। इतने दिनों के संस्कारों के परिणामस्वरूप कुछ बातें जो मुझमें मनुष्य जैसी हो रही थीं लेकिन वे अपवादस्वरूप थीं और अनजाने में ही हो जाती थीं। उसी कारण कई लोग मुझसे नाराज हैं। इतने लंबे समय से मेरा जानवरों के साथ रहने का मुझ पर जो असर हुआ है, उसे यह सुसंस्कृत लोग समझने का प्रयास नहीं करते। मैं मानव-द्वेषी हूं, क्रूर हूं, जंगली हूं—ऐसा वे मुझ पर आरोप लगाते हैं। मेरा अपने पालतू जानवरों पर, मनुष्य से अधिक स्नेह है, यह दोषारोपण करने वालों को समझाने के लिये मेरे पास शब्द ही नहीं हैं। प्राणियों के समान हम अपने व्यवहार से स्नेह दिखाने के लिये अवश्य तैयार हैं।

सच्चा स्नेह क्या और कैसा होता है, यह जंगली जानवर ही समझ सकते हैं और कर भी सकते हैं। दुनिया में मां का प्यार सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। लेकिन उसमें भी स्वार्थ होता है। 'मेरा लड़का' कहने का स्वार्थ तो प्रत्येक मां में होता ही है। किससे स्नेह रखना है यह मां अपने बच्चों को सिखाती है। साथ ही बच्चों के सामने वह किसी से प्यार और किसी से नफरत करती है जिसे देखकर बच्चे खुद समझ जाते हैं। हमारे पास हिरन, मगर, मोर, लोमड़ी, भालू, चीता, जंगली भैंसा, लकड़बग्घा जैसे कई जंगली जानवर हैं। सभी को एक साथ इकट्ठा रखकर हम चैन से बैठ सकते हैं। उन सभी को साथ लेकर घूमते जाते हैं। किसी एक से स्नेह करने पर दूसरा कोई नाराज होता हो, ऐसा कभी हमने नहीं देखा। हमसे अधिक से अधिक स्नेह करने के लिए उनमें आपस में स्पर्धा रहती है। यह हमने सदा ही अनुभव किया है। आगे चलकर जब नेगली मादा तेंदुआ को बच्चा हुआ, तब उस बच्चे के मेरे साथ या प्रकाश के साथ खेलने पर नेगली ने कभी नाराजगी जाहिर नहीं की, न नफरत ही। जंगली जानवरों का स्नेह सच्चे मानो में निस्वार्थ होता है, यह बात निश्चित है।

हम लोगों ने हिरन के लिये बड़ा पिंजरा बनाने का काम सन् 1977 में प्रारंभ किया

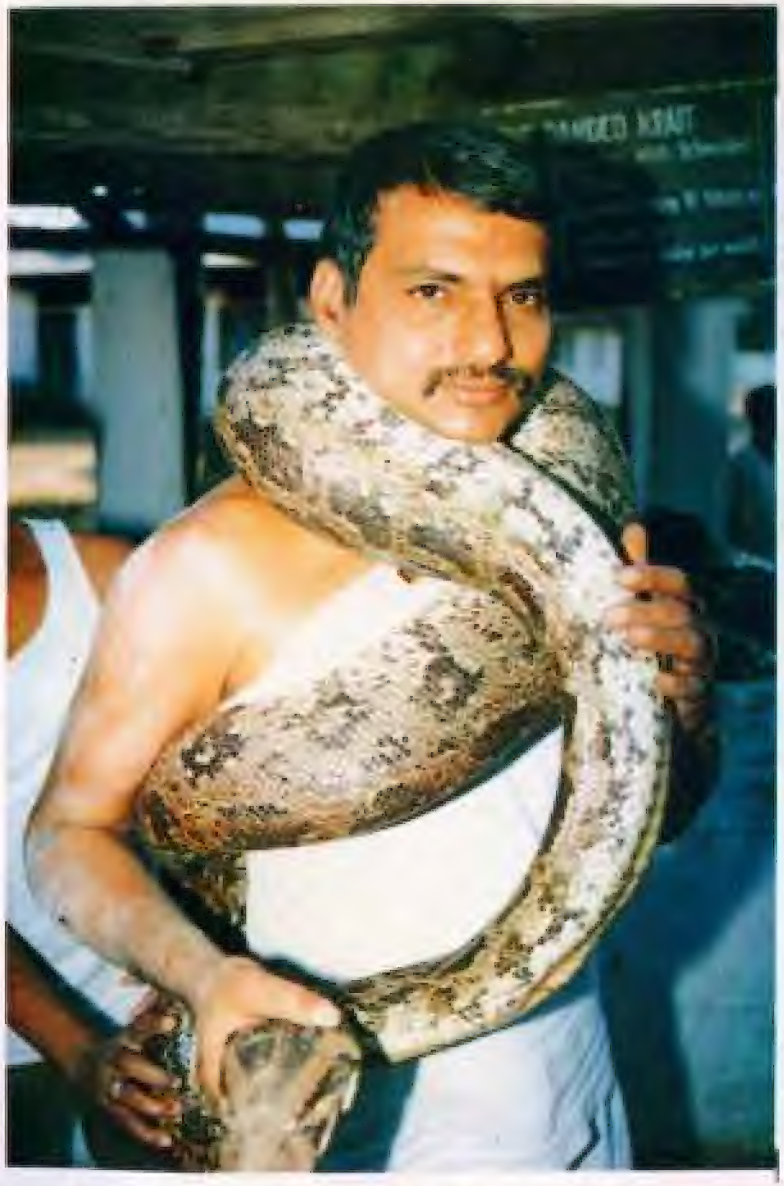

प्रकाश आमटे अजगर के साथ। (छायाचित्र : अनिकेत आमटे)

प्रकाश आमटे सिंह और तेंदुओं के साथ। (छायाचित्र : जगदीश गोडबोले)

विलास मनोहर नेगल के साथ। (छायाचित्र : जेड. प्रभाकर)

विलास मनोहर तेंदुए के शावक के साथ।

आरती हिरन के बच्चे को बोतल से दूध पिलाते हुए। (छायाचित्र - डा. शिरोले)

प्रकाश आमटे उल्लू और बाज के साथ।

प्रकाश आमटे चौसिंगा के बच्चे के साथ।

प्रकाश आमटे और विलास मनोहर अजगर के साथ।

प्रकाश आमटे सिंह और तेंदुओं के साथ। (छायाचित्र : धनंजय कुलकर्णी)

प्रकाश आमटे भालू के बच्चे के साथ। (छायाचित्र : जैड. प्रभाकर)

प्रकाश आमटे जंगली (बड़ी) गिलहरी के साथ। (छायाचित्र : लीना भट्ट)

था। ताड़गांव के लोगों ने सन् 1977 के नवंबर माह में हमें नीलगाय का एक बच्चा लाकर दिया। नीलगाय सामान्य गाय न होकर हिरन की ही एक जाति होती है। नीलगाय के दूसरी गायों की तरह चार थन न होकर हिरन तथा बकरी के समान दो ही थन होते हैं। वह गाय की तरह गोबर की विष्टा नहीं करती, वरन हिरन जैसी लेंडी की लीद ही करती है। बस, फर्क इतना ही होता है कि लीद जरा ज्यादा होती है। गायों की तरह नीलगाय भी चारा चरती है। हमने इस नीलगाय का नाम 'नीला' रखा था। 'नीला' आज भी हमारे साथ रहती है। जब वह हमारे पास लाई गयी, तब प्रकाश यहां नहीं था। उसे दूध पिलाने में मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। नीलगाय शरीर में गाय जैसी ही बड़ी होती है। जब 'नीला' हमारे यहां आई, तब तीन या चार दिन की ही थी। उसकी जन्म की नाभिनाड़ी भी पूरी तरह सूखी नहीं थी। वह बड़ी बकरी जितनी दिख रही थी। अगले आठ महीनों तक नीला पूरी तरह खुली ही रहती थी। वह सदा ही हमारे पीछे-पीछे घूमती रहती। हमसे अपने बदन को रगड़ना, हमारे बदन को चाटना जैसे उसके काम चलते रहते। वह बाद में बहुत कष्ट देने लगी थी। साथ घूमने ले जाने पर किनारे पर जाकर चरने लगती। फिर कुत्ते भी उसका पीछा करने लगते थे। इस वजह से हमारे घुमक्कड़ सर्कस का अनुशासन बिगड़ने लगा था। इसी कारण हमें उसे पिंजरे में बंद रखना पड़ा था।

अब रानी आठ महीने की हो गयी। पेटी, मेटी और नीला पिंजरे में बंद हो गयी थीं। नेगी, रानी, बबली, प्रकाश और मैं रोज शाम घूमने जाते थे। रानी के कारण और कोई भी व्यक्ति हमारे साथ घूमने नहीं जाता था। कभी-कभी प्रकाश का दो वर्ष का बेटा हमारे साथ होता था।

हम रानी को रोज नदी तक (तीन कि.मी. दूर) घुमाने ले जाते थे। प्रारंभ में तो रानी हमारे पांवों के ही आसपास चलती रहती। भालू जाति को गंध का ज्ञान बहुत अच्छा होता है, इसलिए केवल गंध से ही फौरन जान जाते हैं कि जमीन में दीमक कहां-कहां हैं। अपने अगले पैरों से झटपट जमीन खोदकर रानी झटझट दीमक का बिल ढूंढ लेती। फिर मुंह को छोटा करके सांस भीतर की ओर खींचकर वह दीमक को खा जाती। यह करते समय वह आसपास की सुधबुध खो बैठती। खाना खाते समय भालू सब कुछ भूल जाते हैं। काले रंग का भालू मनुष्य को जंगल में तुरंत नहीं दिखता। वह जब रीछ के पास पहुंच जाता है तब रीछ की तन्मयता टूटती है। उसे खतरा नजर आता है और वह हल्ला बोल देता है। उसका यह हमला प्रतिकारस्वरूप होता है। जबड़ों के दांत पैने और नाखून तीखे होने के कारण भालू गहरे जख्म कर देता है। हमले के बाद भालू भाग जाता है। हमारे पास हर साल ऐसे चार-पांच मामले आते हैं। जंगल में भालू बाघ से भी अधिक खतरनाक होता है।

प्रारंभ में तो जब रानी खा रही होती तो हम भी रुक जाते थे। लेकिन हमने देखा

कि हमें रुका हुआ देखकर भी रानी खाती ही रहती है। इसीलिये हम आगे बढ़ जाते। चार पांच मिनट बाद जब रानी का ध्यान जाता, तब वह जोर से चिल्लाती हुई हमारे पास आ जाती। "मुझे पीछे छोड़कर आप आगे क्यों चले आये," यही उसकी शिकायत रहती। जब हम उसे थोड़ी देर थपथपाते तो वह शांत हो जाती। वह फिर कहीं पर दीमक ढूंढ़ने लगती। हम चलने लगते तो कुछ प्यार से आवाज दे क़र हमें पुकारती। फिर नाराजगी से हमारे पीछे-पीछे आ जाती। नेली साथ होने पर उसके ऊपर झपटकर उसे काटने दौड़ती। हम दोनों से उसे बहुत स्नेह था न! यदि किसी दिन नेली रूष्ट हो जाती तो वह क्रोध मुझ पर उतरता था। इसी कारण मैं भी आग्रह से नेली को साथ रखता था।

रानी और प्रकाश को एक दूसरे से बहुत प्यार है। उसे वह पिता समान सम्मान देती है। मेरे साथ तो उसका व्यवहार किसी साथी या खिलाड़ी जैसा होता है। इसी कारण वह मुझ पर ही क्रोध करने का हक जताती है। तेंदुए का भी यही मानना है। प्रकाश का वन्य जानवरों से स्नेह एकदम निर्मल और निश्छल है। उसे मेरे बारे में कभी कहीं कुछ बात खटकती है तो वह यह कि मुझे जंगली जानवरों के साथ रहते हुए सदा ही एहसास रहता है कि पहले मैं एक शिकारी था। अब मेरा जानवरों के प्रति स्नेह उसी का प्रायश्चित है। उसे शायद ऐसा ही लगता हो। मैंने जानवरों से सहनशीलता का सबक सीखा है। इस प्रकार का अंतर शायद मैं भविष्य में मिटा सकूंगा। हम लोग नदी के किनारे पहुंचने के बाद बालू पर बैठ जाते। मैं प्रकाश से हमेशा थोड़ी दूर हटकर बैठता था। बीच में रानी के लिये उसके हक की जगह छोड़नी ही पड़ती थी। उसके स्थान पर कोई दूसरा अतिक्रमण करे, इसे वह सहन नहीं करती थी। नदी पर भी वह प्रकाश की गोद में ही बैठती। जब हमारी गप्पें रंग लाने लगतीं तो उसे कुछ खटकता था। तब वह कुछ नटखटपन कर हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती। वहां पर अधिक समय बीत जाने पर वह प्रकाश की गर्दन पर अपने दोनों हाथ रखकर उसे चलने का इशारा करती। यदि प्रकाश ध्यान न देता तो वह मुझ पर हमला करती। मेरे उठने पर प्रकाश भी उठेगा, यह उसे अच्छी तरह मालूम था।

प्रकाश का बेटा भी कभी-कभी हमारे साथ घूमने जाता था। प्रारंभ में रानी उस पर हल्ला बोलती थी। लेकिन केवल 'नो' कहते ही वह शांत हो जाती थी। वह तो हमेशा ही साथ रहेगा, यह बात उसकी समझ में आ गयी। रानी ने प्रकाश के बेटे पिल्लू को कभी प्रकाश की उंगली पकड़कर नहीं चलने दिया।

तब पिल्लू केवल दो वर्ष का था। हमेशा की तरह रानी दीमक खाने के लिये पीछे रुक गयी। हम आगे चल रहे थे। अनजाने में प्रकाश ने अपने बेटे की उंगली पकड़ ली थी। तभी रानी पीछे से कब आ गयी, हमें पता ही न चला। वेग से आकर वह प्रकाश व पिल्लू के बीच घुस गयी जिससे छोटा पिल्लू गिर गया और रोने लगा। रानी को किसी

ने न मारा और डांटा ही। फिर भी उसे स्वयं ही जैसे भूल समझ में आ गयी। अपराधी मन से वह थोड़ी देर हमारे पीछे-पीछे आती रही। हमने डांटा नहीं, यह देखकर वह फिर से अपना अक्खड़पन दिखाने लगी। इस घटना के बाद पिल्लू हमारे साथ घूमने जाने में टालमटोल करने लगा।

रानी हमेशा मोटर गाड़ी की आवाज से डरती थी। जनवरी से जून तक सड़क चलते रहने के कारण जीप-ट्रक भामरागढ़ आते-जाते रहते थे। हमारे प्रकल्प परिसर के स्थान से भामरागढ़ तक का तीन कि.मी. तक का रास्ता ही हमारा घूमने का रास्ता था। वहां मोटर गाड़ी या जीप की आवाज आते ही रानी भागकर पास के जंगल में छिप जाती और ट्रक या जीप के निकल जाने पर ही वह बाहर आती थी। उसकी वजह से गाड़ी निकल जाने तक हम सड़क के किनारे रुके खड़े रहते। यदि गाड़ी में कोई जान पहचान वाले मिल जाते थे तो हम रुकते; उनसे गप्पें चलतीं। यदि उन्होंने हमें पहले कभी रानी के साथ घूमते देखा हो तो वे पूछते कि रानी कहां है? गाड़ी में हमारी पहचानवाले हैं और वे रुके हैं—यह सब रानी छिपकर देखती रहती। लेकिन अधिक समय तक उनके बोलते रहने पर वह बेचैन होकर बाहर सड़क पर आकर हमारी ओर आने लगती। उसे देखते ही, "आ गयी तुम्हारी रानी।" कहकर सभी मेहमान लोग तुरंत गाड़ी में बैठकर हमसे विदा ले लेते थे।

आगंतुकों को यह पता नहीं होता था कि हम भालू को खुला ही साथ लेकर घूमते हैं और वह अभी भी साथ है। ऐसे में बड़ा मजा आता। काम के कारण कई लोग डा. प्रकाश को पहचानते हैं। एक बार एक नयी जीप आकर वहां रुकी। जीप की आवाज सुनते ही रानी भागकर कहीं छिप गयी। जीप रुकी और उसमें से औरतें, बच्चे झटपट उतर पड़े। जंगल के ऊबड़-खाबड़ रास्ते के सफर से अपने अकड़े-दुखते शरीरों को जरा आराम देने के लिए अगड़ाई लेने लगे। हम सभी को विश्वास था कि हमारे होते हुए रानी किसी पर हमला नहीं करेगी, उससे किसी की कोई खतरा नहीं है। जीप से उतरे लोग चंद्रपुर के व्यापारी, ठेकेदार थे। वे सैर करने के इरादे से जंगल में घूमने निकले थे। उनमें से ही एक ने प्रकाश से पूछा, "डा. प्रकाश इधर ही कहीं काम करते हैं न?" प्रकाश ने कहा, "मैं ही डा. प्रकाश हूं।"

हेमलकसा में आने के बाद हम बहुत कम कपड़े पहनते हैं। आदिवासियों को इन कपड़े पहनने वालों ने पहले खूब लूटा है। कपड़े पहनने वाले लोगों को आदिवासी शंका की दृष्टि से देखते हैं। यह मालूम होने पर हमने पहले से ही सफेद बनियान और सफेद आधी निकर को अपनी पोशाक बना लिया है। साथ ही जानवरों के साथ कपड़े फटने का डर भी नही रहता। इसके पीछे कोई त्याग वगैरा की भावना नहीं है। लोगों ने ही ऐसी विशिष्टता हमारे ऊपर थोपी है। लेकिन केवल सहूलियत की वजह से ही हमने यह पोशाक अपनाई है। हमारे जैसा अधनंगा, बनियान और हाफ पेंट पहना डाक्टर देखने पर मेहमान

महिलाओं के चेहरों पर दबी हुई हंसी झलक पड़ी। ठेकेदार जी ने ऐसा ही कुछ कहा था कि "आप बड़े त्यागी है, आपकी सेवा भावना बहुत उत्तम है।" ऐसे विशेषण देकर उन्होंने भाषण प्रारंभ किया। यहां से किसी भी जानवर ने आज तक हमें इस सादगी के कारण बड़ा आदमी नहीं समझा और न ही हमें वैसा आभास ही होने दिया। उनका व्यवहार मुझसे सदा ही सहजता और बराबरी का रहा है। अब रानी के बाहर आने से पहले ये लोग यहां से चल दें तो अच्छा हो, हम यही सोचने लगे। सभी लोग जंगली प्राणियों के बारे में सुने हुए किस्से बता रहे थे। हमने कुछ जानवर पाल रखे हैं, यह भी उन्होंने सुना था। विदाई लेते समय उनके मुखिया ने पूछा, "डाक्टर, आप किधर जा रहे हैं?" हमने कहा कि हम यूं ही घूमने निकले हैं। यह कहते ही वे बोले, "वाह, वाह! चलिये न हमारे ही साथ जीप में।" उनका आग्रह होने लगा। अब क्या करें? हमारे साथ दो और साथी हैं, हमारे कहने पर वे बोले, " अरे बुलाइये न उन्हें भी, गाड़ी आपकी ही है।"

सब जीप में बैठ गये। जीप का इंजिन चालू हो गया। अब रानी नहीं आयेगी, यह हमें पता था। ''मेहरबानी करके जरा जीप का इंजिन बंद कीजिये।'' इंजिन चलते हुए जीप में चढ़ने से हम डरते हैं, ऐसा समझकर साथ के बच्चे भी हम पर हंसने लगे। अब आगे क्या होने वाला है, इसकी कल्पना से हमें हंसी आ रही थी। मैं और प्रकाश जब जीप में पीठे बैठने लगे तो उन्होंने आगे बैठने का आग्रह किया। हमारे द्वारा 'रानी, रानी' कह कर आवाज देते ही रानी और उसके पीछे ही नेली बाहर आ गयीं। उतने में ही जीप में से कोई "भालू, भालू" कहकर चिल्ला उठा। जीप एकदम चल पड़ी। जीप के पिछले हिस्से में मुझे और प्रकाश दोनों को देखने पर जोर-जोर से चिल्लाते हुए रानी जीप का पीछा करने लगी। हमने कहा, ''ठहरिये, ठहरिये, अपने जिन दो और साथियों के बारे में हम कह रहे थे, वे यही हैं।'' इतना समझाने तक तो जीप फर्लांग भर आगे जा चुकी थी। जीप रुकी। तब तक रानी जीप के पास आ पहुंची। मैं और प्रकाश पीछे ही बैठे थे। रानी पीछे की ओर से जीप में चढ़ गयी। गाड़ी के सभी लोग कैसे आगे चले गये और अगले दरवाजे से कब उतर कर कैसे भागने लगे, यह हमें आज तक समझ में नहीं आया। पहले हम पर हंसने वाली औरतों अपने बच्चों को जीप में ही छोड़कर नीचे उतर भागी थीं। हमें देखते हुए रानी शांति से जीप में बैठी थी। दो छोटे बच्चे, जो जीप में ही रह गये थे, घबराये से चुपचाप बैठे थे। रानी कुछ नहीं कह रही यह देखने पर उनमें से हिम्मत वाले एक बच्चे ने रानी को हाथ लगाया। अब माताओं को बच्चे याद आये। स्वयं घबराकर दूर से ही वे अपने बच्चों को आश्चर्य से देख रही थीं। वे सभी जीप के पास आ गये। परंतु कोई कुछ नहीं बोल रहा था। "तुम्हारे प्राणियों के संबंध में सुना तो अवश्य था, लेकिन हमें यह नहीं पता था कि भालू भी खुला ही घूमता है। यह बहुत बड़ी बात है। देखिये, इससे संभल कर रहना। इन जंगली जानवरों का भरोसा नहीं करना चाहिए।" हम यही बातें नहीं

सुनना चाहते थे। हम नीचे उतर पड़े। रानी भी हमारे साथ फौरन उतर गयी। उसने भी शायद सब सुना था। विदा लेते हुए झट से जीप चल पड़ी। "इन जंगली जानवरों का भरोसा नहीं करना चाहिए" यही वाक्य कान में खटकता रहा। जंगली जानवरों पर भरोसा नहीं करना चाहिए? मां कहलाने वाली यही देवियां बच्चों को पीछे छोड़कर भाग गयी थीं। बाढ़ में घिर गयी बंदरिया की कहानी जग जाहिर है। बाढ़ का पानी ऊपर आ जाने पर बंदरिया ने अपने बच्चे को पैरों के नीचे ले लिया था। इस कहानी की क्रूरता हम सदा सुनते आये हैं। बंदर हमारे वंशज है या हम उनके? यही सवाल सामने आता है। बाद में इन्हीं जीप वालों द्वारा चंद्रपुर जाने पर "हमने अपनी जीप में भालू को बिठाकर घुमाया।" आदि गप्पें हांकने की बातें हमें पता चलीं।

यहां वर्षा के दिनों में सड़क के आसपास पानी भरा रहता है। रानी को पानी में खेलने में बड़ा आनंद आता था। रानी अब शरीर से मोटी हो गयी थी। हमें अब उसे पंप के नीचे नहलाने में कठिनाई होती थी। संध्या को हमारे साथ घूमने जाते समय वह नालों में और सड़क के किनारे जमा पानी में खूब मस्ती करती। प्रकाश भी उसके साथ पानी में नहाने आये, यह उसका आग्रह होता था। हम बाहर बैठे रहते। परिचित स्थान पर ही वह पानी में उतरती। गहरे पानी में तैरने के बाद वह उथले पानी में आकर बैठ जाती। मनुष्य की तरह फिर दोबारा उसका नहाना चलता। अगले दो पैरों से मुंह-सिर धोना, सीना रगड़ना, सब तरह से वह नहाती थी। किनारे पर ही बैठे-बैठे हमारे हंसने पर मुंह में पानी लेकर वह ऊपर उड़ाती। हमारे दूर चले जाने पर आनंद से नाच उठती। उसका गीले बदन पास आना हमें पसंद नहीं था, यह उसे मालूम था। इसलिये वह जबरदस्ती भागकर हमारे पास आती और हमें पकड़ती। उसके नहाने के दिन काफी ज्यादा कसरत हो जाने से हम तीनों थक जाते थे।

वर्षा के बाद नाले और सड़क के किनारों का पानी सूख जाने पर रानी को नहाने के लिए नदी पर ले जाना पड़ता। दोपहर में ही हम लोग मछली पकड़ने की कंटिया लेकर नदी पर चले जाते। हम मछली नहीं खाते थे। केवल नदी पर समय बीत जाता और साथ ही जंगल में कोई जानवर दिखता तो उसे देख लेते। दोपहर के भोजन के बाद मैं, प्रकाश, नेली और रानी पैदल ही नदी के किनारे पहुंच जाते। सप्ताह में दो-तीन दिन यह कार्यक्रम होता था। प्रारंभ में नदी पर पहुंचते ही रानी थक जाती थी। रास्ते में ही कहीं बैठने की जिद करती। हमारे आगे चलने पर भी वह आगे न आती। एक बार तो प्रकाश ने उसे गोद में उठा लिया। पंद्रह किलो का वजन उठाकर चलना भी कठिन था। और फिर रानी गोद में चूपचाप थोड़े ही बैठती थी। कभी कंधे पर नाखून लगाती तो कभी मुंह के सामने मुंह लाकर फूंक मार देती। ऐसी नटखट थी वह। थोड़ा आगे चलने पर प्रकाश ने उसे नीचे उतारा। थोड़ी ही दूर चलने के बाद वह फिर उठा लेने का हठ करने लगी। एक दिन चिढ़कर

हमने तय कर लिया कि कुछ भी हो जाये हम उसे गोद में नहीं उठायेंगे। हम उसे छोड़ आगे निकल गये। एक घंटा बीत जाने पर भी रानी वहां नहीं आई। जब वापस लौटने पर रानी रास्ते में नहीं दिखी तो हमने सोचा कि कहीं रानी वापस तो नहीं चली गयी? उसे रास्ता मिलेगा? हम दोनों ही प्रकल्प के स्थान पर नहीं थे। घर लौटने पर उसने वहां हुड़दंग तो नहीं किया? एक के बाद एक प्रश्न मन में उठने लगे। अभी-अभी रानी को डांटकर हम आगे बढ़े थे। अब स्वयं से नाराज होकर हम लौट रहे थे। मुझे कैसा लग रहा है, यह मैं कुछ समझ नहीं पा रहा था। मैंने नेली से पूछा, "नेली, रानी कहां है?" नेली जर्मनशेफर्ड जाति की थी। वह झट से जंगल में घुस गयी। हमें नेली की अभी तक कोई खबर नहीं थी। कुत्ते कभी रास्ता नहीं भूलते। जल्दी ही हम घर लौटने लगे। इतने में नेली के भौंकने की आवाज सुनाई दी। हम रुक गये। नेली और उसके पीछे ही उसकी सहेली रानी आ रही थी। नेली ने उसे मना लिया था। हम खुश होकर वहीं बैठ गये। रानी आ गयी। वह जरा गुस्से में ही थी। थोड़ा समय मुझे उसे समझाने में लगा। दो बार गुस्से से वह मुझ पर झपट पड़ी। यह उसकी गुस्सा उतारने की अपनी रीति थी, जो मुझे बड़ी महंगी पड़ती थी। क्या उसे छोड़ मैं ही अकेला चला गया था? लेकिन उसकी ओर से प्रकाश को सदा ही सभी गुनाहों के लिए माफी थी। मगर उस दिन तो उसने प्रकाश को भी नहीं बख्शा था—यह मुझे बाद में पता चला। हमने उसे बहुत लाड़ से समझाया। लेकिन यह हमारी दूसरी भूल थी। गोद में उठाने के लिये वह फिर जिद कर बैठी। थोड़ी देर तक तो प्रकाश ने उसे उठाये रखा। लेकिन अभी दो कि.मी. और जाना था। पूरे रास्ते उठाकर चलना असंभव था। रानी चलकर वापस नहीं आना चाहती। प्रकाश भी उसके साथ वहीं बैठा रहा। मैं प्रकल्प के स्थान पर आया। कुछ लोगों को रस्सी व बैलगाड़ी लेकर उसे लाने चल दिया। रानी अपने पूर्व स्थान पर ही थी। वहां से जरा भी नहीं हिली थी। बड़ी संख्या में लोगों और बैलगाड़ी को देखकर वह भड़क उठी और जोर से चिल्लाने लगी। सब के ऊपर झपटने लगी जिससे सभी लोग और बैल घबरा गये। वे रस्सी लाये थे। मगर इससे पहले कभी उसे सांकल या पट्टा बांधा नहीं था। हमारे द्वारा रस्सी बांधने का प्रयास करने पर उसने अपने पांवों से रस्सी के टुकड़े-टुकड़े कर हमारा प्रयास विफल कर दिया। अब सभी परेशान हो गये। अंधेरा भी होने लगा था। हमने सभी लोगों को वापस भेज दिया। रानी और प्रकाश दूर जंगल में बैठे थे। मैंने इस महारानी के लिए जीवन में पहली बार बैलगाड़ी हांकी थी। बड़ी मुश्किल से बैलों को संभालते हुए मैं गाड़ी में बैठा रहा। प्रकाश समझा-बुझाकर रानी को भी पास ले आया। मेरे इशारा करते ही नेली कूदकर गाड़ी में बैठ गयी। फिर प्रकाश भी बैठ गया। गाड़ी चलने लगी। रानी भी गुस्से में आवाज करते हुए बैलगाड़ी में आ बैठी। अब तक तो बैल भी उसे पहचानने लगे थे। प्रकाश की गोद में सिर रखकर उसके पैर चूमते हुए रानी पड़ी रही। हमारी सारी बारात फिर अंधेरा होने के बाद ही घर

पहुंची।

इसके बाद तो फिर रानी के जिद करने पर हम लौट आते थे। या फिर नेली जब उसे जंगल से ढूंढ़ लाती, तब हम उसको लाड़-प्यार नहीं करते थे। उसके लिए रुकते भी नहीं थे। चलते ही रहते थे। तब क्रोध से फनफनाते या नाराज होकर रानी फिर हमारे पीछे-पीछे आ जाती थी। रानी को यह समझ आ गया था कि उसका हठ अब नहीं चलेगा। फिर तो रानी हमारे साथ शांति से घूमने जाने लगी।

सन् 1978 के अंत तक हम लोग रानी को साथ लेकर नदी पर जाते रहे। हम दोपहर में सड़क से दूर जंगल पार करते हुए नदी किनारे जाते थे। संगम के आगे ही इन्द्रावती नदी पर जाने में हमें सहूलियत थी। वहां जंगल घना था और कोई चहल-पहल नहीं थी। रास्ते में एक नाला पड़ता था। रानी को नाला पार करते समय कोई साथ चाहिए होता। उसके साथ पानी में जाना भी बड़ा कठिन काम था। वह हमारे अगले पैरों से लिपट जाती और हमें पानी में गिराकर खेलना चाहती थी। इसी बात को टालने के लिए हमने एक चालाकी की। नाला पास आते ही हम दोनों में से एक कुछ दूर चला जाता। रानी जब उसके पीछे जाती तो दूसरा आधा नाला पार कर पानी में खड़ा होकर आवाज करते हुए रानी को पुकारता। जब तक वह भागते हुए उसे पकड़ने आती तब तक वह झट से आगे बढ़ जाता। रानी को भी उसके पीछे-पीछे नाला पार करना ही पड़ता। नदी पर तय स्थान तक पहुंचने पर हम नदी में कंटिया डाले गप्पें लगाते रहते थे। रानी महुआ, टेसू, चारा आदि जंगली फल ढूंढ़ने में लगी रहती थी, नहीं तो फिर दीमक की तलाश में। थोड़े-थोड़े समय बाद वह पास आकर इस बात की जांच लेती कि हम वहीं है। थक जाने पर वह हमारे ही पास पेड़ की छाया में बैठ जाती। नेली साथ रहती। जंगल में कुछ भी आवाज होती तो रानी वहां से उठकर मेरे और प्रकाश के बीच आकर बैठ जाती और आवाजें लगाती। ऐसे ही एक बार हम सभी बैठे थे तो रानी भागते हुए आकर प्रकाश की गोद में बैठ गयी। तेजी से भाग भागकर आने के कारण वह हांफ रही थी। जब प्रकाश ने उसे गोद से हटा दिया तो वह मेरे पास आकर 'ऊ ऊं' आवाज करती हुई बैठ गयी। उसकी यह हरकत कुछ अलग ही किस्म की थी। वह यकीनन किसी बात से घबराई हुई थी। तभी नेली ने अपने कान खड़े किए। थोड़ी ही देर बाद पेड़ के पत्तों की ओर से बंदरों की आवाज आई। लाल बंदरों का झुंड रानी का पीछा करते हुए वहां आ पहुंचा था। छोटे-बड़े मिलाकर पन्द्रह-बीस बंदर थे। बंदर कभी भी बिना किसी कारण के जंगल में भालू जैसे जानवर के पीछे नहीं लगते हैं। बबली के साथ खेलने की आदत की वजह से शायद रानी से किसी बंदर को छेड़ा होगा तो बंदरों का फिर झुंड क्या आराम से बैठा रहता? भालू को डर कर भागते हुए देखते ही उनकी हिम्मत और बढ़ी होगी। रानी के साथ मुझे और प्रकाश को देखते ही झुंड वहीं रुक गया। पीछे से उनका मुखिया दूर से ही हमें देख रहा था। उसने

थोड़ी देर तक हम लोगों को दांत दिखाकर खों-खों की आवाज की। फिर सभी ने मिलकर दांत पीसते हुए आवाज की। आगे क्या संकट आने वाला है इसका अंदाज लगाकर मैंने नेली को 'गो' कहा। वह इसी इशारे की इंतजार में थी। जोर से आवाज करके वह खड़ी हो गयी। वहां के मुखिया नर ने कुछ अलग ही आवाज की। पूरा का पूरा झुंड टेढ़े मुंह किए जंगल की ओर मुड़ गया। लेकिन रानी बैठी रही। अब तक नेली भी बैठ गयी थी। मैंने रानी को थपथपाते हुए फिर से नदी में कंटिया छोड़ दिया। हमारी गप्पें दोबारा शुरू हो गयीं। यदि नेली अभी साथ नहीं होती तो? बंदर हम पर भी हमला कर देते? रानी ने फिर से ऊं ऊं की आवाज की। हमने पीछे देखा। नेली भी ऊपर पेड़ पर देख रही थी। ठीक से देखने पर एक बंदर पेड़ पर बैठा दिखाई दिया। मैंने तुरंत प्रकाश को इशारा किया। हम देखने लगे। वह आकार में कोई बड़ा नहीं था। अपना झुंड छोड़कर रहने वाले बड़े नर जैसा भी नहीं था। कहीं हमारे ऊपर नजर रखने के लिए तो उसे पीछे नहीं छोड़ा गया था? वह बंदर धीरे-धीरे नीचे उतरने लगा। हमने उस ओर ध्यान ही नहीं देने का दिखावा किया जिससे वह जमीन पर उतर आया। तभी नेली एकदम उस पर झपटी। उसके सामने आने पर वह झट से फौरन पेड़ पर चढ़ गया। मेरे 'नो' कहते ही वह अपराधी की भावना से लौट आयी। उसी क्षण मैं और प्रकाश बोल पड़े कि "अरे, यह तो अपना नागू है।" उसके गले में बंधा हुआ कपड़े का पट्टा भी वही था। नागू जब हमारे यहां से भागा था, उस बात को अब दस महीने से अधिक बीत गये थे। राजू बंदर से उसे बहुत सताया था। वह भाग गया था। हमने 'नागू', 'नागू' आवाज देकर उसे पुकारा। उसने हमें पहले ही पहचान लिया था। हमारे बुलाने पर नेली भी उसे पहचान गयी। वहीं बैठी-बैठी पूंछ हिलाने लगी। हमें बहुत खुशी हुई कि वह जंगल में जिंदा था। वह झुंड उसे अपने में शामिल करने का आशा से उसके पीछे-पीछे घूम रहा था। गले में बंधे हुए पट्टे के कारण उसे शायद झुंड में प्रवेश नहीं मिल रहा था। उस पर फिर वह नर था। या फिर हमारे साथ रहने के कुछ ढंग उसके व्यवहार में दिखाई पड़ने के कारण ही झुंड ने उसे अपने से दूर रखा था? वैसे जानवरों के गले में पट्टे डालना हमने गत वर्ष से ही बंद कर दिया था। लेकिन अब इसका क्या किया जाये? उसके पास आने पर अब हम उसे वापस तो नहीं ले जाते, लेकिन उसके गले से पट्टा जरूर उतार देते। यदि एक बार झुंड उसे अपना लेता तो वे भी मनुष्य के 'पहचान चिह्न' को दांतों से काटकर निकाल फेंक सकते थे। इसका हमें विश्वास था और हमारी इच्छा भी यही थी। उसने रानी और नेली को भी पहचान लिया था। वह फिर नीचे उतर कर हम से दो-एक फुट दूर ही बैठ गया। कूल्हे के बल बैठ उसने पीछे के पांव मोड़कर छाती से चिपका लिये थे। प्यार भरी आवाज निकालकर वह बोलने लगा। निश्चित रूप से यह नागू ही था। उसकी यह पुरानी आदत थी। हम उठे। वह फिर से पेड़ पर चढ़ गया। जैसे ही हम वापस लौटे वह पेड़ से पेड़ पर छलांग लगाते हुए नाले तक हमारे पीछे आता

रहा। अंत में एक पेड़ से ही उसने हमें विदा दी। जब तक हम उसे देख रहे थे तब तक वह भी हमें देखता रहा।

दूसरे दिन नागू का प्रिय भोजन रोटी लेकर हम जरा जल्दी ही नदी पर जा बैठे। किसी भी तरह नागू के गले का पट्टा उतार कर उसे फिर से छोड़ देने का हमने निश्चय किया था। बड़ी देर तक वहां कोई नहीं आया। फिर दोपहर के तीन बजे बंदरों की आवाज आयी। हम आज रानी को साथ नहीं लाये थे। सिर्फ नेली ही साथ थी। आवश्यकता पड़ने पर किसी को पकड़ने के लिए वह सहायक सिद्ध होती। बहुत से बंदर चिल्लाते हुए पेड़ों की शाखाएं तोड़ रहे थे। थोड़ी देर बाद आवाजें दूर जाने लगीं। वह झुंड आज इस ओर आने वाला नहीं था। अब हम सोच रहे थे कि रानी को साथ लाते तो अच्छा होता। बंदरों का झुंड जंगल में वापस चला गया। वापस नदी तट पर आया ही नहीं। अब क्या करें— यह सोचकर हम वहीं बैठे रहे। चार-पांच मिनट बाद पास के पेड़ के ऊपर से खर्र-खर्र की आवाज आयी। पता नहीं कब से नागू चुपचाप हमें देख रहा था। आज नेली भी सावधान क्यों नहीं हुई? वह भी बड़ी समझदारी दिखा रही थी, या उसने हमारे मन की बात पढ़ ली थी? पहले नागू ने ही हमारा ध्यान अपनी ओर खींचा। मेरे 'नागू, 'नागू' आवाज लगाने पर वह जमीन पर उतर आया। लेकिन दूर से ही देखता रहा। जब प्रकाश ने एक रोटी का टुकड़ा उसकी ओर फेंका तो वह सतर्क हो गया। रोटी की ओर उसने जरा शंका की दृष्टि से देखा। फिर पिछला पांव लंबा करके उसने रोटी को स्पर्श किया और झटके से अपना पैर पीछे खींच लिया। फिर से पैर लंबा कर उसने रोटी को छुआ। कोई नयी वस्तु बंदर इसी प्रकार से परखते हैं। वह वस्तु उन्हें पकड़ेगी तो नहीं, इसका विश्वास होने पर ही वे उसे हाथ लगाते हैं। नागू ने रोटी का टुकड़ा उठाकर उसे सूंघा। अब उसे बचपन में रोटी खाने की याद आ गयी। खुशी से 'चीं चीं' आवाज करते हुए उसने दोनों हाथों से जल्दी-जल्दी रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े किये। एक बड़ा टुकड़ा अपने कूल्हे के नीचे दबाए रखा। बाकी रोटी गपागप खाने लगा। उसके गले का पट्टा अब पहले से अधिक कस गया था। मैं 'नागू, 'नागू' करते उठ खड़ा हुआ। वह कूल्हे के नीचे रखी रोटी उठाकर झट भाग गया और फिर पेड़ पर चढ़ गया। प्रकाश ने पुनः प्रयास किया। नेली ने भी पहले की तरह उसे पकड़ने का प्रयास किया। लेकिन बाद में हमने पीछा ही छोड़ दिया। नागू के वापस जाने तक हम आसपास ही रहे। इसके बाद भी चार दिन हम वहां जाते रहे। लेकिन बंदरों ने उस जंगल का वह भाग छोड़ दिया था। बेचारा नागू! गत आठ महीनों तक पता नहीं कितने झुंडों से वह विनय करता रहा होगा। बाद में, फिर दो वर्ष बाद सन् 1980 के अगस्त में नागू ने हमें दर्शन दिये। नदी पर बंदरों का एक झुंड था। उसी में से एक बंदर हमारे पीछे-पीछे ही लगा रहता था। हमारे ऊपर वाले पेड़ से वह बार-बार झुककर हमें देखता था। 'नागू, 'नागू' आवाज देने पर वह पहचाना गया और फिर झुंड में जा मिला। अपने

गले का पट्टा तोड़ देने में उसे सफलता मिली थी। हम एक दूसरे को पहचान गये, हमें इसी में आनंद था।

हमें सन् 1977 के अंतिम दिनों में एक भेकर जाति का छोटा नर हिरन मिला। हमने उसका नाम जॉन रखा। पेंटी को साथी मिल गया। इसी वर्ष हमें एक बैंडेड क्रेट जाति का सांप मिला। पिछले वर्ष ही एक चूहे ने सांप को मारकर खा लिया था। इसलिए अब पहले से अच्छा बड़ा पिंजरा बनाया गया। बाद में तो बड़ी संख्या में जहरीले सांप मिले। हम केवल जहरीले सांप पकड़कर पिंजरे में रखते थे। गर्मी के दिनों में यहां 117 डिग्री फारनहीट तापमान रहता है। एक दिन दोपहर में एक साथ चार सांप मर गये। दूसरे दिन पिंजरे के बाहर टाट का बोरा बांध दिया और दोपहरी में उसे पानी में भिगोकर हमने वातानुकूलित माहौल बना दिया। फिर भी बाद में दो सांप और मर गये। तब हमने पिंजरे के तल पर मिट्टी बिछा दी और उसे भी पानी से गीला रखने लगे। उसके बाद सब ठीक रहा। अब तो सांपों के लिए वैज्ञानिक ढंग की टंकी ही बनवा ली है। उसकी तलहटी में चारों और पानी भरा रहता है।

पेंटी हिरनी ने सन् 1978 में पहली ही बार पिंजरे में एक मृग छौने को जन्म दिया। पहले ही दिन से वह हम दोनों को अपने छौने को हाथ लगाने देती थी। अन्य लोगों पर तो वह झपट पड़ती। हिरन जैसा शांत स्वभाव का जानवर भी अपने नन्हे बच्चों की रक्षा के लिऐ कितने जोर से झपटता है, यह बात तब हमारी समझ में आई। वैसे चिंकारा मादा को छोड़कर अन्य मादा हिरन के सींग नहीं होते।

प्रकल्प के स्थान पर 75 के करीब गिनती के ही लोग रहते थे। इस योजना का प्रारंभ हाल ही में किया गया था। आदिवासी केवल दवा लेने के लिये ही आते थे। बाद में इस "लोक-बिरादरी" का काफी नाम हुआ। हमने आदिवासियों के लिये आश्रयशाला प्रारंभ की। सन् 1978 तक कार्यकर्ताओं और बच्चों की संख्या बढ़ गयी थी। आदिवासियों का हम पर विश्वास हो जाने से यहां उनकी चहल-पहल भी बढ़ गयी थी। फिर धीरे-धीरे सभी जानवरों को पिंजरे में बंद करना पड़ा। कुछ हिरन और रानी भालू सन् 1979 तक खुले ही घूमते रहते थे। प्रकल्प देखने के लिए आने वाले हमारे और शासकीय मेहमानों की संख्या भी बढ़ी। रानी अब बहुत बड़ी हो गयी थी। सन् 1979 में ही हमें भालू का एक और बच्चा मिला। वह मादा था। सही अर्थ में रानी को जोड़ीदार तो बाद में मिला। अभी तो केवल एक खिलाड़ी साथी ही मिला था। इस छोटी बहन को रानी ने ठीक से संवारा, संभाला। उसी वर्ष हमें ताड़गांव के पटेल ने एक चीतल जाति के हिरन का नर बच्चा लाकर दिया। यही हमारे पास के जानवरों में पहला चीतल था। चीतल इस प्रदेश में बड़ी संख्या में हैं। जंगल में घूमते हुए हमने बहुत से चीतल देखे हैं। इसी वर्ष मुझे एक मादा चीतल भी मिल गयी। नर चीतल पिछले वर्ष नीलगाय के साथ शैतानी करते समय मारा गया

था। वैसे इस जोड़ी द्वारा हर साल एक के बाद एक छौने को जन्म देने से अब हमारे पास पूरे नौ चीतल हैं।

मुझे लाहीरी गांव से पहली बार सन् 78 के अंत में एक गंधबिलाव मिला। यह नर था। इसे माड़ीया लोग झाड़कुत्ता कहते हैं। यह पेड़ पर ही रहता है। यह फल, अंडे, पंछी और छोटे जीव खाता है। शायद इसे ही कुछ लोग 'मसण-उद' कहते हैं। यह नर हमने पहले लाहीरी में एक के पास पिंजरे में रखा था। इसलिए उसे यहां भी पिंजरे में ही रखना पड़ा। मेहमानों को जब हम उसे 'मसण-उद' कहकर बताते तो वे तुरंत अपने बच्चों को लेकर पिंजरे से दूर हट जाते। प्रत्येक जंगली जानवर के बारे में काफी गलतफहमियां हैं। गंधबिलाव छोटे बच्चों का भेजा खाते हैं, वे मनुष्य के गड़े मुर्दे खोद कर भी खाते हैं, आदि - ऐसी कितनी ही किंवदंतियां हैं। हमारे प्रकल्प के पास ही गड़ा हुआ एक शव किसी जानवर ने खोद कर खा लिया था। सन् 1985 में मैंने यह दृश्य देखा था। मुर्दे के आसपास दिखे पैरों के निशानों से यह कहा जा सकता था कि वह जानवर इस सिवेट कैट अर्थात गंध बिलाव से निश्चित ही बड़ा था। उसके पांवों के निशान देखने से तो लगा कि पदचिह्न भालू या जंगली सुअर जैसे थे। पास ही पड़ी विष्टा में टेंभरू (एक तरह का बेर) के बीज बड़ी मात्रा में थे। जंगली सुअर और भालू का गर्मी के मौसम में जंगल में टेंभरू के फल ही प्रमुख भोजन होता है। यहां गर्मी में तो सभी जानवरों, लोमड़ी और जंगली कुत्ते जैसे जानवरों की टट्टी में हमने टेंभरू के बीज देखे हैं। इसलिए इस बारे में पक्का निर्णय करना कठिन ही है।

इसी वर्ष हमारे पास वेंगडूर गांव से एक पट्टेदार लकड़बग्गे का बच्चा आया। यह नर था। मैंने उसे 'बोटी' नाम दिया। वह आज भी यहीं है। इस जानवर का जबड़ा बड़ा होता है और उसमें ताकत भी ज्यादा होती है। बड़े जानवरों के पैरों की हड्डी वे आसानी से तोड़ सकते हैं। लकड़बग्गा पूर्णरूप से मांसाहारी होता है। उसे जंगल का जमादार कहते हैं। वह स्वयं शिकार करने के बदले बाघ, तेंदुए आदि के खाने के बाद बचे-खुचे शिकार को खाकर जगह साफ करता है। इनका काम होता है सब सफा कर जाना। हमारा बोटी प्रारंभ से ही दूध-चावल खाकर बड़ा हुआ। बाद में तीन वर्ष तक तेंदुओं को दिए मांस में से बड़े जानवरों के केवल पैरों के खुर ही इसके हिस्से में आते रहे। इस प्रदेश में बहुत लकड़बग्गे हैं। वह दूसरों के शिकार पर ही जीवित रहने वाला जानवर है। हमने आज तक यह नहीं सुना कि यह जानवर किसी बच्चे को उठाकर ले भागा हो। वैसे वह अकल से इतना मूर्ख होता है कि अन्य जानवर तो मनुष्य दिखते ही या गाड़ी की आहट पाकर ही झट से जंगल में भाग खड़े होते हैं। लेकिन लकड़बग्गा केवल देखता रहता है और बड़ी धीमी गति से चलता रहता है। वह बच्चे उठाकर दूर ले जाने के लिए इतना चालाक, चपल नहीं है। वह सुस्त भी होता है। उसके पीछे के पैर सामने के पैरों के अनुपात में बहुत

छोटे होते हैं। इस कारण उससे ठीक चलते ही नहीं बनता। इधर काफी लोग उसे कुबड़ा शेर भी कहते हैं। इस नाम के कारण भी ऐसी गलतफहमी हो सकती है कि वह क्रूर होगा।

बोटी को हमने पूरे एक वर्ष तक खुला ही रखा। प्रारंभ में उसे हमने साथ में घूमने ले जाने का प्रयास किया। लेकिन वह इतनी धीमी चाल चलता था कि जी ऊब जाता। उसे शायद दिशाज्ञान भी नहीं होता। दस फुट की दूरी भी वह सीधी तरह से नहीं चल पाता है। दो दिन उसे रस्सी से बांधकर रखा। लेकिन इसके कारण वह और भी कष्ट देने लगा। बड़ी ही कर्कश व घिनौनी आवाज में चिल्लाता। बड़ी जोर-जोर से हंसकर फिर रोने जैसी आवाज था चिल्लाहट निकालता। लेकिन उसने हम दोनों से दोस्ती जरूर कर ली थी। आज तक उसे कोई मादा साथी नहीं मिली। हमने जर्मनशेफर्ड कुतिया को सन् 1981 में छह महीने तक उसके पिंजरे में रखा था। लेकिन उनका समागम नहीं हो सका।

मेरी बेटी मोक्षदा सन् 1972 की गर्मी में एक वर्ष की हो गयी थी। मैंने एक दिन उसके चेहरे के सामने आईना रखा। अपने प्रतिबिंब की छवि को वह शंकित दृष्टि से देखती रही। फिर उसे गोदी में उठाकर हमने आईने में देखा। मुझे तो वह हर रोज देखती थी। दोनों की सूरतें आईने में देखकर वह हंस पड़ी। फिर आईने में उसकी सूरत की ओर उंगली कर मैंने कहा – 'मोक्षा'। मोक्षा कहने पर पहली बार उसे पता चला कि वह स्वयं कैसी दिखती है और वह खुश हो गयी। आखिर वह नारी थी। वह फिर मुझसे हर रोज आईना मांगने लगी। सहसा मेरे मन में यह विचार आया कि जब जंगल में जानवर पानी में अपना प्रतिबिंब देखते होंगे, तब उनकी क्या प्रतिक्रिया होती होगी? बच्चों की एक कहानी के अनुसार क्या शेर कुंए में अपनी ही सूरत देखकर कूद पड़ा होगा? जानवरों के सामने आईना रख दिया जाए तो क्या होगा? घर का आईना लेकर यदि मैं जानवरों के पास जाता तो शायद मेरी पत्नी मुझे उनके साथ ही पिंजरे में बंद कर देती। मन में आई बात मन में दब नहीं पाती। इतने दिनों तक जंगली जानवरों के साथ रहने पर केवल बोलने से कुछ कर दिखाना मैंने जंगली जानवरों से ही सीखा था। जब मैं भामरागढ़ गया तो मैंने एक छोटा आईना 5 रु. में खरीदा। वहां से वापस लौटते समय तरह-तरह के विचार मेरे मन में आ रहे थे। मुझे लगातार यही लग रहा था कि बंदर तो आज जरूर कोई नयी सीख देगा और यह बात सच साबित भी हुई।

आईना लेकर पहले मैं रानी भालू के पास गया। मुझे आता देखते ही वह प्यार भरी आवाज करती हुई आगे की ओर आने लगी। मैंने अपने सामने आईना पकड़ रखा था। कुछ क्षण अपनी बारीक आंखों से आईने में अपनी सूरत देखने के बाद वह एकदम अपने पीछे वाले पैरों पर खड़ी हो गयी। यह सब इतनी जल्दी हुआ कि मैं जरा चौंक गया। लेकिन

आईना हिलता नहीं है, यह बात ध्यान में आते ही वह धीरे से अपने चारों पैरों पर खड़ी होकर आगे आ गयी। मेरे हाथ में पकड़े आईने को उसने सूंघा। मेरे हाथ में खाने की चीज दिखने पर वह मुझसे खेलने लगी। फिर मैं गया लकड़बग्गे के पास। बड़े प्रयासों के बाद भी उसने आईने में नहीं ही देखा। यदि देखा भी होगा तो उसका कोई असर नजर नहीं आया। मानो उसे कुछ लगा ही नहीं था। वह मेरे साथ खेलता ही रहा। फिर मैंने मोर्चा बढ़ाया पेंटी हिरन की ओर। पेंटी के पास आते ही मैंने आईना सामने किया। उसने एक बार घूर कर देखा। वह अपने दोनों कान खड़े कर पीछे हटते हुए दूर से ही अंदाज लेती रही। फिर कितनी ही आवाज देने पर भी वह मेरे पास नहीं ही आयी। बाद में पूरे सप्ताह भर वह मुझे शक की नजर से ही देखती रही।

अब मैं बंदर के पास गया। राजू बंदर यह पहले ही जान गया था कि मेरे हाथ में कुछ नयी चीज है क्योंकि इतनी देर तक अपने ऊंचे खोखे पर बैठकर उसने बड़ी गौर से यह सब पहले ही देख लिया था कि मैं किस-किस के पास गया था। दूर से वह मुझे ही पुकार रहा था। फिर मैं उसके पास गया और एकदम आईना उसके सामने किया। कुछ ही क्षणों में उसका पैंतरा बदल गया। उसने गर्दन के बाल फुलाकर दांत दिखाते हुए आईने में देखा। आईने में दिखा कि एक और बंदर भी दांत दिखा रहा है तो यह देखते ही वह बहुत घबरा गया। वह स्वयं घबराया हुआ है, इस भेद को छुपाने के इरादे से पास ही खड़ी बबली पर वह चिल्लाते हुए झपटा। बबली तुरंत उसकी ओर पीठ करके चारों पैरों पर खड़ी हो गयी। तब वह बबली पर चढ़ने लगा। उसी हालत में मैंने आईना सामने कर दिया। दोनों को आईने में यह देखकर उसे लगा कि यह दूसरा कौन सा बंदर उसके अधिकार क्षेत्र में आ गया है? यह देखकर वह जोश में आ गया और दांत दिखाते हुए आईने के पास आ पहुंचा। आईने में दिख रहा बंदर भी दांत दिखा रहा है, यह दिखते ही वह खुद बहुत डर गया। रोते-रोते दूर जा बैठा। इतनी देर तक मैं हंस रहा था। अब कुछ सोचने लगा। मेरे लिए राजू के सामने इस आईने की कोई कीमत नहीं थी। आईने के पिछले स्टेंड पर आईना खड़ा कर मैं दूर जाकर खड़ा रहा। राजू बहुत देर तक रोता रहा और आईने की ओर देखने से भी कतराता रहा।

फिर धीरे-धीरे वह आईने में देखने लगा तथा दांत दिखाने लगा। लेकिन वह निश्चित ही डर गया था। बबली उसकी बगल में खड़ी थी। अभी भी वह समझ नहीं पा रही थी कि हुआ क्या है? उसने आईने में नहीं देखा था। बबली आईने की ओर आने लगी। राजू को बड़ा गुस्सा आया। वह चिल्लाते हुए बबली के पास गया और उसे पीछे की ओर खींचकर काट खाया। वह बेचारी कुछ न समझ पाई कि हुआ क्या है? वह रोते-चिल्लाते पीछे लौट गयी। बबली और आईने के बीच में राजू तिरछा होकर बैठ गया। उस ओर मुड़कर देखे बिना उसे आईने में कुछ नहीं दिखता था। वह धीरे से मुड़कर आईने में देखने लगा। वह

खुद को उसमें देखते ही झट से दूसरी ओर देखने लगता। वह कुछ भी करके आईने में देखना टालता रहा, फिर भी वह आईने में देखने का मोह नहीं टाल पाता था। वैसे, हम भी जब कहीं जाते हैं, भले ही वह नामकरण संस्कार हो या किसी की तेरहवीं, सामने आईना दिखते ही उसमें देखने का मोह नहीं टाल सकते, चाहे हम जवान हों या बूढ़े।

आईने में बैठा दूसरा बंदर हमला करने आगे नहीं बढ़ता, यह जान लेने पर राजू बंदर की हिम्मत जरा बढ़ी। वह आईने की ओर मुंह करके बैठ गया। स्वयं को जरा गौर से देखने लगा। उसने सीने तथा पेट को जमीन से चिपकाकर झपटने की भी तैयारी की। आईने में दिखाई दे रहे बंदर के वैसा ही करने पर वह ठीक से बैठ गया। उसने जरा विचित्र सी आवाज निकाली। आईने वाले बंदर की तरफ से कोई जवाब न आने पर उसने गुस्से में जोर से आवाज दी। फिर भी सामने वाला बंदर चुप ही बैठा रहा। यह देखने पर वह जरा सकपकाया। कुछ और करें, इस विचार से वह आईने की ओर पीठ कर अपने अगले पैरों के बीच गर्दन डालकर पीछे देखने लगा। आईने के बंदर को भी वैसा ही करते देखने पर उसने सिर उठाकर पीछे की ओर देखा। दूसरा बंदर भी वैसे ही देख रहा था। राजू का इतना दयनीय चेहरा मैं पहली ही बार देख रहा था। राजू ने अपनी पीठ खुजलाई, गर्दन भी खुजलाई, फिर आईने की ओर दुबारा न देखने का तय कर वह खामोश बैठ गया। बबली झट से आगे आयी। वह राजू के पास जाकर उसके बाल देखने लगी। बबली के पास आने पर उसकी हिम्मत बढ़ी होगी। राजू ने आईने में देखा तो बबली भी आईने में दिखी। इस बात का कुछ फैसला हो ही जाये, यह सोचकर वह जरा टेढ़ा होकर खड़ा रहा। पिछला पैर लंबा करके वह आईने की ओर ले जाने लगा। आईने वाले का भी पैर अपनी ओर आते देख उसने अपना पैर झटके से पीछे खींच लिया। उसे रोना आ रहा था। उसने फिर अपना पैर आगे करते हुए अंत में आईने से लगा ही दिया। लेकिन जब यह बात उसकी समझ में आ गयी कि न कोई पैर पकड़ता है और न काटता है, तब उसने रोना बंद किया। फिर अपना चेहरा गंभीर बनाकर वह आईने के पास पहुंचा। अपना पूरा शरीर तानकर वह केवल मुंह वहां ले गया। उसने आईने को सूंघा, फिर आईने को चाट लिया। फिर उसे दांत दिखाये। आईने से कुछ खतरा नहीं है, यह यकीन हो जाने पर वह जरा ठीक से कूल्हे टिकाकर बैठ गया। उसने फिर आईना हाथ में उठा लिया। दोनों हाथों में लेकर उसने आईने को जरा दूर ही रखा था। फिर उसे वह पास लाया। वह स्वयं को आईने में निहार रहा था। उसके चेहरे पर बड़े विचारशील भाव थे। उसकी बाद की करतूत तो बड़ी ही अजीब थी। राजू ने एक हाथ से आईना सामने पकड़े रखा। स्वयं को उसमें देखते हुए दूसरे हाथ से आईने के पीछे तो कोई नहीं है यह देख रहा था। अंत में यह भी परख लिया कि आईने के पीछे की तरफ कोई नहीं है।

मेरी बच्ची ने जब पहली बार मुझे आईने में देखा था तब उसे आईना क्या होता है,

यह बात समझ में आ गयी थी? स्वयं को देखने पर उसने आईने के पीछे हाथ फेरकर क्यों नहीं देखा? बाद में मैंने कई छोटे बच्चों को आईना दिखाया। मुझे पता चला कि प्रत्येक की प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है। लेकिन फिर भी आईने के पीछे हाथ फेरकर किसी ने नहीं देखा। किसी भी नयी वस्तु की ओर बंदर बड़ी सावधानी से देखता है। यहां के आदिवासियों के स्वभाव में भी कुछ वैसा ही नजर आता है। उन्हें, नयी वस्तु क्या है, यह जानने की बड़ी उत्सुकता होती है। मैंने जीवन के उम्मीद भरे दस वर्ष शहर में व्यापार-रोजगार में लगाये और दो वर्ष एअरफोर्स में। अब दस वर्ष आदिवासी और जंगली जीवों के बीच बिताये हैं। हर जगह मैंने भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति के मनुष्य देखे हैं। मनुष्य जब पहली बार किसी नये व्यक्ति से मिलता है, तब उसे स्वयं की प्रतिमा आईने में देखने जैसा लगता है? अपने से अलग और अपरिचित व्यक्ति का और आदिवासियों का देखने का दृष्टिकोण बहुत कुछ राजू बंदर के समान होता है। शिक्षित वर्ग में दृष्टिकोण भिन्न प्रकार के होते हैं। साधारण तौर पर व्यक्ति राजू बंदर की तरह पूरा यकीन कर लेने के लिए आसपास जानकारी हासिल करने तथा अन्य व्यक्तियों से उस बारे में सलाह लेने के बाद भी, उससे स्नेह बढ़ाने में प्रतिष्ठा में आंच तो नहीं आएगी, इसका भी विश्वास कर लेने पर ही दोस्ती का हाथ बढ़ाता है। उसे इससे नुकसान नहीं होता है। कुछ लोग भालू जैसे होते हैं। वे नये व्यक्ति को देखते ही बचाव की भूमिका पहले अपनाते हैं। सावधानी से और सामने वाले से डरते हुए ही उसके पास जाते हैं फिर यदि उससे कोई लाभ नहीं दिखाई देता तो वे उससे दूर हट जाते हैं। ज्यादातर ऐसे लोगों को लाभ ही होता है। कुछ पेंटी जैसे होते हैं। वे उनसे दूर ही रहते हैं जो अपने जैसे न हों। वे आदतन शक्की किस्म के होते हैं। इसी वजह से उनका पूरा जीवन एक ही ढर्रे का होता है। कुछ लकड़बग्गे के समान होते हैं जो सामने वाले व्यक्ति की भावना की कोई कद्र ही नहीं करते और अपनी मस्ती में ही जीते रहते हैं। सामने वाले नये व्यक्ति का उनके बारे में क्या विचार बनेगा, इस बात से उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता। इस मस्ती में वे जीवन के कुछ पहलुओं का तो बहुत अच्छा उपभोग कर लेते हैं।

एक प्रकार और होता है। 1983 में नेगल हमारे पास आया था। पहले आठ महीने वह हमारे पास पूरी तरह खुला ही रहा। छह महीनों में ही वह आकार में काफी बड़ा हो गया। वह सुबह बगीचे में खेलता रहता । कभी-कभी छलांग लगाकर मेरे घर की खिड़की से अंदर आ जाता। मेरी पत्नी उसे हमेशा एक बर्तन में मटके का ठंडा पानी पीने देती। वह थोड़ा पानी पीकर बाकी नीचे गिरा देता। इस पर रेणुका के नाराज होकर चिल्लाने पर वह नीचे जमीन पर उलटा लेटकर मस्ती से अपने आगे के पैरों से रेणुका को धक्का मारता। "हट रे! फालतू काम कहीं करते। साड़ी फटने से क्या तेरा बाप लाकर देगा?" रेणुका ऐसा कहकर उसे डांटती तो वह बगल के कमरे में चला जाता था। वहां हमारे पलंग

लगे हैं। पलंग के सामने ही बड़े आईने वाली अलमारी भी है। नेगल ने घर में कभी कोई खास नुकसान नहीं किया। इस कमरे में आने पर वह पहले तो पलंग के नीचे चला जाता था। वहां उसका अपना अलग ही एक तकिया रखा रहता था। उसे मुंह में पकड़कर वह पलंग पर चढ़ता और थोड़ी देर तकिये से खेलने पर उसका ध्यान आईने की ओर जाता। तुरंत ही वह गद्दी से चिपककर अपने कान पूरी तरह पीछे कर, आंखें बारीक कर अपना पैंतरा संभाल लेता। दूसरे ही क्षण वह धड़ाम से सामने के आईने से टकराकर नीचे गिर पड़ता था। आलमारी जोर-जोर से हिलती। उससे उसकी नाक भी टकरा जाती। फिर वहां से वह बरामदे में जाता। हर रोज यही क्रम चलता रहता था। केवल नाक टकराने के बाद वह आईने से जरा संभलकर टकराता था। पांचवी किस्म कुछ ऐसी होती है जो अपना पूरा जोर लगाकर हर किसी नये व्यक्ति पर झपट ही पड़ती है। उन्हें केवल ठोकरें ही लगती है, हाथ में कुछ नहीं आता। फिर भी वे सबसे यही कहते रहते हैं कि सामने वाले के लिए मैंने क्या क्या किया लेकिन उसका कुछ उपयोग नहीं हुआ। वे फिर उसी जोश से किसी नये व्यक्ति पर झपटने के लिए तैयार रहते हैं।

मार्च 1979 में मध्यप्रदेश के बस्तर के जिलाधीश श्री बंसल 25 कि.मी. का जंगल पार करने के बाद इन्द्रावती नदी पार कर सपरिवार हमारे प्रकल्प देखने आये थे। हमारे दवाखाने में बस्तर के आदिवासी दवाई लेने आते हैं। इसी कारण मध्यप्रदेश में हमारे प्रकल्प के संबंध में सबको जानकारी थी। इन कलेक्टर महोदय ने प्रकल्प द्वारा संचालित दवाखाना, तथा विद्यालय के साथ ही सभी पालतू जानवरों को बड़े स्नेह से देखा। उनके बारे में जानकारी ली। शाम को उन्हें नदी तक छोड़ने के लिए हम रानी को साथ लेकर गये। मैं तुम्हारे जानवरों के लिये कुछ करूंगा, ऐसा वे कहते रहे। सभी आने वाले मेहमान यही कहते हैं। हमने भी उसे सुना-अनसुना कर दिया। रानी अकेली है, उसे जीवनसाथी नहीं मिला, इतना कहकर हमने उन्हें विदा किया। शीघ्र ही हम सब कुंछ भूल गये।

करीब एक महीने के बाद एकदम दस बारह लोग दोपहर में हमारे पास आये। वे लोग बस्तर के निवासी थे, यह उनकी वेशभूषा से हम समझ गये। पांच-छः आदिवासी और दो-तीन खाकी वर्दीधारी। एक के हाथ में एक पिटारा था। हमने पूछताछ कि तो हमें बहुत अचरज हुआ। श्री बंसल साहब ने हमारी रानी के लिये एक नर 'भालू' भेजा था। हमें बड़ा आनंद हुआ। हमने पिटारा खोल दिया। उसके भीतर महीने भर की आयु का नर भालू था। वह बिल्कुल गुमसुम बैठा था। शायद किसी का पालतू रीछ था। वहां पूछने पर पता चला की एक आदिवासी उसे महीना भर तक संभाले हुए था। उसे देखकर लग रहा था कि उसे ठीक से खाना नही मिला था। मैंने उसका नाम 'राजा' रखा। उसने खाते समय कुछ गड़बड़ नहीं की। इधर आदिवासी गाय का दूध नहीं निकालते हैं। राजा को दूध के बिना ही रहना पड़ा होगा। वह चावल का पानी पीता था। 'तुम लोग दूध निकाला

करो और बच्चों को पिलाया करो', यह हम आदिवासियों को पहले से ही समझाते रहे हैं। अब दस वर्ष बाद कुछ थोड़े से आदिवासी दूध निकालने लगे हैं। पहले तो वे एक ही प्रश्न पूछते थे कि "तुम अपनी मां का दूध निकालते हो? उस बछड़े का दूध उसकी मां से चुराने का हक तुम्हें किसने दिया?" खैर राजा को हमने दूध-चावल देना प्रारंभ किया, और साथ ही कुछ विटामिन भी। एक महीने में ही राजा पहले से हृष्ट-पुष्ट होने लगा। रानी उसे अपने बच्चे जैसा संभालती थी। कभी-कभी तो वह हमें भी उसके पास नहीं जाने देती थी। वह यह उसके स्नेह के कारण करती है या फिर हमारे स्नेह के कारण करती है, यह हम समझ नहीं पाये। शायद वह हमारे स्नेह में बंटवारा नहीं चाहती हो। लेकिन रानी का स्वभाव वैसा नहीं था। चार महीने बाद हमें पता चला कि बचपन में दूध न मिलने से राजा की दृष्टि कमजोर थी। फिर उसे विटामिन ए के इंजेक्शन दिये। पर विशेष लाभ नहीं हुआ। मुझे अगले वर्ष एक और नर भालू मिला। उसका भरा-पूरा शरीर देखकर उसका नाम हमसे 'गोट्या' रख दिया। बाद में राजा को सोमनाथ प्रकल्प में भेज दिया गया। गोट्या यहीं रह गया।

इन्द्रावती नदी में ऊदबिलाव अथवा ओटर (इसे यहां के लोग जल-कुत्ता कहते हैं) बड़ी संख्या में हैं। लेकिन अभी तक एक बार भी उनके दर्शन नहीं हुए थे। हम वर्षा में रानी को लेकर नदी पर गये थे। रानी जंगल में घूम रही थी। पानी में कंटिया डाल हमारी गप्पें चल रही थीं। अभी तक हमें चीता क्यों नहीं मिला, इसी विषय पर हम बातें कर रहे थे। सहसा कांटे की ओर ध्यान जाने पर दिखाई दिया कि पानी से ऊपर मुंह निकाले कोई हमें देख रहा है। मैंने प्रकाश को उधर देखने का इशारा किया। थोड़ी ही दूरी पर पानी हिलता नजर आ रहा था। वहीं से एक ऊदबिलाव मुंह बाहर निकाल कर हमारा निरीक्षण कर रहा था। वह झट से पानी में चला गया। हम आनंद से उसी तरह टकटकी लगाये देखते रहे। थोड़ी दूरी पर फिर दो ऊदबिलाव मुंह बाहर निकाले हमें देखने लगे और जैसे पूर्व निश्चित हो, वे उलटी छलांग लगाकर पानी में अदृश्य हो गये। यह निश्चित हो गया कि वहां ऊदविलाव थे। हम लोग उसी सप्ताह फिर नदी पर गये। मैंने नाला पार किया। रानी एक पेड़ के नीचे दीमक खाने के लिये जमीन खोदने लगी। हम जरा रुके। नेली भी खामोश होकर कान खड़े कर गंध ले रही थी। अब मैं भी जानवरों के समान हो गया था। मैंने अनजाने में आगे बढ़कर नेली की गर्दन पकड़ ली। सामने की ओर पास में ही कोई जानवर था। यदि नेली उस तरफ भागती तो वह भी सजग होकर भाग जाता। नेली, मैं और प्रकाश अब बिना कुछ बोले एक दूसरे से इशारे में बातें कर सकते थे। तभी प्रकाश झट से आगे बढ़ा। मैं और नेली चलने लगे। अब जरा सी भी आवाज नहीं होनी चाहिए, यह नेली समझ चुकी थी। हम पांच-छह कदम ही बढ़े थे कि घास में खसख़स आवाज हुई। हम सब भाग कर आगे बढ़े। नदी का किनारा पास था। हम किनारे तक पहुंचें, तब

तक एक के बाद एक, छह-सात ऊदबिलाव नदी में कूद गये। जब हमने देखा तब वे पानी में तैर रहे थे। उन्होंने थोड़ी दूरी पार कर मुंह बाहर निकाले और पीछे की ओर देखा। फिर वे अदृश्य हो गये। हम दो और हमारे चार-पांच—इस प्रकार ऊदबिलाव का पूरा परिवार था।

अगले सप्ताह ऊदबिलाव का एक बच्चा दरभा गांव के लोगों ने हमें भेंट में दिया। हमारा भाई तुम्हारी बिरादरी में आ रहा है, कहीं इसकी पूर्व सूचना देने के लिये ही तो पिछले सप्ताह ऊदबिलावों ने हमें दर्शन नहीं दिये थे? हमें भेंट दिया ओटर दरभा गांव के लोगों को बस्तर के इलाके में इन्द्रावती नदी के किनारे मिला था। हम हमेशा जिस किनारे पर सैर करने जाते थे, उसके दूसरे वाले किनारे पर ऊदबिलाव पेड़ के नीचे की जगह पोली कर बच्चे देते थे। सभी बच्चे जमीन के भीतर रहते हैं। लेकिन उस घर में जाने के लिये रास्ता केवल पानी से ही गुजरता है। जमीन पर कुछ भी नहीं दिखता। पेड़ के पोले भाग में से हवा भीतर जाती रहती है।

दरभा गांव के लोगों ने ऊदबिलाव को पानी में से पेड़ के नीचे जाते देखा था। ऊपर से जमीन खोदकर उन्होंने एक बच्चा निकाला। वे बता रहे थे कि बाकी बच्चे भाग गये। शायद उस प्रयास में एक दो मर भी गये हों। लेकिन वे हमें यह बात नहीं बता रहे थे क्योंकि हमें यह पसंद नहीं आती। ऊदबिलाव का बच्चा नर था। उसके बाल बहुत ही मुलायम थे। चाकलेटी रंग था। पेट की ओर सफेद रंग था। उनके पैरों की उंगलियां आपस में जुड़ी होती हैं। इसी कारण वह इतना अच्छा तैराक होता है। बच्चा पंद्रह दिन का होगा। नाभिनाड़ी सूख चुकी थी। आंखें भी खुल चुकी थीं। बच्चा थोड़ा घबराया सा था। पहले तो वह बार-बार काटने की कोशिश करता था। लेकिन फिर हमें आदत हो गई थी। उसके दांत हमें नहीं लगते थे। हमने उसे बोतल से दूध पिलाया। दो तीन दिनों में उसका जी लग गया। फिर वह हमारे पैरों के आसपास मंडराता रहता था।

दिन भर तो वह प्रकाश के साथ ही रहता। हर रोज उसे दो चार बार हम लोग घुमाने ले जाते। बड़ा ही मिलनसार और खिलाड़ी स्वभाव का था। पानी से तो उसे आदतन बड़ा प्यार था। हमारे प्रकल्प में छोटा सा तालाब है। वह उसी के किनारे रहता। बीच-बीच में पानी में चला जाता। दो-चार डुबकियां लगाकर पानी में उलटा-सीधा होकर फिर बाहर आकर पैरों के बीच मंडराता। वह अभी छौटा ही था। उसे किसी का साथ मिलाना जरूरी था। पानी में शिकार कैसे किया जाता है, यह सिखाने के लिए उसकी मां उसके साथ नहीं थी। वह एकलव्य के समान स्वभावतः प्रयास करता रहता। कुछ न मिलने पर वह हमारे पैरों के बीच आकर रुलाई से भरी आवाज निकालता था। चार दिनों के प्रयास के बाद उसे एक मेंढक हाथ लगा था। वह खुश होकर दौड़ते हुए लौटा और मुंह में से मेंढक निकालकर हमारे सामने पटक दिया। वह मुंह ऊपर कर हम से शाबासी की उम्मीद करता रहा। अब

तक मेंढक की आंखें खुल चुकी थीं। तभी मैं फौरन नीचे झुक कर देखने लगा कि कहीं मेंढक भाग तो नहीं गया? मगर मुझे लगा कि ऊदबिलाव जानवर कितना मूर्ख है! यदि मेंढक भाग जाये तो इसे क्या मिलेगा। दांतों पर भरोसा था शायद! उसने अपने दांतों से मेंढक के शरीर को छलनी कर दिया था। जीवित होते हुए भी मेंढक एक इंच भी हिल नहीं सकता था। मैंने ऊदबिलाव को थपथपाया। मेंढक खाने में कोई हर्ज नहीं है, यह समझकर उसने वहीं खाना प्रारंभ कर दिया। वैसे उसके सामान्य जीवन में उसे क्या खाना चाहिए, क्या नहीं, ये सारी बातें उसे उसकी मां बताती। वही उम्मीद वह हमसे करता होगा। हमारी नेगली को शावक होने पर भी ऐसा ही हुआ था। दो वर्ष तक हमारा दिया हुआ मांस नेगली तो खाती थी, लेकिन अपने बच्चे को मांस देने पर वह नाराज हो जाती थी। कितनी ही बार हमारे द्वारा दिया हुआ मांस का टुकड़ा उसने बच्चे के मुंह से निकाल कर पहले चबाकर गंध लेकर परखा फिर बच्चे को वापस खाने को दिया था। जंगली जानवर बचपन में उनके शिशु को क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, इस ओर विशेष ध्यान देते हैं।

10 जून 1979 को हमारे पास एक 'मगर' लाया गया। किसी गिरगिट के आकार का नन्हा बच्चा था। लंबाई थी केवल 8 इंच। आज वही आठ फुट लंबी मादा मगर है। तब उसके दांत सुई की तरह नुकीले थे। बार-बार मुंह फाड़कर 'स्स', 'स्स' आवाज करती थी। बचपन में नर और मादा एक जैसे ही दिखते हैं। नर है या मादा, यह जानने के लिये मगर की चार वर्ष से अधिक आयु होनी चाहिए। पहले ही दिन स्याही भरा पेन खेलने को दिया तो इतनी जल्दी उसे चबा डाला और पेन में 10-12 छेद कर दिये। उसकी स्याही बाहर बहने लगी। वह पेट के नीचे हाथ देकर उठाने पर शांत रहती। उसके एक वर्ष से भी अधिक बड़ी होने तक मैं और प्रकाश उसे हर रोज पेट के नीचे हाथ देकर ही उठाते थे। मगर को अच्छा स्पर्श ज्ञान होता होगा। आगे चलकर वह हमारा स्पर्श तुरंत पहचान जाती थी। हमने दो सौ लीटर की टंकी लाकर उसमें पानी भर दिया। उसके बीच में ही पानी की ऊंचाई से भी ऊंचा एक पत्थर रख दिया। टंकी के ऊपर से जाली डालकर हमने मगर को अंदर रख दिया। दिन का अधिक भाग वह उस पत्थर पर आकर धूप का आनंद लेती पड़ी रहती। यदि आवाज या कोई आहट हुई तो वह झट पानी में उतर जाती। पहले ही दिन से वह मेंढक खाने लगी थी। हमारे विद्यालय के बच्चे कुछ मछली भी उसके खाने के लिए डालते, लेकिन वह मेंढक ही अधिक पसंद करती थी। देखते ही देखते वह चार फुट से भी अधिक लंबी हो गई, वजन भी तीन से चार किलो हो गया। हम उसे दोनों हाथों में उठा लेते थे। अन्य किसी के छोटा सा तिनका भी पास ले जाने पर वह तुरंत उसे जबड़े में पकड़ने का प्रयास करती। लेकिन हमारे हाथ उसके पेट में लगने पर उसने कभी गलती से भी हमारी उंगली तक पकड़ने का प्रयास नहीं किया। वह आवाज और स्पर्श से ही हमें पहचानने लगी थी। रात्रि में मेंढक लाने पर, केवल 'आ', 'आ' कहते ही

वह मुंह फाड़कर मेंढक खाने के लिये उतावली हो जाती थी। फिर भी उसने मेंढक पकड़ने के लिए कभी हमारा हाथ नहीं पकड़ा।

जैसे-जैसे मादा मगर बड़ी होती गयी, उसकी खुराक भी बढ़ती चली गयी। हम अभी उसे किसी जानवर का मांस नहीं दे रहे थे। हम रात में मेंढक पकड़ने नियम से जाने लगे। हमें रात में टार्च की सहायता से मेंढक पकड़ने की आदत हो गयी थी। दो-तीन दिन बाद पाच-छः बड़े मेंढक लाना आवश्यक हो गया था। अभी तक केवल सांप ही मेंढकों का शत्रु था। अब मगर भी एक और शत्रु हो गयी। सप्ताह में एकाध सांप भी मिल जाता। जल सर्प मेंढक ही खाता है। बैंडेड क्रेट को खाने के लिये हम जल सर्प ही देते हैं। जल सर्प जहरीले नहीं होते। सन् 76 में एक बैंडेड क्रेट नाग के काटने से मर गया था। तब से हम यह सावधानी रखते हैं। बैंडेड क्रेट सांप दिखने में बहुत सुंदर होता है। लेकिन उसकी प्रसिद्धि उसके जहरीले होने के कारण ही है। एक बार मुंबई के विख्यात सर्प विशेषज्ञ रमेश बोले कि तुम्हारे पास बैंडेड क्रेट हो ही नहीं सकता। यह कहकर वह विवाद करने लगे। वह कुछ सुनने को तैयार नहीं थे। वह सर्प केवल आसाम में ही मिलता है, वह इस बात की रट लगा रहे थे। अंत में बी.एन.एच.एस की प्रदर्शनी के लिये बैंडेड क्रेट भेजने संबंधी आया हुआ तार हमारे पास है—इतना कहने पर वह शांत हुए। वह यहां आते तो स्वयं देखते और फिर प्रश्न ही नहीं करते। सदा एक न एक बैंडेड क्रेट तो हमारे पास होता ही है। हमारे लाहीरी गांव का सहकर्मी मुकुंद दीक्षित हमें बैंडेड क्रैट लाकर देता रहता है। महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की सरहद के प्रदेश में ये जहरीले सांप मिलते हैं।

रात में जब चांद का प्रकाश न हो तब, और वर्षाकाल में मेंढक बड़ी संख्या में और सहजता से मिल जाते थे। वर्षा के बाद गांवों में पानी सूखने पर, तथा नाले का और गर्मी में सभी जगह का जल समाप्त हो जाने पर हम नदी किनारे जाते थे। एक बार जब हम मेंढक पकड़ रहे थे तभी सब से बड़ा बैंडेड क्रेट हमें मिला। रात्रि में हम मेंढक पकड़ने बाहर निकले थे। हमेशा हम नदी की ओर ही जाते थे। उस रात अनायास ही हम दोनों विपरीत दिशा में चलने लगे। आसपास कहीं भी पानी भरा गड्ढा नहीं था, अतः हम टॉर्च बंद करके ही चल रहे थे। सैकड़ों बार इस प्रदेश में पैदल घूमने के कारण एक-एक पेड़ और गड्ढा हमें ज्ञात है। या यूं कहें कि वे हमें पहचानते हैं तो अधिक उपयुक्त होगा। प्रत्येक स्थान पर कुछ न कुछ नवीन मिलता रहा है। सांप, बिच्छू, नाग आदि जीव मिले हैं। कुछ छिपे बैठे जानवर आहट होते ही भाग भी गये हैं।

आगे बढ़ने पर पानी का गड्ढा आते ही प्रकाश ने टॉर्च जला दी। आहट से मेंढक पानी में कूदें, इसके पूर्व ही उनकी आंखों पर रोशनी पड़ते ही वे एकदम रुक जाते हैं। घोड्या नामक जल सर्प रात्रि मे मेंढक पकड़ने बाहर निकलता है। इसी कारण मेंढक जान बचाने के लिए पानी के बाहर आ जाते हैं। बाहर उन्हें खाने के लिये कीड़े भी मिल जाते हैं।

वे जरा सी आहट पाते ही पानी में कूद पड़ते हैं। मेंढक के एक बार पानी में डूबने पर उसे फिर पकड़ पाना बहुत कठिन होता है। उस पानी में सांप होने पर मेंढक दूसरी ओर निकल जाते हैं। ऐसा होने पर हम वहां सांप ही ढूंढ़ते हैं। आज एक भी मेंढक नहीं दिखा। मुझे बहुत अचरज हुआ। इस जाति के वृक्ष के नीचे वाले गड्ढे में ऐसा कभी नहीं होता था। आज मेंढक पकड़ना आवश्यक था। एक सांप परसों ही घर में रखे बैंडेड क्रेट को खाने को दिया था। आज क्रेट अपनी केंचुली में था। अभी सप्ताह भर वह सांप खाने वाला नहीं था। लेकिन मगर को खाने के लिये मेंढक देना आवश्यक था। गत कुछ वर्षों में इन जानवरों से हम कुछ अच्छी बातें सीख चुके थे। उस दिन हमें सांप की नहीं सिर्फ मेंढक की जरूरत थी। बिना कारण किसी दूसरे को मारना या पकड़ना जंगल के कानून में नहीं आता।

हम वैसे ही आगे बढ़ चले। अगले गड्ढे के पास प्रकाश ने टॉर्च जलाई। हम एकदम रुक गये। एक बहुत बड़ा बैंडेड क्रेट सांप उस पानी से बाहर आ रहा था। वह स्थान, जहां हमारे विद्यालय के बच्चे नहाने जाते थे, उस रास्ते पर था। आज हमारे पास लाठी भी नहीं थी। प्रकाश ने टॉर्च बंद की। कई दिनों से हम दोनों ही साथ-साथ जंगल में घूम रहे थे। उसी कारण एक दूसरे की मौन भाषा समझकर चुपचाप एक किनारे को गये। हम दोनों ने कम से कम आवाज करते हुए पेड़ की डाल तोड़ी, हाथ से ही साफ की। फिर हम पानी के गड्ढे के पास आ गये। अब हमें एक दूसरे से बोलने की आवश्यकता नहीं थी। किसने क्या करना है, यह मन ही मन निश्चित था। दोनों के मन में एक ही बात आ रही थी। यह इतने दिनों के साथ के कारण हमें पता थी। अब प्रकाश ने टॉर्च जलाई। गड्ढे से बैंडेड क्रेट अब कहां तक गया होगा, इसका हमें अंदाज था। प्रत्येक सांप की चाल कैसी होती है तथा उसके आकार के अनुसार वह कैसी बदलती है यह गणित अब हमें भली प्रकार से याद हो गया था। टॉर्च से क्रेट की पीठ पर उजाला हुआ। पास ही एक छोटा पेड़ था। यदि वह उसमें चला जाता तो मिलना कठिन था। मैंने झट से अपने हाथ की लकड़ी उसकी पीठ पर दबा दी। अब वह आगे नहीं बढ़ सकता था। किसी से कुछ कहे बिना टॉर्च प्रकाश के दायें हाथ से मेरे बायें हाथ में आ गयी। प्रकाश के दायें हाथ में डंडा आने तक, क्रेट ने आगे नहीं बढ़ पाने के कारण पीछे की ओर आना प्रारंभ किया। हम यही चाहते थे। फौरन प्रकाश ने अपने हाथ की लकड़ी सांप के मुंह पर दबा दी। पिछले चार-पांच मिनट में प्रकाश प्रथम बार ही बोला था। वह भी क्या? केवल 'ओ.के.'। मैंने आगे बढ़कर सांप की पूंछ पर हाथ रखा। प्रकाश ने लकड़ी बायें हाथ में पकड़कर दायें हाथ से क्रेट की गर्दन पकड़ ली। एक साथ ही दोनों ने लकड़ी उठा ली और क्रेट को ऊपर उठाया। हम बहुत चकित हुए। वह छह फुट से भी अधिक लंबा था। मेंढक पकड़ना तो हम भूल ही गये। क्रेट का वजन भी अच्छा था। करीब छह किलो तक होगा। बैंडेड क्रेट के काटने पर उसकी

दवा भारत में नहीं मिलती है। यानी मृत्यु तो निश्चित ही थी। हमारे प्रकल्प से यह स्थान पास ही था। इसीलिए सांप पकड़ा। सांप को पकड़ने के बाद गर्दन के नीचे चार उंगलियां और ऊपर से अंगूठा रखना होता है। फिर वह पलट कर हमें काट नहीं सकता। हो सके तो किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा या फिर अपने ही दूसरे हाथ से पूंछ पकड़ना ठीक रहता है। उससे वह पूंछ से हाथ में लिपट नहीं सकता। दूर से सांप उठाकर लाने में उंगलियां दुखने लगीं और हाथ सुन्न पड़ गये। हमेशा हमारे साथ डिब्बे होने से हम उसमें सांप बंद कर देते थे। आज वैसा कुछ नहीं था। दरवाजे पर ही मैंने प्रकाश से क्रेट अपने हाथों में ले लिया। उसे दवाखाने में ले जाकर हमने उसका वजन किया। वजन सात किलो था। हमारा अंदाज बराबर था। क्रेट को पिंजरे में डाला और किसी को बताये बिना ही हम सो गये। रात में बैंडेड सांप को पकड़ा है, इस बात के लिए उसी रात किसी से डांट खाने की इच्छा नहीं थी। कल तो सबसे डांट मिलने ही वाली थी, लेकिन उसका तीखापन कम हो जायेगा।

पेंटी हिरन, चीतल, नीलगाय ने वर्ष 79 में एक-एक छौने को जन्म दिया था। बच्चों की हमें खास चिंता नहीं थी। उनकी माताएं जो उनके साथ थीं। हम रोज पिंजरे में जाते थे। जंगली जानवरों से दोस्ती करनी ही हो तो उनकी उम्र का पहला महीना ही उत्तम रहता है। इसलिए इसी महीने में हम उनसे खेलते थे। उनकी माताओं ने भी इसका कोई विरोध नहीं किया था। इसी कारण उन बच्चों को हमें पहचानने की आदत भी पड़ जाती है। वे बच्चे पालतू हो जाते हैं, जंगली नहीं बनते हैं।

सोनहा कुत्तों के नर-मादा दोनों ही हमारे पास थे। लेकिन उन्हें बच्चे नहीं हुए थे। उनका समागम तो हम देख रहे थे लेकिन उन्हें बच्चे क्यों नहीं होते, यह हम समझ नहीं पा रहे थे। बीच-बीच में मादा का पेट बड़ा भी दिखता था। लेकिन बच्चे नहीं हुए। एक बार यह विचार भी मन में आया कि कहीं बच्चे होते ही नर उन्हें तुरंत खा तो नहीं जाता? फिर हमने उन पर नजर रखी। नवंबर की एक दोपहर में तुकाराम दौड़कर आया। मादा ने बच्चा दिया था, लेकिन उसे तुरंत ही नर के द्वारा खाते हुए तुकाराम ने देख लिया था। हम भाग कर पिंजरे में गये तो मादा कोने में बैठी थी। हमने झट से नर को पकड़ा और उसे बाहर निकाल कर दूसरी जगह रख दिया। हम वहीं खड़े रहे। जंगली कुतिया तीन-चार बच्चे देती है। थोड़ी देर में एक और पिल्ले को मादा ने जन्म दिया। उसे उसने अपने मुंह से पकड़ लिया था। मुझे लगा कि वह बच्चे को चाट कर साफ करेगी। सभी कुतियां ऐसा ही करती हैं। मैं कुछ समझ पाऊं कि क्या हो रहा है, उससे पहले हो मादा ने बच्चे को चबाकर खा लिया। मुझे बड़ी ग्लानि हुई। जंगली कुत्ता मांसाहारी होता है। लेकिन हमने उन्हें दूध-चावल खिलाकर पाल रखा था। कहीं यह उसी का तो परिणाम नहीं? हमें किसी से सहायता तो मिलती नहीं थी। इसलिये मांस देना हमारी आर्थिक स्थिति से बाहर की बात थी। बचपन में दूध न देते तो वे मर जाते। मुझे कुछ सूझता नहीं था। बाद में तो

जंगली कुत्तों को, बड़ा होने पर हम खुला ही रखने लगे। कुछ दिनों के बाद वे जंगल में जाकर ही रहने लगते थे।

बोटनफुंडी गांव से सन् 1980 के प्रारंभ में सोनहा कुत्ते के दो बच्चे मिले। एकदम छोटे-छोटे थे। मुश्किल से चूहे के आकार के होंगे। उनकी आंखें अभी खुली नहीं थीं, बाल मुलायम और घने थे। छोटी उम्र में उनके शरीर पर चकत्ते या पट्टे नहीं दिखते। आंखें काली थीं। हम उन्हें घर ले आये। आंखों में दवाई डालने की शीशी उन्हें दूध पिलाने के काम में लाए। हम केवल 50 मि.ली. दूध लेते थे। एक-दो बार प्रयास करने के बाद वे ठीक से दूध पीने लगे। मेरी बेटी मोक्षदा भी तीन वर्ष की हो गयी थी। उसे चलते-फिरते खिलौनें बड़े अच्छे लगे। उन्हें दूध पिलाने में वह मेरी सहायता करने लगी। आठ दिन बाद तो वह स्वयं उन्हें दूध पिलाने लगी। नौवें दिन बच्चों ने आंखें खोलीं। लेकिन दसवें दिन उनमें से एक बच्चा मर गया। जो जीवित बच्चा था, वह नर था। मोक्षा की पसंद से उसका नाम 'चिंटू' रखा था। पंद्रह दिनों में वह मुझे, मोक्षा और रेणुका को अलग-अलग पहचानने लगा था। दोपहर में वह मोक्षा की बगल में सोता था। प्रकाश का लड़का अनु और मोक्षा उसे दिनभर लिये घूमते-फिरते थे। वैसे जंगली कुत्ता निशाचर जानवर है। रात में ही वे जंगल में घूमते हैं। यहां बच्चे उसे दिन भर सोने ही नहीं देते थे, इसलिये वह रात में सोता था। दूध का समय होते ही चिंटू आवाज करते हुए कटोरे के पास आ जाता था। महीने भर में वह रोज एक औंस दूध पीने लगा था। दूध पिलाने में विलंब होने पर बरामदे पर चढ़कर मुंह में बोतल लिये घूमता था। दिन भर खेलते रहने से रात्रि में वह सोता था, लेकिन रात में नींद टूटने पर वह मेरे घर में भागता रहता था। मच्छरदानी के आसपास भी घूमता था। कभी अंदर घुस आने पर वह पांव की उंगली में काटता या बदन पर चढ़ जाता। यदि जग जाने पर मैं उसे हाथ से बाहर धकेल देता तो ऐसा मानकर कि मैं उसके साथ खेल रहा हूं, वह फिर मेरे ऊपर चढ़ आता। फिर हम उठकर उसे बाहर छोड़ आते थे। सुबह होने पर वह भीतर आकर दूध मांगता। हमारी मच्छरदानी भी वह गंदी करने लगा। हर दूसरे दिन मच्छरदानी धोनी पड़ती थी, जिससे रेणुका नाराज होने लगी और 'इस मुए को' जंगल में छोड़ आने के लिए कहने लगी। लेकिन वह भी अनिच्छा से, क्योंकि चिंटू उसे भी बड़ा अच्छा लगता था। आखों से जरा ओझल हो जाने पर उसे ढूंढ़ने लगती। मोक्षदा एक दिन उसे दूध देना भूल गयी। चिंटू मुंह में बोतल लिये घूमता रहा। चबा-चबाकर उसने निपल फाड़ दिया। रेणुका ने उसी दिन से उसे बोतल देना ही बंद कर दिया। एक थाली में उसे दूध-रोटी देने लगी। वह उसे भी आराम से खाने लगा। सुबह और शाम 6 बजे दूध-रोटी की थाली तैयार रखनी होती थी। थाली न होने पर जोर-जोर से चिल्लाकर वह सारा घर सिर पर उठा लेता। अब दो महीने बाद वह बिल्ली जितना बड़ा हो गया था। उसकी शरारतें भी बढ़ गयी थीं। हमारे गुस्सा होने या थप्पड़ मारने पर वह हमारी पहुंच

के बाहर ऊंचाई पर जा बैठता। वहां से फिर हम पर गुस्सा करता। थोड़ी देर तक उस ओर ध्यान न देने पर वह खुद ही लाड़ से पुकारने लगता। या फिर नीचे उतरकर मेरे पैरों के बीच घूमने लगता। एक बार उठा लेने पर वह केवल हाथ चाटकर चला जाता था। दिन भर गैस सिलेंडर के पीछे, तकिये के नीचे, अलमारी के पीछे, या ऐसी ही ओट वाली जगह उसकी अपनी तय थी। रेणुका घर में झाडू लगाती, तब वह अपनी जगह से उठकर बाहर आ जाता, जैसे वह उस जगह को भी झाड़ने के लिये सुझाता हो। उसकी बैठने की जगह झाड़ने पर वह फिर वहां जा बैठता। रात्रि में हमें उससे बड़ी तकलीफ होने लगी। फिर हम रात को 9-10 बजे के बाद उसे बाहर ही रखने लगे थे। एक दिन सुबह वह दिखा ही नहीं। हमें बहुत सूना-सुना सा लग रहा था। शाम 6 बजे सवारी आ पहुंची। फिर वह दूध-रोटी खाकर घर में ही खेलने लगा। हमने फिर रात में उसे बाहर छोड़ दिया। वह फिर दूसरे दिन शाम को लौट आया। फिर वही क्रम चलता रहा। संध्या छह बजे से रात्रि नौ बजे तक सैकेंड शो के समय घर में रहकर वह हमें खूब रिझाने लगा। बाद में वह स्वयं ही बाहर रहने लगा। दिन भर के लिए उसे कहीं पेड़ की कोटर मिल गई थी। वह दिन के 21 घंटे जंगल में और बाकी तीन घंटे घर में रहने लगा। वह केवल एक ही समय खाना खाता था। घर से बाहर शायद उसे सहेली मिल गई थी। घर में हम से भी वैसे ही प्यार से मिलता, जैसे पहले मिलता था। बाहर रहने से उसका स्वास्थ्य भी सुधर रहा था। अब उठाने पर वह हाथ में रहना ही नहीं चाहता था। हम भी यही चाहते थे। अब उसके हमेशा के लिए जंगल में बस जाने पर भी हमें कोई एतराज नहीं था।

आगे चलकर इस चिंटू का कार्यक्रम हमारे मिलने वाले मेहमानों को भी पता चला कि वह शाम को ठीक छह बजे वह घर आता है। उसे देखने के लिये दोपहर में आये मेहमान चिंटू के घर आकर खा लेने तक रुकते। दिवाली की छुट्टियों में हम पुणे गये। करीब एक महीने बाद वापस लौटे। पुणे में मुझे बार-बार चिंटू याद आता रहा। वहां से वापस लौटने पर रेणुका ने याद करके शाम को उसके लिये दूध-रोटी बना रखी थी। लेकिन चिंटू आया ही नहीं। पिछले महीने भर में उसे कोई दूध-रोटी देता ही नहीं था। घर के आसपास चक्कर लगाने के बाद वह कहीं चला गया होगा। बाद में वह आया ही नहीं। हम भी यही चाहते थे कि वह जंगल में ही वापस चला जाये क्योंकि यहां उनकी संख्या में वृद्धि नहीं हो रही थी। एक दिन चिंटू मुझे नाले के पास दिखाई दिया। मेरे द्वारा चिंटू नाम से आवाज देने पर वह पेड़ की शाखा पर स्तब्ध खड़ा रहा। वह निश्चित रूप से चिंटू ही था। जंगली सोनहा सहसा दिखता ही नहीं और मनुष्य के सामने तो वह आता ही नहीं है। वह चिंटू ही था और कुदरत की गोद में बहुत खुशहाल था।

मई 80 में पहली बार एक गोह का बच्चा हमें मिला। पहले हमने कई बार आदिवासियों को गोह मारकर ले जाते देखा था। मगर जब हमारे पास लायी गयी तब वह बड़ी हो गई

थी। गोह, मगर, घड़ियाल इन जानवरों में नर-मादा की पहचान एकदम बाहर से नहीं होती। नर-मादा ऊपर से एक जैसे ही दिखते हैं। मगर बड़ी होने लगी और वह नर है या मादा मुझे यह जानने की उत्सुकता बढ़ी। मैंने कई किताबें भी पढ़ीं। लेकिन मादा-नर एक जैसे ही दिखते हैं, बस इतनी ही जानकारी थी। पूछताछ करते-करते हमें चेन्नई में श्री विरेकर का मगर और सांपों का संग्रहालय होने का पता चला। उनसे पत्र-व्यवहार का पता न मिलने पर भी हमने उन्हें एक पत्र लिख दिया। अब मगर, सांपों की अधिक ख्याति थी या श्री विरेकर अधिक प्रसिद्ध थे, यह तो पता नहीं, लेकिन पत्र उन्हें मिला जरूर। श्री विरेकर ने बड़े स्नेह और उत्साह के साथ हमारे पत्र का उत्तर दिया। साथ ही मगर नर है या मादा, इसे कैसे पहचाना जा सकता है, इस बारे में उन्होंने जो अनुसंधान किया था उस निबंध की कापी भी भेजी। उसके अनुसार, मगर के मूत्र और मल विसर्जन हेतु शरीर में अलग स्थान नहीं होते। बस एक ही छिद्र होता है जिससे दोनों कार्य किये जाते हैं। मगर को उलटा कर उस छिद्र में उंगली डालने से यदि मादा हो तो केवल नरम जगह लगेगी और नर हो तो उसका शिश्न हाथ में लगेगा। जरा और दबाने पर नर का शिश्न दो-तीन इंच बाहर निकल आता है। अर्थात् इस पहचान हेतु मगर की आयु कम से कम चार वर्ष की होनी चाहिये। मतलब यह कि हमें अभी दो वर्ष और इंतजार करना पड़ेगा।

हमें सन् 80 में एक नीलगाय, चीतल तथा भेकर (हिरन) का एक एक बच्चा मिला। अब हमारे पास चार भेकर, चार नीलगाय, पांच चीतल, दो भालू, लकड़बग्गा, मोर, गोह, सांप, नाग, ऊदबिलाव, सियार, गिलहरी आदि कई प्रकार के जानवर आ बसे थे। पाले हुए जानवरों की ख्याति नागपुर-बंबई-पुणे जैसे शहरों तक पहुंच चुकी थी। सांसद, विधायक, अधिकारी, वन-विभाग के लोग, कागज कारखाने के अधिकारी इस प्रदेश में जंगल तथा जानवर देखने आने लगे। कुछ नाममात्र का काम निकालकर आल्लापल्ली से 70 कि.मी. दूरी पर हमारे प्रकल्प पहुंच जाते थे। रास्ते में कोई जानवर उन्हें नहीं दिखता। फिर हमारे जानवर ही देखते। सभी इसीलिए आते थे। इन जीवों के संबंध में केवल सुनी सुनाई जानकारी होने के कारण वे बड़े अजीब प्रश्न करते थे। उन्हें गलतफहमियां अधिक थीं। अपनी जानकारी का प्रदर्शन करने के लिये अंटशंट बातें किए बिना उनसे रहा नहीं जाता था। कभी-कभी तो उनकी बातें सुनकर हमें ऐसा आभास होता कि जानवर भी हंस रहे हैं। राजू बंदर तो किसी की टोपी उछालकर, किसी को थप्पड़ लगाकर अपना अस्तित्व जता देता था। विशेषकर वनविभाग के अधिकारियों तक को वन्य जानवरों के संबंध में कुछ भी जानकारी नहीं होती—यह जानकर हमें बड़ा दुख होता था, क्योंकि इन्हीं को तो इन जानवरों की रक्षा का भार सौंपा जाता है। जिन्हें उनकी जानकारी है और जो केवल स्नेह से, प्यार से सब कार्य करते हैं, उन्हें वन्य जंतुओं को पालने का कोई अधिकार नहीं है। यह अधिकारी वर्ग उसी पर मुकदमें दायर करने की बात करता है।

सन् 75 में हमें बार्किंग डियर अर्थात् काकड़ जाति का हिरन मिला। कुछ विचार करने और अपनी जानकारी के आधार पर हमने तय किया कि वह काकड़ ही है। उसी वर्ष दो-चार महीने बाद एक विभागीय वन अधिकारी हमारे यहां पधारे। उनसे हिरन की जाति के बारे में निश्चित रूप से जानने की इच्छा से हमने उन्हें पूछा कि वे जरा देखकर हमें बतायें कि वह हिरन किस जाति का है तो वे एकदम गंभीर हो गये। हामी भरकर भी वे वहीं बैठे रहे। उन्होंने हमसे कई प्रश्न किये कि उसका रंग कैसा है, पांव कैसे हैं, आदि। हमें लगा कि इन्हें काफी जानकारी है। हमने कहा, "चलिये, प्रत्यक्ष देख लीजिये।" लेकिन वे उठना नहीं चाहते थे। उन्होंने फिर पूछा, "उसके सींग हैं? कभी किसी को उसने काटा है?" तब हम उनका ज्ञान जान गये। हम बोले, "साहब, वह हिरन का बच्चा है। छौना। कभी काटता नहीं। उसे अभी सींग फूटे नहीं हैं। आप पिंजरे के पास चलिए न? खुद ही देख लीजिए।" हमारे द्वारा पिंजरे का द्वार खोलकर 'बिंटू' की आवाज देने पर वह बाहर आ गया। वे साहब उसका निरीक्षण करने लगे। हम तो उसके मुंह में उंगलियां देकर उसे चूसने दे रहे हैं, यह देखकर साहब ने उसे दूर से ही जरा स्पर्श किया जैसे पुराने जमाने में राजा-महाराजा किसी नजराने को बस हाथ लगाकर अपनी मंजूरी देते थे। वे बड़े विचारमग्न थे। प्रथम उन्होंने पूंछ की तरफ देखकर कहा, "मुझे लगता है, यह डियर ही होगा।" मैं समझ नहीं पा रहा था। मैंने प्रकाश की ओर देखा, वह हंस दिया। हमने बिंटू को वापस पिंजरे में भेज दिया। साहब की बात बड़ी अजीब थी। तो क्या हम इतने दिनों तक उसे बकरी समझकर पाल रहे थे? एक तीसमारखां की तरह साहब हमें समझा रहे थे। क्या खूब !

हिरन की इस घटना से ही एक किस्सा मैं और सुनाता हूं। सन् 83 में वन विभाग के दूसरे एक उप-विभागीय वन अधिकारी जो इंडियन फारेस्ट सर्विस के थे, हमें यह बताने आये थे कि हमारे द्वारा पाले गये जानवरों को पास रखना गैर-कानूनी है, वन-विभाग उन्हें जब्त करने वाला है। जानवरों की जानकारी लेने और सूची बनाने के लिये वे आये थे। हमें हंसी इस बात पर आ रही थी कि वह आई.एफ.एस. श्रेणी के अधिकारी हैं। यह बात हम पर वजन डालने के लिए उन्होंने बार-बार दोहराई थी। उन्होंने सूची बनाने के लिये कागज-पेन निकाला। हमने कहा, "साहब, आप स्वयं जानवरों को देखकर ही सूची बनाएं तो अच्छा रहे जिससे गलती की संभावना न रहे। वे वहां से आगे चले। पहले तो हिरनों के पिंजरे के पास गये। हम सदा की तरह उन्हें जानकारी दे रहे थे। यहां पांच प्रकार के हिरन हैं। साहब ने लिखा, "डियर"। उसे देखकर मैं और प्रकाश हंस दिये। हमारी हंसी देख साहब नाराज हुए। शासकीय कार्य की दिल्लगी और वह भी एक आई.एफ.एस. अधिकारी के सामने? वे कुछ कहें इसके पूर्व ही प्रकाश ने कहा, "साहब, यहां डियर शब्द के स्पेलिंग डीईईआर होगा, डीईएआर नहीं।" अब यह बात अलग है कि हमें वे डीईएआर ही लगते हैं। साहब ने कोई जवाब नहीं दिया, चुप रहे। हमें ही सूची बनाकर तुरंत कार्यालय

को भेज देने का आदेश देकर वे वहां से चल दिये थे।

एक बार सन् 1980 में वन-विभाग के कुछ बड़े-बड़े अधिकारी हमारे यहां पधारे। साथ में हमारे रेंजर साहब भी थे। यह रेंजर साहब कई बार यहां पधार चुके थे। वह अपने वरिष्ठ अधिकारियों को खुश रखने के इरादे से उन्हें पहले ही बहुत कुछ बता चुके थे। उस समय प्रकाश यहां नहीं था इसलिये उन्हें पिंजरों की ओर मैं साथ ले चला। वे केवल खास जानवर देखने आये थे। वे हिरन के पिंजरे के पास गये। हमारे पास जाते ही पेंटी मुझे देख कान खड़े कर दौड़ते हुए जाली के पास आ गयी। मैं कुछ कहूं इसके पूर्व ही रेंजर साहब ने बड़े उत्साह से अपने वरिष्ठों को बताना प्रारंभ किया और नीलगाय की ओर उंगली का संकेत कर वे बोले, "साहब, यह है भेकर यानी चिंकारा। इसे कुछ लोग बार्किंग डियर भी कहते हैं।" अब चिंकारा हमारे पास था ही नहीं और काकड़ हिरन दूसरे पिंजरे में था। उनका वह वक्तव्य सुनकर वरिष्ठ अधिकारी बड़े कौतुक से रेंजर साहब को देख रहे थे। मानो वे सोच रहे हो कि यह रेंजर कितनी जानकारी रखता है। इस तरह की ओर अधिक जानकारी सुनना मेरे लिये संभव नहीं था इसलिये मैं वहां से खिसक गया।

बाद में हमें वन विभाग से कुछ अच्छे अधिकारी भी मिले। उन्होंने सब प्रकार से हमारी सहायता की। वे हमसे समय-समय पर जानकारी भी लेते रहे थे। उन्होंने हमारा मार्गदर्शन भी किया। कुछ इन्हें गिने-चुने अधिकारी वन्य जीवों से प्यार भी करते हैं। हम जो कुछ कर रहे हैं उन बातों में सार है, हमें सहायता मिलनी चाहिये, इस विचार के भी अधिकारी आये। कुछ अधिकारियों ने प्रत्यक्ष स्वयं आर्थिक सहायता दी है। हम उनके कृतज्ञ हैं। हम न उनके उपकारों के ऋण को कभी उतार सकते हैं और न परस्पर स्नेह के कारण ऐसी कुछ इच्छा ही रखते हैं।

सच्चे अर्थों में जंगली जानवर हमें सन् 80 में मिला था। हमें पता था कि इस तरफ के जंगल में बाघ और तेंदुए होते हैं। किंतु अभी तक उनका एक भी शावक नहीं मिला था। हमें यह विश्वास था कि कभी न कभी मिलेगा अवश्य। हम तेंदुए के शिकार होने की खबर जरूर सुनते थे। अधिकतर तेंदुओं के बच्चे ही मारे जा रहे थे। यहां बाघ अधिक संख्या में नहीं हैं। वर्षा के अंत में हर वर्ष एक-दो बाघ बस्तर की ओर से इन्द्रावती पार कर इस ओर आ जाते थे। उनके पैरों के निशान कभी-कभी नदी किनारे दिखाई देते थे। तेंदुओं की उपस्थिति तो सदा ही मिल जाती। कहीं बकरी, कहीं गाय मारने की खबरें सुनने में आती थीं।

हमारे पास जो पहला तेंदुआ आया, वह यहां से डेढ़ सौ मील दूर स्थित चंद्रपुर के जंगल से आया था। हमें संदेशा मिला कि हमारे सोमनाथ प्रकल्प के स्थान पर दो चीते के बच्चे मिले हैं। प्रकाश जाकर 7 फरवरी 80 को तेंदुए के यहो दो बच्चे ले आया। दोनों

काफी बड़े थे। वे करीब तीन-साढ़े तीन महीने के होंगे। पिछले 15 दिनों से वे सोमनाथ में ही थे। इनमें से एक नर था जो शरीर से कुछ बड़े आकार का था। हमने उसका नाम 'बेन' रखा। दूसरी मादा थी उसे 'लूसी' कहने लगे। सोमनाथ प्रकल्प पर रहने वाला 'नाना' भी उनके साथ आया था जो पिछले 15 दिनों से इन तेंदुओं के बच्चों की देखभाल कर रहा था। वह उन्हें दूध भी पिलाता था। उन्हें एक छोटे पिंजरे में रखकर लाया गया था। दोनों एक कोने में दुबक कर बैठे थे। उनके पास जाने पर वे नाखून निकालकर झपटने को आते थे। प्रकाश के घर के बरामदे में पिंजरा रखा था। नाना ने हमें बताया कि अब दूध देने का समय हो गया है। हम दूध लाये। हमेशा की तरह दूध की बोतल के स्थान पर 650 मि.ली. की बड़ी बीयर की बोतल थी। मेरे पिंजरा खोलने पर दोनों दौड़ते चले आये। वे नाना के ऊपर उछलने लगे। नाखून न लगें, इसलिए नाना उछल-उछल कर स्वयं को बचा रहा था। मैंने आगे बढ़कर लूसी को पकड़ा। नाना ने नीचे झुककर बेन के मुंह में बोतल लगा दी। बेन बोतल का निप्पल चबा रहा था। कुछ दूध बाहर गिर रहा था तथा कुछ बेन के पेट में जा रहा था। इतने में बहुत अधिक दूध बाहर बहने लगा। नाना ने बोतल सीधी कर मुझसे नया निप्पल मांगा। अब मेरी समझ में आया कि नाना अपने साथ 50-60 निप्पल क्यों लाया था। पिछले पांच साल में हमने कई जानवर पाल कर बड़े किये थे। लेकिन हमें कभी 6-7 निप्पल से अधिक नहीं लगे। थोड़ी देर बाद दूसरी बोतल भर दी गयी। मैंने बेन को पिंजरे में बंद कर दिया। लूसी के साथ फिर वही प्रयोग हुआ जिससे एक निप्पल और बरबाद हुआ। हमारे यहां के सभी जानवर यहां तक कि भालू भी सभी मां के स्तन से दूध पीने की तरह निप्पल चूसकर दूध पीते थे। बेन और लूसी निप्पल चबाते हुए दूध पीते थे। रबड़ के निप्पल उनके दांतों के चबाने पर कैसे टिक पाते। क्या यह क्रूर जानवर दूध पीते समय अपनी मां के स्तनों को चबाकर दूध पीता होगा। फिर तो मां के स्तन लहूलुहान हो जाते होंगे। हम दूध पीते समय उनके दांत और नाखूनों का यह खेल देखते रहे। हमारी यह धारणा लोगों की बातों के अनुसार बनने लगी कि तेंदुआ एकदम जंगली और क्रूर जानवर है। अब हमारे सामने एक नयी चुनौती थी। आगे चलकर हमारा यह भ्रम दूसरे तेंदुए नेगल ने गलत साबित कर दिया। लूसी का दूध पूरा होने पर हमने उसे भी पिंजरे में बंद किया। दोनों एक दूसरे का बदन चाट छलका हुआ दूध साफ करते रहते थे।

दूसरे दिन नाना के सामने हमने उन्हें दूध पिलाया। प्रकाश ने खड़े होकर बोतल को ऊंचाई से पकड़ रखा। फिर दोनों को एक साथ ही बाहर निकाला गया। बोतल तक पहुंचने की कोशिश में दोनों अपने पिछले पैरों पर खड़े हो गये। अनजाने में दोनों ने एक दूसरे को पकड़ लिया। उन्हीं के नाखून एक दूसरे को नोंच रहे थे। प्रकाश ने बारी-बारी से दोनों को दूध पिलाया। मैं उनके शरीर पर हाथ फेरते हुए वहीं खड़ा रहा। आज हमने निप्पल

का छेद भी जरा बड़ा कर दिया था जिससे दूध अधिक मात्रा में बाहर आ रहा था। तभी आज दो निप्पल के स्थान पर एक से ही काम चल गया। उन्हें दिन में तीन बार दूध देना होता था। दूसरे दिन नाना वापस चला गया था।

सुबह जल्दी उठकर हमने पहले लूसी और बेन को पिंजरे से बाहर निकालकर उन्हें खेल खिलाने का प्रयास किया। जैसे-जैसे हम आगे भागते, वे हमारा पीछा करते। हमें कम से कम नाखून लगें यही हमारा प्रयास था। हमने उन्हें फिर पिंजरे में बंद कर दिया। अब गिनती की कि निप्पल कितनी शेष थीं। केवल 41 निप्पल बची थीं जो रोज दो के हिसाब से केवल 20 दिनों तक चलतीं। इसकी हमें चिंता थी क्योंकि केवल निप्पल लाने के लिये हमें कम से कम 150 कि. मी. दूर जाना होगा। इसलिये हमने पुरानी बोतल निकाली। लोहे की छोटी नली लेकर उस पर मोटे रबड़ की नली लगा दी। भालू ने कभी निप्पल नहीं चबाया था। दूध कम होने या खत्म होने पर वह हमारी उंगली चूसता रहता, जब तक कि दूसरी बोतल न बनती। यहां तो सवाल था कि इन शावकों के मुंह में उंगली दे नहीं सकते थे और यदि देते तो रोज ही एक उंगली कम हो जाती। एकलव्य ने विद्या प्राप्त कर लेने पर गुरुदक्षिणा के रूप में अपना अंगूठा दे दिया था। लेकिन शावक को दूध पिलाने की विद्या सीखने के लिये उंगली की बलि देना असंभव था। नली के निप्पल से लूसी व बेन ठीक ढंग से दूध पीने लगे। दूध भी अच्छी मात्रा में आ रहा था। हमने ठोंककर नली का मुंह चपटा कर दिया था। तीसरी बार दूध पिलाते समय बहुत कम दूध बाहर गिरा। इतने दिनों तक दूध गिरने से इन बच्चों के ठुड्डी के नीचे के बाल झड़ गये थे। दूध पिलाने के बाद अब हम उस जगह को गीले कपड़े से साफ करने लगे। वहां क्रीम लगा देते थे। पहले तो हाथ लगाने पर वे चिढ़ते और नाखून से नोंचते थे। दूध पिलाते समय नाना उन्हें हाथ से थप्पड़ मारता था। उसी डर से स्नेह से हाथ आगे करने पर भी वे नाखून निकालकर पंजा मारते थे। छटे दिन वे मेरा और प्रकाश का स्पर्श समझ गये थे। हमारे आवाज देने पर दोनों खुशी से दौड़ते हुए चले आते। दसवें दिन से खेलते समय उनका नाखून निकालना कम हुआ। वे प्यार से आपस में बदन से बदन रगड़ने लगे। उनकी क्रीड़ा हर रोज हमारा आनंद और उत्साह बढ़ाती रही। छिपकर रहना, घात लगाकर बैठना, हमारा ध्यान न होने पर एकदम हम पर झपटने जैसे खेल वे खेलने लगे। प्रकाश का लड़का अनु प्रारंभ से ही इन शावकों के साथ बड़े उत्साह से खेलता। वह इन बच्चों से आंख मिचौली खेलने लगा। मोक्षदा के मन में भी पहले से अब डर कम हुआ। वह भी साथ देने लगी। अब लूसी, बेन, प्रकाश, मैं, अनु और मोक्षदा, इन छह प्राणियों की नयी दुनिया बन गयी। अन्य सभी को ये तेंदुए जान का खतरा लग रहे थे। वे सब दूर से ही उन्हें देखते थे।

पंद्रहवें दिन से हम उन्हें बाहर घुमाने ले जाने लगे। बेन, लूसी अधिक नहीं चलते थे। छोटे पेड़ों की आड़ में जा छिपते और एक दूसरे को ढूंढ़ने पर एकदम लपकते। इन

सबकी यह मस्ती चलती रहती। सड़क पर कोई नया व्यक्ति दिखने पर ये दोनों झट से जमीन से सटकर कान पीछे कर बैठ जाते। हम ध्यान रखते और सावधान रहते थे। तेंदुए पाल तो लिये थे, लेकिन उनके कारण कोई दुर्घटना होने पर बदनामी हमारी होगी और उसकी सजा बेन, लूसी को भुगतनी पड़ेगी। उन्हें खुले घूमने की स्वतंत्रता भी खोनी पड़ती। उन्हें हमारी बदनामी की इतनी चिंता नहीं थी। इतने दिनों के जंगली जानवरों का साथ स्वभाव बन चुका था। यह जानवर हम से प्यार करते समय और किसी बात का विचार नहीं करते थे। हम से वे केवल प्यार के सिवा किसी अन्य बात की उम्मीद भी नहीं रखते थे। प्यार के बदले में दूसरी आकांक्षाएं रखने वाले मनुष्य के मुंह से हम इन निस्वार्थ प्रेम करने वाले जानवरों की बदनामी सहन नहीं कर सकते थे। हमारी बदनामी होने पर हमें कुछ नहीं लगता क्योंकि मनुष्य से प्यार की उम्मीद हमारे अनुभव से नष्ट हो चुकी थी। आगे चलकर, तेंदुओं से कुछ भी कष्ट न होने पर भी, कुछ लोग, "ये तेंदुए बड़े होने पर बदल जायेंगे, तुम पर ही हमला कर देंगे। इनका यों भरोसा नहीं करना चाहिये। आखिर वे अपनी जात दिखा ही देगें" आदि सूचनाएं देकर मनुष्यों ने अपनी जात अवश्य बता दी थी। हमें बड़ा क्रोध आता था। "तुम्हें तेंदुओं का क्या अनुभव है?" ऐसा प्रश्न करने की भी हमारी इच्छा होती थी। अब तो हमारा स्वभाव भी बदलता जा रहा था। जब जंगली जानवर बिना बात के किसी को नहीं छेड़ते तो फिर हम ही क्यों किसी के बारे में व्यर्थ ही सोचें या उन्हें नाराज करें। अपनी धुन में रहकर उन लोगों की ओर ध्यान ही नहीं देने की कला हम सीख गये थे।

एक महीने में ही उनके स्वभाव में बहुत सुधार आ गया था। दूध पीते समय निप्पल चबाना बंद होने से वे अधिक मात्रा में दूध पीने लगे थे। हमारे द्वारा बनाया हुआ निप्पल अभी चल रहा था। रोज रात में हम उनके लिये दूध-चावल-रोटी-अंडा मिलाकर पिंजरे में रखने लगे। उन्होंने पहले चार दिन तो उसे छुआ तक नहीं। बाद में थोड़ा-थोड़ा खाकर वे सुबह तक पूरी थाली साफ करने लगे। हम बेन और लूसी को घुमाने ले जाते थे। फिर हमें लगा कि इन तेंदुओं के आने पर हम लोगों का रानी की ओर ध्यान कम हो गया है। हम एक दिन साथ में रानी को भी ले गये। अब रानी शरीर से काफी बड़ी हो गयी थी। वह हमारे साथ रोज ही घूमने जाया करती थी। वह सदा की तरह आराम से चल रही थी। लेकिन बेन, लूसी के साथ उसकी खेलने की इच्छा हो रही थी। लेकिन रानी के रंग और आकार से दोनों डर गये थे। वे हमारे आसपास ही चलने लगे। कुछ देर बाद उन्हें देखा। प्रकाश के इतने पास कोई चले, यह बात रानी कभी सह नहीं पाती थी। रानी चीख मारते हुए दौड़ पड़ी। लूसी और बेन पेड़ की आड़ में छिप गये। तब रानी प्रकाश और मेरे बीच में चलने लगी। गुस्से से वह प्रकाश को धक्का देने लगी, मानो कह रही हो, तुम्हें कुछ शर्म है या नहीं। फिर उसने अपने एक पैर से मेरे पैर को खींचकर मुझे गिराने का प्रयास

किया। हमारे द्वारा उसे थोड़ा थपथपाने पर वह सीधी चलने लगी। अब बेन पीछे से दुबक कर आया। जिस तरह शिकार पर धावा बोलते हैं, उसी तरह पीछे से पीठ पर कूदकर रानी की गर्दन पकड़ने का उसका इरादा होगा। रानी ने जोर से गर्दन झटकी। झटका इतना जबरदस्त था कि बेन एक ओर जा गिरा। झट से वह पेड़ के पीछे छिप गया। इतने में अपने साथी का हाल देखकर लूसी को ताव आया। वह पीछे से छलांग लगाने ही वाली थी कि रानी पीछे की ओर मुड़ गयी और अपने दो पैरों पर खड़ी होकर उसने इतनी जोर से आवाज की कि क्षण भर के लिये मैं भी चौंक गया। लूसी ने पैंतरा बदला। दूसरीं ओर भागकर वह भी आड़ में छिप गयी। रानी का यह काम केवल उन्हें डराने के लिए ही था। हमारे लिये आगे जाना संभव नहीं था। प्रकाश रानी के पास ही रुका रहा। मैं वापस लौटकर बेन, लूसी को बुलाने लगा। सौ एक फुट तक आगे आने पर वे दुबारा रानी पर हमला करने की तैयारी करने लगे। अपनी पराजय इतनी जल्दी स्वीकार करने को तेंदुए के शावक तैयार नहीं थे। मैंने रानी को बुलाया। रानी पास आ गयी। प्रकाश ने बेन और लूसी को अपने हाथों से पकड़ रखा था। रानी वहीं रुक गयी। उसके अलावा हमारा अन्य किसी के पास रहना रानी को पसंद नहीं था। तभी प्रकाश को एक तरकीब सूझी। वह वहां से भागने लगा। उसके पीछे-पीछे रानी भागने लगी। स्वाभाविक ही रानी के पास पीछे लूसी, बेन और उनके पीछे मैं। लूसी, बेन फुर्तीले थे। यदि वे रानी के पास पहुंचते थे तो रानी पलटकर दो पैरों पर खड़ी हो जाती और चिल्लाती। पीछे से मैं 'लूसी-बेन, लूसी-बेन' चिल्ला कर उन्हें रोकने का प्रयास करता। बेन और लूसी के छिप जाने पर रानी प्रकाश की ओर दौड़कर दोनों के बीच का अंतर कम करने का प्रयास करती। तब फिर मैं, लूसी और बेन फिर उसके पीछे भागते। दूर सड़क के किनारे पेड़ों की ओट में छिपे लोगों की ओर मेरा ध्यान गया। भागते-भागते मैं थक गया था। इस हालत में भी मुझे हंसी आ गयी। दूर जंगल के पेड़ों की आड़ में छिपे, पीछे से हमारे ही कुछ लोग, विद्यालय के बच्चे, तथा आदिवासीगण सभी हमारी यह अजीब रेस देख रहे थे। लेकिन वे हंसने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे। अंत में हम सभी इस दौड़ के बाद घर पहुंच गये।

दूसरे दिन रानी को साथ न लेकर हमने नेली कुतिया को साथ लिया। नेली अब पांच वर्ष की हो गई थी। वह जर्मनशेफर्ड जाति की होने से शरीर से ऊंची और मजबूत थी। हम सब सड़क पर आकर साथ चलने लगे। पहले तो सब ठीक था। वैसे भी शांत रहना, बेन का स्वभाव ही नहीं था। धीरे-धीरे उसका नटखट स्वभाव प्रकट होने लगा। कल के अनुभव से वह आज जरा सावधान अवश्य था। वह दौड़कर नेली के पास जाता था। नेली चतुर थी। जैसे ही वह आहट लगने पर पीछे देखती हो बेन चुपचाप एक किनारे हो जाता था। गत तीन वर्षों से रानी हमारे साथ घूमने आती थी। नेली और रानी की आपसी लड़ाई होती ही रहती, लेकिन उसमें झगड़ा कम और खेल अधिक होता था। फिर रानी तो उसकी

बचपन की सहेली थी। इस नये शावकों का खेलना शायद नेली को पसंद नहीं आया होगा। वह उनकी ओर ध्यान दिये वगैर चल रही थी। थोड़ी देर बाद यह देखकर कि नेली उनकी ओर ध्यान नहीं दे रही है लूसी और बेन को गुस्सा आने लगा। बेन आगे जाकर एक पेड़ के पीछे छिप गया। नेली चोर पकड़ने वाली जाति की थी इसलिये उसके लिए इन शावकों को ढूंढ़ना आसान था। यह पगला उसकी आंखों के सामने ही छिप रहा था। नेली के पास आते ही बेन ने उस पर छलांग लगा दी। नेली ताक में थी ही। फौरन एक ओर हट कर उसने बेन को विस्मित कर दिया और बेन जमीन पर गिर गया। बेन क्रोधित हो उठा। उसे क्रोधित देखकर लूसी भी आगे आने लगी। अब नेली अधिक न सह सकी। वह जोर से भौंकते हुए बेन की ओर झपटी। हमें तब चह पता चला कि तेंदुआ किसी भी जोरदार आवाज से घबराता है। बेन नेली का भौंकना सुनते ही पीठ दिखाकर भाग खड़ा हुआ। लूसी पास में ही ऐसी दुबक कर बैठ गयी कि वह बड़ी देर तक हमें दिखी ही नहीं। कल की बजाय आज बात आसान हो गयी थी। लूसी-बेन को किसी का सहारा चाहिये था। वे दोनों ही हमारे पास आ गये। अपने कान नीचे कर वे नेली की ओर देखते रहे। नेली को केवल "नेली नो" कहते ही वह वापस लौट गयी। हम भी थोड़ी देर तक वहीं बैठकर फिर लौट पड़े। बाद में तो हम सप्ताह में दो बार रानी और नेली को तथा बाकी दिन बेन और लूसी को साथ लेकर घूमने जाने लगे। बेन, लूसी की मस्ती बढ़ रही थी। बढ़ती उम्र के साथ उनकी ताकत बढ़ने से कभी-कभी उनका साथ भी कष्टदायक हो जाता था। कपड़े फाड़ना, घर में गद्दियां फाड़ना आदि कार्य प्रारंभ हो चुके थे। मगर हम उन्हें कभी मारते नहीं थे। उन्हें कोई डर ही नहीं था। फिर एक दिन बांस की एक छड़ी से एक-एक प्रहार ने उन्हें सीधा कर दिया। समय मारते दो चार बार ''नो, नो'' भी कहा, तब से फिर उन्हें छड़ी का डर लगने लगा था। केवल छड़ी हाथ में लेकर 'नो' कहते ही वे शरारत करने से रुक जाते थे।

अप्रैल महीने में लूसी, बेन अच्छे बड़े दिखने लगे थे। एक दिन सुबह हमारे ध्यान में आया कि लूसी की आंखें कुछ धंस गयी हैं। एक आंख से पानी बह रहा था। सुबह उसने दूध भी नहीं पिया था। दोपहर में तो वह पैर भी झटकने लगी थी। प्रकाश डाक्टर तो है, लेकिन मनुष्यों का। हम कुछ समझ नहीं पा रहे थे। मैंने लाइफ सेविंग इंजेक्शन दिये, सारे वक्त उसके पास बैठे रहे। आंख में दवाई डाली, फिर से झटके न आने के लिये नींद का इंजेक्शन भी दिया। लूसी दो घंटे चुपचाप पड़ी रही। फिर उठी और आलस त्यागकर खेलने लगी जैसे कुछ हुआ ही न हो। हम विचार करने लगे। कुछ डाक्टर मित्रों को पत्र भी लिखे। उस दिन उसे घुमाने नहीं ले गये। रात्रि में उसने ठीक से दूध पिया।

दूसरे दिन लूसी बिलकुल ठीक थी। संध्या के समय हम सब बाहर निकले। प्रकल्प की दूसरी ओर जाने का विचार किया। कभी-कभी उस ओर घूमने जाते थे। इस ओर के

अंतिम छोर पर हमारी गाय-भैसों का कोठा था। लेकिन हम गाय-भैंस बाहर ही बांधते थे। वहां से जाते समय बेन-लूसी गाय-भैंसों पर झपटने की घात लगाते। गाय-भैंसें उनसे पहले ही सावधान रहती थीं। गर्दन नीचे डालकर और सींग आगे कर गाय-भैंसें अपने बचाव का पैंतरा बना लेती थीं। उसका आकार देखकर ही बेन-लूसी अपनी हार मानकर सीधे चलने लगते थे।

आज भी दोनों ने पशुओं पर हमला करने का पैंतरा लिया। भैंसों और गायों ने भी अपना पैंतरा लेकर उसका उत्तर दिया। तब तो बेन आगे चलने लगा। मगर लूसी वहीं बैठी रही। वह अपनी पूंछ का केवल छोर हिलाती रही। मैं सावधान हो गया। लूसी कल ही बीमार थी। यदि आज वह मूर्खता से भैंस पर हमला करती तो उसके पैंरो तले रौंद दी जाती। मैं नीचे झुका। लेकिन उसे पकड़ने के लिये लूसी ने समय दिया ही नहीं। वह दौड़ पड़ी। लेकिन गाय-भैसों की ओर नहीं। हमारे ही कुछ लोगों ने अपनी निजी बकरियां पाल रखी थीं। सावजी की बकरी का तीन-चार महीने का मेमना एक ओर खड़ा था। लेकिन हमारा किसी का ध्यान उधर गया ही नहीं था। मेरे 'नो नो' चिल्लाकर दौड़ पड़ने तक तो लूसी ने उसकी गर्दन पकड़कर उसे पटक दिया था। जान बचाने के लिये मेमना जोर से मिमियाया तो लूसी उसे छोड़ एकदम भाग खड़ी हुई। मेमने की गर्दन में लूसी के चारों दांत गड़ चुके थे। हम मेमने के पालक सावजी जी को मेमने के साथ ही लेकर दवाखाने में गये। मेमने की गर्दन में जख्मों पर टांके लगाकर उस पर पट्टी बांध दी गयी। बड़ी मुश्किल से वह बच पाया था। चार-पांच दिनों बाद वह घूमने-फिरने लगा। सावजी ने फिर उस मेमने का नाम 'बहादुर' रखा। ''मेरा यह मेमना बहादुर शेर से लड़ कर उसे भगा देता है,'' सावजी सभी से इस तरह कहता फिरता था। सालभर बाद आंध्रप्रदेश से बकरे खरीदनेवाले आ गये। तेलुगुभाषी लोग सावजी के साथ मेरे पास आये। 'बहादुर' उनके साथ नहीं था। "क्या यह बकरा शेर से लड़ा था?" उन्होंने पूछा। पीछे खड़े होकर सावजी गर्व से हंस रहा था। मुझे 'हां' कहना ही पड़ा। कुछ साधारण सी घटनाएं कभी असाधारण ढंग से घटित हो जाती हैं। लेकिन सहज रूप कोई यह विचार नहीं करता। वह तो चमत्कार से प्रभावित हो जाता है। उसके पीछे का कारण भी कोई नहीं ढूंढ़ता। इसीलिये 100 रु. दाम का वह बकरा सावजी को 250 रु. दे गया।

एक बकरे ने "लूसी-बेन को हराया" यह किस्सा बच्चों को बहुत पसंद आया। अनु और मोक्षा साथ आने को कहने लगे। ऐसा उन्हें लग रहा था कि मानो शेर की ताक में बकरा दुबक कर बैठा होगा। घूमने के लिये हम रानी और नेली को साथ नहीं ले जा रहे थे। अब मोक्षा, अनु को साथ ले जाने लगे। उन दोनों के हाथों में हम छोटी छड़ी दे रखते थे। लूसी, बेन, हमेशा छड़ी से घबराते थे। मोक्षा, अनु रास्ते में कीड़े, मेंढक पकड़ते, जंगली फल खाते हुए चलते और अपनी ही धुन में मस्त रहते और बेन, लूसी अपने में मगन

रहते। कभी-कभी वे मोक्षा अनु से लुका छिपी खेलते। अनु, मोक्षा हम से डरते नहीं हैं और उनके हाथों में छड़ी भी है, यह देखकर लूसी और बेन सीधी तरह से चलते। प्रकाश और मैं उन चारों पर नजर रखते हुए चौकन्ने होकर गप्पें मारते चलते रहते थे। इस तरह एक महीना सब ठीक से चलता रहा।

2 मई की सुबह हम ऊदबिलावों को घुमाने ले गये। उन दिनों तालाब में पानी नहीं था, इसलिये उन्हें दूर के नाले तक ले जाना पड़ रहा था। उनके लिये पानी बहुत आवश्यक होने के कारण उनके पिंजरे में भी पानी से भरा ड्रम रखा रहता था। शाम को फिर सदा की तरह हम छहों घूमने निकले। रोज की तरह छोटा नाला पार कर हम अगले नाले के पास जा बैठे थे। पानी सूख चुका था। सिर्फ बालू ही बालू था। अनु, मोक्षा ने रेत का किला बनाना प्रारंभ किया। उनसे पांच फुट दूर पर हम बैठ गये। प्रकाश की गोद में बेन पसर गया। मैं पांव लंबे कर बैठा था। लूसी मेरी गोद में बैठकर मेरे पैरों के अंगूठे पकड़ने का खेल खेलने लगी। हमारी बातें चल रही थीं। दूर से कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनाई दी। सहसा हमने उस दिशा की ओर देखा। लूसी-बेन ने कान उठाकर पैंतरा लिया। फिर से भौंकने की आवाज आते ही वे दोनों एकदम भागे। कुत्ते कहीं दिखाई नहीं दे रहे थे। हम फिर से बातें करने लगे। हम वापस जाने को तैयारे हो गये। लूसी-बेन के पीछे जाना आवश्यक नहीं था। वे हमारे बिना अधिक दूर नहीं जाते थे। उन्हें लौटते देखकर हम मोक्षा-अनु से कहने लगे "चलो, किला तोड़ दो, वापस घर चलें।" दोनों चलने को तैयार हुए। वे पैरों से किला तोड़ने लगे तथा शोर मचाते हुए हाथ हिलाकर नाचने लगे। यह क्या हुआ, यह ध्यान में आने के पूर्व ही लूसी एक छलांग लगाकर मोक्षा की पीठ पर झपटी और उसे नीचे गिरा दिया। वह उसकी गर्दन पकड़ने ही जा रही थी कि मैं और प्रकाश जोर से चिल्ला कर दौड़ पड़े। लूसी झट दूर हो गयी। मोक्षा रेत झाड़कर उठ खड़ी हुई। अच्छा हुआ कि उसकी गर्दन में दांत नहीं लगा था। लूसी को दो-चार बेंत लगाए। वह बहुत अपराधी अनुभव कर रही थी। शायद बच्चों के शौरगुल के कारण लूसी ने ऐसा किया था। यह उसका खेल था या क्रोध—हम समझ नहीं पाये। सौभाग्य से मोक्षा को दांत नहीं लगा था। दुर्घटना टल गयी। दूसरे ही दिन से हमने अनु-मोक्षा को साथ ले जाना बंद कर दिया। उन्होंने भी जाने का हठ नहीं किया।

इसी महीने सोनहा कुत्ते के बच्चे आ गये। पांच-छह महीने बाद फिर उन्हें जंगल में छोड़ देने का विचार कर हमने उन्हें रख लिया। ऊदबिलाव अब बड़ा हो गया था तथा समझदार भी। वह खिलाड़ी था, लेकिन काटता नहीं था। हमने मगर के लिये बड़ा हौज बना लिया था जिसमें खूब सारा पानी भरा जा सके, लेकिन बैठने के लिए उतनी ही बड़ी जगह बनाने के बाद ही ड्रम से निकालकर उसे हौज में छोड़ा गया था। मगर के हौज के पास ही सांपों के लिये भी एक पक्का हौज बना दिया। पिछले सप्ताह में ही सांपों के पिंजरे

की नीचे की एक लकड़ी की पटिया सड़कर टूट गयी थी और उसमें से एक नाग निकल भागा था। यह पिंजरा भी घर के पास ही था। नाग को घर में जाते किसी ने नहीं देखा था। फिर भी उसका वहां जाना संभव था। हम दो दिन तक घर में सभी छिपने वाली जगहों में उसे ढूंढ़ते रहे।

हमारे यहां बिजली नहीं थी। आज भी नहीं है और अगले अभी दस वर्षों तक आने की संभावना भी नहीं लगती है। दवाखाने की दवाइयों के लिए मिट्टी के तेल से चलने वाला फ्रिज लाया गया है। एक दिन फ्रिज की बत्ती फड़फड़ा रही थी। मिट्टी का तेल खराब होगा। हमने पूरा दस लीटर मिट्टी का तेल बदल डाला। निकाला हुआ मिट्टी का तेल वहीं एक सपाट बर्तन में ही पड़ा रहा। हमारे ऊदबिलाव जी पानी समझकर टब-बाथ करने उसी में उतर पड़े। अपनी गलती समझ में आते ही वे बाहर निकलने के लिए झटपटाने लगे। हम पास में ही लूसी, बेन को दूध पिला रहे थे। आवाज सुनकर फौरन उधर गये। ऊदबिलाव के नाक, मुंह आंखों में मिट्टी का तेल चला गया जिससे वह चिढ़ गया था। मैंने उसे बाहर निकाला, बड़ी पानी की टंकी में डाला, साबुन से उसका सारा बदन धो डाला। आज पहली बार वह हमें काट रहा था। उसे ठीक करने के बहुत प्रयास किये गये। जितना हमारी समझ में आ रहा था, उसके अनुसार दवाएं भी दीं। लेकिन यह ऊदबिलाव दोपहर तक भी जीवित नहीं रहा।

हम ऊदबिलाव के जाने के दुख में ही थे कि पौडूर गांव के लोगों ने तेंदुए का एक शावक लाकर दिया। लूसी-बेन को हमारे प्रदेश से एक भाई मिला, इसका हमें आनंद हुआ। लेकिन यह शावक जीवित रहेगा, यह लग नहीं रहा था। गत दो दिनों से उसे दूध नहीं मिला था। वह बहुत ही कमजोर हो गया था। उसमें चिल्लाने की भी ताकत नहीं बची थी। वह 10-12 दिनों का होगा। उसकी आंखें भी अभी खुली नहीं थीं। वह नर था। हमने उसका नाम रखा 'सुभाष'। पंजों के नाखून बड़े नुकीले थे। मैंने तौलिए में लपेटकर उसे गोद में ले लिया। मुंह में बोतल का निप्पल दिया, पूंछ के नीचे जरा खुजलाया। उसमें निप्पल चूसने तक की शक्ति नहीं थी। थोड़ी देर बाद उसने काली-काली विष्टा कर दी। उसे दो दिन पूर्व मां का दूध मिला होगा। आखिर हाथ से उसका मुंह खोलकर मैंने उसे चम्मच से दूध पिलाया। बड़े प्रयास से वह निगल पा रहा था। दूसरे दिन थोड़े हाथ पांव हिलाने लगा। तीसरे दिन तो भालू, हिरन के समान वह निप्पल चूसकर दूध पीने लगा। लूसी-बेन की तरह निप्पल चबाया नहीं। लूसी-बेन तो जरा बड़ा होने पर हमारे पास आये थे। सोमनाथ पर नाना उन्हें ठीक से दूध पिला भी नहीं सका था। आठ-दस दिनों में सुभाष जरा आवाज भी करने लगा था। सुभाष को बेन-लूसी के पास ले जाने पर वे बेचैन हो जाते थे। बेन तो पंजा मारने का प्रयास करता। लूसी सुभाष को काटती थी। हम सुभाष को अकेला और खुला उनके पास न छोड़ते। सुभाष से आकार में वे पंद्रह गुना बड़े होंगे। सुभाष को

एक अलग कमरे में खुला रखा था। बेन उस कमरे के द्वार पर जाकर गंध लेता और बंद द्वार पर नाखून से खरोंचता। फिर सुभाष अंदर से आवाज करता।

अब धीरे-धीरे लूसी-बेन बड़े हो रहे थे। पहले से उनमें एक बदलाव होता लग रहा था। उनका रंग कुछ फीका हो रहा था। पिंजरे में बालों के गुच्छे पड़े दिखते थे। बड़ी गर्मी के दिन थे। बोटी लकड़बग्गा के बाल पिछले चार-पांच गर्मी के मौसम में गल जाते थे। इतने कि कभी तो वह बीमार ही दिखता था। लेकिन वर्षा प्रारंभ होते ही बाल फिर आने लगते। सर्दी में घने बाल होने पर बोटी अच्छा दिखता था। रानी भालू और नेली कुतिया के बाल भी गर्मी के दिनों में झड़ जाते थे। हमने समझा कि वैसा ही कुछ होगा, इसलिये अधिक ध्यान नहीं दिया।

हमारे लिये जून 80 का महीना पिछले दस वर्षों में सब से दुखदायी रहा। संतोष की बात केवल इतनी ही थी कि हमें दो नये साथी मिले। लेकिन वे अल्पायु तक ही रहे। पौडूर गांव के लोगों ने मुझे जून में एक छोटा सा नेवले का बच्चा लाकर दिया। उसके लिये एक छोटी बोतल बनानी पड़ी थी। वह एक समय केवल आधा औंस दूध पीता था। दो-तीन दिन बाद उसने आंखें खोलीं। वह पूरे घर में खेलने लगा। भले ही वह कहीं भी हो, पर दूध पीने का समय होते ही उपस्थित हो जाता था। वह बहुत ही छोटा सा था। किसी के भी पैर के नीचे आने पर उसके मरने का डर रहता। अपने स्थान में सुभाष अकेला ही था। इसलिये नेवले को उसके साथ रखा गया। कुछ घंटों में ही उन दोनों की दोस्ती हो गयी। सुभाष की बगल में नेवला सोता था। जगते हुए सुभाष की पीठ पर, सिर पर बैठकर उसे सताता रहता था। वह काटता था, केवल खेल-खेल में ही। लेकिन उसके दांत अभी नहीं आये। सुभाष गुस्सा होने पर अपने आगे के पैरों से नेवले को दबाए रखता। नेवला किरकिरी आवाज में चिल्लाता रहता था। वह सुभाष को काट भी नहीं सकता था। सुभाष के छोड़ देने पर वह फौरन दूर जा बैठता था। उसका यह रुठना भी अधिक समय तक नहीं टिकता। अधिक समय बीतने पर सुभाष ही खुद उठकर उसके पास जाकर उसे प्यार से चाटने लगता। इस पर नेवला गुस्सा भूलकर फिर उसके साथ खेलने लगता।

लूसी 10 तारीख को कुछ अस्वस्थ दिख रही थी। उसकी आंखों से पानी आ रहा था। उस दिन उसने न कुछ खाया, न पिया। वह घूमने जाने को भी तैयार नहीं थी। बेन बिलकुल ठीक था। 10 तारीख के दिन हम लोग घूमने न जाकर घर के पास ही बालू पर बैठे रहे। लूसी मेरी गोद में सिर रखकर बैठी रही। बेन प्रकाश के साथ घूम रहा था। मैंने रात को सोने के पूर्व बेन और लूसी को विटामिन के इंजेक्शन दिये। लूसी को अधिक मात्रा में विटामिन की गोलियां भी दीं। फिर भी चिंता लग रही थी। वे दोनों ही 7 महीने से अधिक के हो चुके थे। हम तेंदुओं को मटन (बकरी का मांस) नहीं खिलाते थे। एक कारण यह भी था कि यहां कही मटन बिकता ही नहीं था और मिलता भी तो उतने पैसे

हमारे पास नहीं थे। हमारे प्रकल्प के लिये कोई अनुदान नहीं था। जो भी पैसा मिलता था वह लोगों से, आदिवासियों की दवाइयों के लिये और उनके बच्चों की शिक्षा के लिये होता। उसमें से एक पाई भी अन्य काम में खर्च न हो, इसका हम ध्यान रखते थे। हमें मिलने वाले मानदेय से तेंदुओं के लिये 10 दिनों के मटन के भी दाम नहीं चुकाये जा सकते थे। चिड़ियाघरों में तेंदुए को एक दिन में 6 किलो मटन दिया जाता है। वैसे हमारी पशु वाटिका को देखने कई मेहमान आते थे। वे बड़ा आनंद प्रकट करते, लेकिन जानवरों के खाने का खर्च कोई नहीं देता था। हम मांगते भी नहीं थे। मनुष्यों के साथ ही इन जानवरों को भी जीवित रहने का हक है। उन्हें जीवित रखना हमारा कर्तव्य है, यह विचार कितने लोग करते होंगे, पता नहीं। हमारी बड़ी विचित्र परिस्थिति थी। लूसी की व्यथा हमसे देखी नहीं जाती थी। 11 जून को उसे जबरदस्ती मुंह खोलकर दूध पिलाना पड़ा। लेकिन संध्या को वह पैर झाड़ने लगी। बेन बिचारा उसकी ओर देखते हुए एक कोने में बैठा रहा। मैंने रात में लूसी को दवा दी तथा सलाईन भी दी। उसके पेट में कुछ भी नहीं था। 12 जून को सुबह हम जल्दी ही उठ गये थे। वैसे 11 की रात को हम लोग अधिक सो भी नहीं पाये थे। जब हम उठे तो देखते हैं कि लूसी पिंजरे में मरी पड़ी थी। हमें बहुत दुख हुआ। लेकिन किस से कहते? इन जानवरों को अपना दुख स्वयं ही सहना पड़ता है। वे उसे किसी से नहीं कह सकते, प्रकट नहीं कर सकते। उनके साथ रहकर हम भी यही सीख गये थे। जितना भी जीवन आनंद से बिताया जा सकता है, उतना ही सही है। शेष जीवन को बदन पर से झड़ने वाले बालों की तरह बीत जाने दें, हमें यही सीख मिली थी। लूसी की अंतिम-क्रिया पूरी की। हमें अब बेन को संभालना था। उसे अब हमारा ही सहारा था। उसका और हमारा दुख समान ही था। दो चार दिन वह भी कम ही खाता-पीता रहा। फिर जरा ठीक से खाने-पीने लगा। क्या अब बेन को मटन देना प्रारंभ कर देना चाहिये? मेरी इच्छा तो थी लेकिन हम कुछ कर नहीं सकते थे। लकड़बग्गा पूर्ण रूप से मांसाहारी होता है। लेकिन हमारे यहां वह गत 3 वर्षों से दूध-भात खाकर ही स्वस्थ है, फिर बेन उसकी तरह क्यों नहीं रह सकता? परस्पर विरोधी विचार आते रहे। अपनी सहूलियत के विचार मन में आना भी क्या पलायनवाद ही था? सदा सुविधाकारक विचार करने से स्वयं को झूठा समाधान मिल ही जाता है। हमें जंगली जानवरों के रोगों का इलाज करने की कोई किताब नहीं मिलती थी। कुत्तों पर लिखी एक पुस्तक में, लूसी जिस तरह से मरी उस तरह की मृत्यु कुत्तों में डिस्टेंपर नामक रोग से आती है, ऐसा लिखा था। क्या लूसी को डिस्टेंपर हुआ था? डिस्टेंपर रोग की दवाइयों के लिए हमने कुछ मित्रों को पत्र लिखे। सप्ताह भर बाद बेन फिर से हमारे साथ घूमने आने लगा। अब बेन शांत भी हो चुका था। हमसे खेलते समय अब उसका व्यवहार कुछ सौम्य सा लगता था। अधिकतर समय वह हमारे साथ ही बिताना चाहता था। लगता था, वह भी हर रोज जरा कमजोर होता जा रहा है। मैंने

उसका वजन लिया, बीस किलो था। उसके यहां आने के बाद से उसका वजन लिया ही नहीं था। हम कुछ समझ नहीं पा रहे थे। लेकिन उठाने पर हमें वह उतना ही भारी लगता, मन को बस यही संतोष रहता। लूसी के जाने से उसका मन अवश्य दुखी था।

हमारी बबली भी 15 जून को चल बसी। इस बंदरिया ने केवल हम दोनों का ही नहीं अन्य कई व्यक्तियों का भी स्नेह पाया था। उसके जाने का दुख हम सभी को हुआ। गत मास हमारे पास एक लाल बंदरिया की बच्ची और आई थी। हमने उसे राजू-बबली के पिंजरे में ही रखा था। उसका नाम 'मैनी' रखा था। मैनी जब आई थी वह तभी आकार में बबली से बड़ी थी। आयु में शायद छोटी हो सकती है लेकिन जंगल में बढ़ने से उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट था। आते ही उसने पहले राजू बंदर को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। राजू बंदर सदा उसके साथ प्रणयरत रहता था। समय-समय पर मैनी बबली को काटती तथा मारती थी। वह उसे अपनी सौत जो समझती थी। राजू ने भी मैनी का ही साथ देना प्रारंभ किया। बबली पहले जैसा खाती नहीं थी। राजू, मैनी उसको पेट भर खाने भी नहीं देते थे। जब बबली मरी तो उससे एक दिन पूर्व उसका गला सूज गया था। वह मैनी के काटने से हुआ था। उसकी आंखों से भी पानी आ रहा था। उसे भी डिस्टेंपर रोग तो नहीं हुआ था? कहीं यह रोग छूत की बीमारी तो नहीं है? अब और कौन से जानवरों को जान का खतरा है, हमें कुछ सूझता नहीं था। राजू के बदले हुए व्यवहार से बबली रो तो नहीं रही थी? रो-रो कर उसका गला सूख गया हो, कुछ ऐसा कारण तो नहीं था? प्रकल्प के हर व्यक्ति को बबली के जाने का दुख हुआ। लोगों के कहने पर उसका अंतिम संस्कार किया गया। सबकी यह राय थी कि मैनी को राजू-बबली के पिंजरे में नहीं रखना चाहिये था। मैनी आने पर और बाद में भी उनमें आपसी मारपीट होती रही, तब किसी ने कुछ नहीं कहा। जानवर अब बढ़ रहे थे, जिस वजह से पिंजरों की संख्या में कमी पड़ रही थी। आर्थिक सहायता हमें गोंदिया के श्री कमलाकर कुलकर्णी दे रहे थे। मैंने उनसे यह बात करने की सोची। हमारे पास नये जीवों के बच्चे आने पर हम किसी को मना नहीं कर सकते थे। यदि हम उन बच्चों को स्वीकार न करते तो वे निश्चित ही मारे जाते। यहां रहने पर कुछ तो जीवित रहते। कुछ जंगल में वापस भी जा सकते थे। बंदर मनुष्य जैसा व्यवहार करता है, या मनुष्य बंदर जैसा, यह हम समझ नहीं पाते थे। बबली का इतना पुराना साथ छोड़कर राजू मैनी के साथ हो लिया। नवीनता सभी को प्यारी होती है। दोनों इतने बरसों तक सुख-दुख में एक दूसरे के सहभागी रहे। नवीनता की ओर बढ़ना शायद स्वभाव होता है। बबली ने अन्न त्याग कर आत्महत्या तो नही की? बाद में फिर एक और बंदरिया छवि आने पर हमने उस बंदिरया को राजू-मैनी के पास नहीं रखा।

इस दुखदायी महीने में एक ही अच्छी बात हुई और वह थी कि हमें पिसूरी का एक छौना मिला। हमें सन् 75 में एक पिसूरी की छौनी मिली थी। वह मादा थी। हमने उसका

नाम 'मेंटी' रखा था। अब मिला पिसूरी छौना नर था। हम नये पिसूरी को सारा दिन संभाले कुछ न कुछ करने में अपना मन लगाने लगे।

जून के महीने में ही रानी और राजा भालुओं का प्रणय चल रहा था। यह पंद्रह दिन तक चला। इसी दिसंबर में रानी बच्चों को जन्म देगी, ऐसा लग रहा था। अब रानी चार वर्ष की थी। राजा उससे छोटा था। रीछ के बच्चे कब वयस्क हो जाते हैं, इसका हमें पक्का पता नहीं था। भालुओं की प्रणयक्रीड़ा भी बिलकुल जंगली ढंग की होती है। उन दिनों वे जोर-जोर से चिल्लाते रहते थे। कोई पिंजरे के पास जाने पर वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे। हम दो ऐसे थे जो उनके लिये अपवाद रहे।

सुभाष तेंदुआ और नेवला हमेशा एक साथ रहते थे। अब नेवला बड़ा हो रहा था। सुभाष की अब लूसी के पीछे जाने की शंका हो रही थी। उसकी सभी क्रियाएं शिथिल हो रही थीं। उसका चलना-कूदना भी अब अधिक नहीं था। वह कभी-कभी नेवले के साथ खेलते हुए दिखता था। लेकिन हम उसका बराबर ध्यान रखते थे। उसे अच्छी मात्रा में सूर्य का प्रकाश मिले, इसी उद्देश्य से हमने उसे बाहर दूसरे पिंजरे में रखा। वह हमेशा धूप में पड़ा रहता। इस पिंजरे की जाली बड़े गूंथ की थी। नेवला आराम से उसमें से निकल आता और मनचाहे वहां घूम लेता। वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद आकर सुभाष को देख जाता था। सुभाष भी 29 जून को चल बसा। दूसरे ही दिन यह दुखदायी महीना समाप्त हो रहा था। दूसरे दिन नेवला दिनभर सुभाष को ढूंढ़ता रहा। बार-बार पिंजरे में आता रहा। वहां की गंध लेता था। उसे बेन के साथ रख नहीं पाते थे, क्योंकि बेन शरीर से बहुत ही हृष्ट-पुष्ट था। फिर उसे नेवले के साथ रहने की आदत भी नहीं थी। महीने के अंतिम दिन 30 तारीख को हम नेवले को ढूंढ़ रहे थे। पिंजरे में नेवले की केवल पूंछ मिली। सुभाष समझ रात में नेवला बेन के पिंजरे में चला गया होगा। बेन ने नेवले का काम तमाम कर दिया था। बेन द्वारा हमारे यहां खाया हुआ वह प्रथम और अंतिम मांसाहार था। नेवले ने दोस्त को ढूंढने में अपने प्राण गवांए थे। निश्चित ही अलग जाति के जानवरों में दोस्ती होती है। लेकिन क्या वह इतनी निराली और उत्कृष्ठ भी होती है? प्रारंभ में कालू कुत्ता और पिल्लू बंदर, फिर लिंबू बंदर और मेंटी पिसूरी और अब सुभाष तेंदुआ और नेवला साथ-साथ बड़े हुए। लेकिन फिर एक के चले जाने पर दूसरा भी जीवित नहीं रहा।

अब यहां वर्षा प्रारंभ हो गयी थी। आसपास सब ओर हरियाली छा गयी थी। नये फूल खिल चुके थे। इस माहौल में हम बबली, लूसी, सुभाष और नेवले को भूलने का प्रयास करते रहते थे। हम लोग छोटी-छोटी बातें लिखकर रखने लगे। आगे चलकर हमें इन्हीं बातों से बड़ी सहायता मिलने वाली थी। लेकिन कुछ बातों ने तो मन में ऐसा पक्का घर बना लिया था कि उन्हें कहीं लिखकर रखने की आवश्यकता ही नहीं थी।

मैंने मगर को अब बड़ी टंकी में रखा था। वह अब दो-ढ़ाई फुट लंबी हो गयी थी।

हमें पहचानती भी थी। उसके लिये मेंढक लाना भी चल ही रहा था। वर्षा के मौसम में मगर अधिक खाती है और शरीर से बढ़ती भी है, यह बात हमें गत दो वर्षों के अनुभव से ज्ञात हो गयी थी। बैंडेड क्रेट के लिये सांप चाहिये होते थे। हम लोग सप्ताह में दो बार मेंढक और सांप पकड़ने जाते थे। इसके लिये रात्रि के सफर बहुत स्मरणीय हैं। इनमें हमें कई प्रकार के अनुभव प्राप्त हुए। यहां सभी बता पाना संभव नहीं है। रात में निकलते समय साथ में हम दो डिब्बे लेते थे। एक मेंढकों के लिये, दूसरा सांपों के रखने के लिए। कभी-कभी हमें पूरे हफ्ते में एक भी सांप नहीं मिलता था। कभी एक ही दिन में चार-चार सांप मिल जाते थे। यहां वर्षा अच्छी होने के कारण पानी भरपूर था। मेंढक जमीन से बाहर आ गये थे। सांप मेंढक खाने बाहर निकलते थे। हम तो दोनों को ही ढूंढ़ते थे। रात में जंगल में सदा ही कुछ नवीन दिख जाता था। जुगनू तो हम सदा ही देखते हैं। लेकिन कुछ रेंगते कीड़े ऐसे भी होते हैं जो सतत् प्रकाश देते रहते हैं। जंगली कुत्ते सोनहा रात में ही बाहर निकलते हैं। जंगल में कोई भी जीव कभी दूसरे से छेड़खानी नहीं करता है। हम भी इस नियम का पालन करते हैं। जंगली सुअर, चीतल, भेकर, सोनहा जंगली कुत्ते जंगल में मिलते। हम केवल एक दूसरे को देखकर अपने-अपने रास्ते चल पड़ते थे। प्रत्येक जानवर की जंगल में अपनी-अपनी सीमा होती है। कभी-कभी किसी से दुबारा भी भेंट हो जाती थी। तब वे जानवर भी जरा रुककर हमें देख लेते थे। आपस में हम परिचित भी हो रहे थे। शृंगाल का जोड़ा केसा माड़ीया के खेत पर हमें मिलने पर हमें हमेशा देखता। केवल राम-राम करना ही बाकी रहता था। फिर आगे यही जोड़ा हमें तीन चार महीने नहीं दिखा। जब फिर दिखा तब साथ में तीन सुंदर बच्चों को लेकर। बच्चों के लिये हम नये और अपरिचित थे। वे हमें देखकर भाग गये। लेकिन वह जोड़ा हमें देखते ही रहा। शायद अपने बच्चों को हमें दिखाने के विचार से वे दोनों रुक गये थे। एक सोनहा सदा ही जलमापोरी के खेत के पास वाले नाले पर मिला करता था। हम वहां से जब भी जाते तब वह पेड़ से उतर कर हमारे पीछे-पीछे चलता। उसकी सीमा समाप्त होते ही वह ओझल हो जाता। हमने बहुत सारे सोनहा कुत्तों के बच्चे पाले थे। उनके बड़े हो जाने पर हम उन्हें जंगल में छोड़ दिया करते थे। वह उन्हीं में से एक हो सकता था। कभी-कभी इतनी विचित्र बातें दिखतीं कि इसका कोई उत्तर नहीं मिलता था कि ऐसा क्यों होता है।

हम लोग एक बार ऐसे ही जा रहे थे। मेंढक के लिये टॉर्च जलाई और चमक देख कर रुक गये। सामने तीन फुट लंबा एक पनिहा सर्प बैठा था। उसके चारों ओर घेरा बनाकर पांच मेंढक बैठे थे। दोनों एक दूसरे के कट्टर शत्रु, फिर ऐसा क्यों? तारीफ यह कि वहां से भाग जाने की तैयारी में मेंढकों की पीठ सर्प की ओर नहीं थी। वे उधर ही मुंह किये बैठे थे। उन सबका मिलकर सांप पर हमला बोलने का इरादा लगता हो, यह सोच भी नहीं सकते थे क्योंकि मेंढकों के दांत नहीं होते? सांप भी एक समय में एक मेंढक खा

सकता था। सांप शायद इस सोच में हो कि किस मेंढक को पकड़े, लेकिन मेंढक किस विचार में बैठे होंगे? हम तो दोनों के ही शत्रु थे, इसलिये कहीं हमारे विरोध में यह कोई निषेध-सभा तो नहीं थी? टॉर्च के प्रकाश में एक-एक कर हमने चारों मेंढक पकड़ लिये। सांप के मुंह के सामनेवाला मेंढक छोड़कर। फिर एकाएक प्रकाश ने सांप के मुंह पर लकड़ी दबा दी और मैंने पांचवां मेंढक भी डिब्बे में डाल लिया। हम सांप और मेंढक लिए सोचते-सोचते वापस लौट आये। बाद के सात वर्षों में सांप और मेंढक एक साथ कभी नहीं मिले।

अब बेन बिलकुल अकेला हो गया था। वह अपना अकेलापन भुलाने का प्रयास कर रहा था। अधिकतर वह प्रकाश के पास ही रहता था। वैसे प्रारंभ से ही बेन प्रकाश के पास ही अधिक रहा है। प्रकाश के न होने पर मेरी बारी आती थी। वह हम दोनों के साथ समान स्नेह से खेलता। आठ महीनों में हमसे खेलते हुए उसके नाखून खास तौर पर कभी नहीं लगे । सभी वन्य जीवों से सुबह एक बार मिलना हमारा नित्य का नियम था। आज भी है। अब बेन भी हमारे साथ सुबह की यात्रा में जाने लगा था। जब तक बन सके तब तक हम उसे पिंजरे के बाहर ही रखते थे। हमारे भीतर जाकर जानवरों से मिलकर लौटने तक वह बाहर ही बैठा रहता। या बाहर से ही पिंजरे के भीतर बंद कुछ जानवरों से छेड़खानी करने की कोशिश करता। पंद्रह दिनों में सभी जानवर बेन से परिचित हो गये थे। वे यह भी जान गये थे कि वह अंदर पिंजरे में नहीं आता।

12 जुलाई की सुबह वह सदा की तरह हमारे पीछे-पीछे आ रहा था। हम बोटी के पिंजरे में गये। बोटी के पास बेन नहीं आता था। जब भी हम बोटी के पिंजरे में होते तब तक उसे पास के राजू बंदर से खेलने में मजा आता था। बोटी सदा की तरह हमारे पास आकर हाथ चाटने लगा। वह हमारा हाथ लाड़ से मुंह में लिये खुश हो रहा था। लकड़बग्गे के हंसने, रोने और चिल्लाने की एक विचित्र-सी आवाज होती है। बेन आज यहां कैसे पहुंच गया, हमें यह पता ही नहीं चला। इस समय दरवाजे की ओर हमारी पीठ थी। बोटी को वहां से दरवाजा दिखाई दे रहा था। दरवाजे की सलाख में से बेन ने अपना सामने का दाहिना पांव अंदर डाला। वहां उसे खेलने को क्या मिला, पता नहीं। बोटी ने एकदम झपटकर बेन का पैर अपने जबड़ों में पकड़ लिया। हम लोग जोर से चिल्लाये। बोटी ने तुरंत बेन का पांव छोड़ दिया। बेन चिल्लाते हुए तेजी से तीन पैरों पर भाग खड़ा हुआ। वह सीधे प्रकाश के पलंग के नीचे जा बैठा। जब हम घर पहुंचे तो बेन कराह रहा था। पांव को हाथ भी नहीं लगाने देता था। हमने उसे लाड़ प्यार कर पास से पैर देखा। जबड़ों की पकड़ से पांव की हड्डी ही टूट गयी थी। दो दांतों के गड़ जाने से जख्म हो गये थे। जख्म मामूली ही थे। हमने दवाई लगाई और पैर में प्लास्टर लगा दिया। वह घूम-फिर नहीं सकता था। सभी बातों के लिये वह हम पर ही आश्रित था। उसने दो दिन तक कुछ

खाया-पिया भी नहीं। चौथे दिन तीन पांवों पर लंगड़ाता हुआ वह चलने लगा। हम उसे नहला नहीं सकते थे। गीले कपड़े से उसका बदन पोंछ देते थे। 22 तारीख को वह क्रोधित हो मुंह से प्लास्टर फाड़ने लगा। भीतर का छोटा जख्म बहने लगा था। उसने प्लास्टर निकाल दिया था। एक जख्म ठीक हो गया था। दूसरा अभी नहीं हुआ था। इसलिये दुबारा पट्टी बांधकर हमें नया प्लास्टर चढ़ाना पड़ा। हम उसे रोज दवाइयां तो दे रहे थे। महीने भर के बाद प्लास्टर निकालने पर बेन पहले जैसा फिर से दौड़ भाग सकेगा या नहीं—हम उसी सोच में रहते थे। लेकिन वह क्षण आया ही नहीं। बारह अगस्त को, एक महीने के भीतर ही, वह मर गया। अंतिम दिनों में वह घूम-फिर भी नहीं सकता था। बैठे-बैठे कुछ कसरत भी नहीं होती थी, इसलिये उसका खाना कम हो गया था। अपने छोटे से साहचर्य में बेन हमें तेंदुआ जाति के संबंध में बहुत कुछ सिखा गया था। हमने अनुभव से जाना कि मांस खाये बगैर तेंदुए का विकास नहीं हो सकता। यह सबसे महत्वपूर्ण सच्चाई है। अब हमने तय कर लिया है कि चीता या तेंदुआ मिलने पर उसे किसी भी तरह मांस अवश्य खाने को देंगे। हमने एकत्रित धन से कुछ रकम अलग रख दी है और स्वयं ही एक फंड स्थापित किया है। हमारे पास गत तीन वर्षो से नेगल-नेगली तेंदुआ जोड़ा है। उन्होंने यहीं एक बच्चा भी दिया है। फिर भी बेन-लूसी को भूलना मेरे लिये असंभव है।

बेन के जाने के बाद कुछ दिनों तक बड़ा ही सूना लग रहा था। फिर से तेंदुआ मिलने पर हम स्वयं ही सुअर पालकर उसे गोश्त खाने को देंगे, यह सोच हम पहले से ही कियर-कोयन-गुड़ा गांव से सुअर ले आये। लेकिन तेंदुआ हमें दो वर्षो के बाद मिला। लेकिन उसके पूर्व ही पाले हुए सुअर हमें सोमनाथ प्रकल्प में भेजने पड़े। हमारे खुले रखने पर वे खेतों में नुकसान करते थे, बंद रखने पर बड़ी गंदगी करते थे। सोमनाथ परिसर प्रकल्प में बड़ी खुली जगह है। बाद में जब यहां उनकी आवश्यकता हुई, तब सोमनाथ से उन्हें वापस ले आये।

सितंबर की 10 तारीख को ऊदबिलाव के दो बच्चे लाए गये। बच्चे वैसे बड़े ही थे। हमें पिछले ऊदबिलाव का पूरा अनुभव था ही। इन दोनों में जो नर था, वह जरा चिड़चिड़ा था। मेरे हाथ लगाने पर फौरन काटने को दौड़ता था। दूसरी मादा थी। वह सीधे स्वभाव की थी। दोनों भाई-बहन समवयस्क थे। दिखने में भी इतने एक जैसे थे कि अलग पहचान भी कठिन थी। यदि मादा समझकर हाथ लगाते तो नर निकलता। काटने से ही वह अपनी पहचान करा देता था। दो दिन उन्हें दूध पिलाने में हमें बहुत ही कष्ट हुआ। एक को गले से पकड़ते और फिर दूसरे को दूध पिलाते। यह काम हम दोनों को मिलकर करना पड़ता। फिर बाद में वे ठीक से दूध पीने लगे। तब तो केवल दूध की बोतल सामने करते ही ऊदबिलाव का बच्चा निप्पल मुंह में लेकर दूध पी लेता। मादा तो हमारी गोद में लेटकर दूध पीती थी। लेकिन नर दूर से ही। इन्हें घूमने ले जाना भी बड़ा कठिन काम था। नेली कुतिया

को सभी जानवरों के संग रहने की आदत थी। हमारे किसी को भी साथ ले जाने पर वह हमारे ज्यादा पास रहती थी। मादा ऊदबिलाव तो शांति से चलती। दोनों ऊदबिलावों को एक दूसरे के साथ चलने की इतनी आदत पड़ गयी थी कि मादा के आगे निकलते ही नर उसके पीछे चला आता था। नर काटता था, इसलिये उससे दूर होते तो मादा हमारे पास आ जाती, फिर नर उसके पीछे होता ही। नेली को नर ने दो-तीन बार काट खाया था। पहले तो नेली ने इतना ध्यान नहीं दिया। फिर एक दिन उसने नर को पकड़ ही लिया। मैंने फिर नेली और ऊदबिलाव को साथ घूमने ले जाना बंद कर दिया। तेंदुए का पिंजरा खाली था। उसमें ऊदबिलावों को बंद कर दिया। हम पिंजरे में जाकर उन्हें दूध पिलाने लगे। पहले हम नर को दूध पिलाते थे। तब तक मादा आराम से मेरी गोदी में बैठी रहती थी या फिर मेरे कंधे पर चढ़कर गर्दन पर आया पसीना चाटती रहती थी। नर का दूध पीना हो जाने पर उसे दूध मिलेगा ही, इतना वह समझ चुकी थी। नर का दूध पीना हो जाने पर भी वह निप्पल पकड़े रहता था। फिर एक थप्पड़ खाने पर वह निप्पल छोड़ता और गुर्राते हुए दूर जाकर बैठ जाता। मादा बिल्कुल छोटे बच्चे के समान पीठ के बल लेटकर, चारों पैर ऊपर किये, आराम से दूध पीती थी। उस समय हमें तिरछी नजर से नर की ओर ध्यान रखना पड़ता था क्योंकि कह नहीं सकते थे कि वह कब आकर एकदम काट ले। संयोग ऐसा हुआ कि अक्तूबर में केवल दो दिन बीमार रहकर सहज, शांत स्वभावशाली मादा मर गयी। नर अकेला रह गया। दिनभर वह कर्कश आवाज में चिल्लाता रहता। अब हमें अधिक बार मेंढक पकड़ना जरूरी हो गया। हम लोग मगर के साथ ऊदबिलाव को भी मेंढक दे रहे थे। मिल जाने पर ऊदबिलाव खुश होता था। मछली उसका खास भोजन था। लेकिन मछली लेकर पिंजरे में जाना कठिन था, क्योंकि मछली की केवल गंध आते ही वह बहुत बैचेन हो जाता था। उसके लिये एक छोटी टंकी पिंजरे के बाहर बना रखी थी। एक सी-पाइप से पिंजरे से टंकी को जोड़ रखा था। टंकी में मछली डालकर ऊपर से जाली का ढक्कन लगाते, तब तक वह पाइप से टंकी में आकर मछली लेकर फिर से पिंजरे में जाकर खाने लगता। एक बार यह खेल विद्यालय के बच्चों ने देखा। मछली खाते देखने पर हम हर रोज छोटी-छोटी मछलियां पकड़कर उस टंकी में डालने लगे। पानी में आकर ऊदबिलाव मछली पकड़ लेता था। बच्चों को उस खेल में बहुत आनंद आता था। अब ऊदबिलाव को भी अच्छा खाना मिलने लगा था। अब मगर के मेंढकों में ऊदबिलाव की हिस्सेदारी कम हुई। ऊदबिलाव ठीक तरह से बढ़ने लगा।

नवंबर 80 में हमारी नीलगाय ने एक बछिया को जन्म दिया। पेंटी भेकर (हिरनी) भी गर्भवती थी। इस बार पेंटी गर्भावस्था में जरा अधिक थकी हुई लग रही थी। गत तीन वर्षों में उसने एक बार मृग छौना दिया और दो बार एक-एक मृग छौनी को जन्म दिया था। प्रत्येक प्रसूति में हिरनी एक ही बच्चा देती थी। वैसे दूसरी प्रसूति से दो बच्चे देने

चाहिये थे। जंगल में भेकर हर प्रसूति में दो छौने देते हैं। हमारी चीतल मादा भी सन् 76 से हर वर्ष एक ही छौना देती है। इस बार पेंटी दो बच्चे देगी, ऐसा अनुमान था। उसका पेट भी पहले से बड़ा दिखता था। हमने हरे चारे के साथ उसे मावा और गुड़ का ढेप देना भी प्रारंभ किया था। तीन वर्ष पूर्व का उसका छौना जॉन और हिन्देवाड़ा गांव से आया हुआ छोय्या दोनों ही नर अब वयस्क हो गये थे। पेंटी ने गत वर्ष जिस छौनी को जन्म दिया था वह 'छाया' छोटी ही थी। नर आपस में मस्ती करते रहते। पेंटी को प्रसूति के लिये एक सप्ताह अलग रखने का विचार किया था। लेकिन उसके पूर्व ही 27 नवंबर को पेंटी पिंजरे में पड़ी हुई दिखी। उसकी सांस जोर-जोर से चल रही थी। उसकी प्रसूति होने वाली थी। लेकिन बच्चा आड़ा हो गया था। हम सहायता के लिए दौड़े। प्रकाश ने उसकी प्रसूति एकदम ठीक तरह से करवा दी। हमारे अनुमान के अनुसार उसने इस बार एक नर और एक मादा बच्चा दिया— एक छौना और दूसरी छौनी।

हमने सन् 78 में 110 फुट लंबा, 16 फुट चौड़ा, एक बड़ा पिंजरा बनवाया था। उसकी एक ओर जाली और बाकी तीनों ओर दीवार थी। लेकिन सन् 81 के प्रारंभ में ही चार नीलगाय, तीन चीतल, पांच भेकर आ गये। नीलगाय शरीर से बहुत बड़ी हो गयी। इतनी कि वह इधर-उधर भागती-दौड़ती तो भेकर के बच्चे कुचल कर मर जाते। इसीलिये हमने उसी पिंजरे के तीन विभाग किये। भेकर, नीलगाय और चीतल अलग-अलग रखे। वैसे उन्हें छोटी जगह में रखना अन्याय था, लेकिन और कोई चारा भी नहीं था। वन विभाग तो कानून से इन जानवरों को रखने की अनुमति भी नहीं देता है। इसलिये उनकी ओर से बड़े पिंजरे को तैयार करवाने का खर्च मिलना तो नामुमकिन था।

हमें सन् 81 में जंगल में बहुत कम बच्चे मिल पाये। लगता था जैसे लोगों ने शिकार खेलना कम कर दिया था। बड़े जानवरों का शिकार करने पर वे साथ मिलने वाले बच्चे वे हमें सौंप जाते थे। मार्च महीने में हिन्देवाड़ा गांव के लोगों ने सियार के एक साथ पांच बच्चे लाकर हमें दिये। वे एकदम छोटे नहीं थे। सिर के पास ऊंचाई करीब एक फुट तो होगी ही। पहले ही दिन से वे दूध-भात आराम से खाते थे। रानी को बचपन में जहां रखते थे, वह पिंजरा खाली पड़ा था। लेकिन वह जरा टूटा-फूटा था। मैंने इधर-उधर पटिये ठोंक कर काम चलाऊ पिंजरा बना लिया। सियार बहुत चतुर होता है, ऐसा सुना था। इसलिए डर था कि कहीं वे बच्चे भाग न जाएं। हम रोज पिंजरे पर नजर रखते। संख्या में अधिक होने के कारण रोज रात्रि में उनका संगीत चलता रहता था। पहल-पहले वह आवाज सुनने में बहुत अजीब लगती है। लेकिन धीरे-धीरे आदत हो जाने पर उनमें कुछ नये सुर, ताल दिखने लगे थे। पहले आठ दिन आराम से निकल गये। दिनभर सभी बच्चे पिंजरे में चक्कर लगाकर जब थक जाते तो एक दूसरे के सहारे सो जाते थे। नवें दिन एक बच्चा जरा लंगड़ाता दिखा। यह मादा थी और पहले से ही जरा कमजोर भी थी। पिंजरे में ही

कोई कील या तार पैर में लग गया होगा। इसलिये पिंजरे को ठीक से देखा तो वैसा कुछ कहीं दिखाई नहीं दिया। दो दिन तक वह लंगड़ाती रही। तीसरे दिन पिंजरे में देखा तो चार ही बच्चे दिखे। लंगड़ी मादा गीदड़ नहीं थी। वहां से उसका भाग जाना भी असंभव था, क्योंकि पिंजरा बिल्कुल सही सलामत था। ठीक से देखने पर चार बच्चों में से दो पेट फुलाये सुस्ता रहे थे, बाकी दो हड्डियां चूस रहे थे। मतलब यह कि ये चारों उस लंगड़ी को मारकर खा गये थे। अपंग जानवर जंगल में शायद इसीलिए नहीं दिखते। ये बच्चे इतने बचपन में ही ऐसे क्रूर कैसे हो गये? यहां आने के पूर्व ही क्या अपनी मां से शिकार खेलना सीख चुके थे? वहां मांस खाते होंगे, हम तो केवल दूध भात दे रहे थे। वैसे सियार पूरी तरह मांसाहारी प्राणी है। फिर भी गत चार पांच वर्षों से एक हमारे पास था। नेली कुतिया के साथ हमने उसे छह महीने तक पहले एक ही पिंजरे में रखा था। लेकिन इस सियार ने नेली को कभी काटा तक नहीं था। यहां तो आगे चलकर चार में से तीन ने मिलकर चौथे को, फिर तीन में से दोनों ने तीसरे को और फिर दो में से एक ने अपने साथी को समाप्त कर दिया था। अब केवल एक ही बच गया था। वह ही जीने का अधिकारी था। वह आज भी हमारे पाास है। आगे चलकर सजा देने के इरादे से हमने उसे अजगर के साथ एक पिंजरे में रखा। लेकिन अचरज की बात यह कि उसने अजगर से ऐसी गहरी दोस्ती कर ली थी कि दो वर्ष तक साथ रहने पर भी उसे अजगर ने कभी कुछ कष्ट नहीं दिया। अजगर सुस्त पड़ा रहता, पर गीदड़ को उसके शरीर पर आराम से सवार देखकर मेहमान भी अचंभे में रह जाते थे और पूछ बैठते थे कि वह अजगर जीवित भी है या नहीं?

कुताकोंड़ी गांव से सन् 81 के अप्रैल में साही जानवर के दो बच्चे आये। साही को विदर्भ में साटू, कांटा-बिल्ली, साकुंद्री भी कहते हैं। बड़ी होने पर साही को जीवित पकड़ना असंभव है। बाघ भी साही का शिकार नहीं कर पाता। उसके शरीर पर अनगिनत कांटे होते हैं जो बड़े नुकीले और भेदक होते हैं। ये बड़े मनुष्य की आंख या जांघ या पिंडली से बड़ी सरलता से आरपार हो सकते हैं। हमने आदिवासी लोगों की पिंडलियों और जांघों में गहरे घुसे हुए इनके कांटे निकाले हैं जो लंबाई के कारण आरपार दिखते थे। कांटे बीच में कुछ मोटे होते हैं। दूसरे छोर पर भी ये नुकीले होते हैं। कांटे साही के शरीर में लगे होते हैं। इस कारण आरपार गया हुआ कांटा निकालना बहुत कष्टदायी होता हैं। साही जानवरों या मनुष्यों के पैरों के बीच या एक ओर से हमला बोलकर भाग जाती है। तब ये कांटे उनके शरीर में घुसकर भीतर अटके रहते हैं। साही के शरीर से वे झट छूट पड़ते हैं। ये कांटे उसके शरीर के बाल होते हैं और एक बार निकलने पर वहां फिर उग आते हैं। साही कांटे फेंक कर मारती है, यह कहना एकदम गलत है। पिछले सात वर्षों से साही हमारे पास रहती है। कितना भी गुस्सा आने पर उसने कभी भी कांटे नहीं फेंके। साही के शरीर पर ऐसे सैकड़ों कांटे होते हैं। पीठ के कांटे मोटे और पक्के होते हैं। किसी की

आहट पाते ही वह कांटों को फैलाकर खड़ी हो जाती है। बीच वाले कांटे तो करीब फुट-डेढ़ फुट लंबे होते हैं। इस कारण साही आकार में एकदम खूब बड़ी दिखती है। साही की अलग से कोई पूंछ न होकर इन्हीं बीस-पच्चीस कांटों का एक गुच्छा सा होता है। वह पूंछ के समान लगता है, लेकिन वे कांटे छोर पर नुकीले नहीं होते। किसी की आहट पाते ही वह उस ओर पीठ कर खड़ी हो जाती है और अपने कांटे फैला देती है। तब वह पूंछवाले पीले कांटे जोर से हिलाकर उसमें से हवा निकलने जैसी आवाज निकालती है। यह सब देखकर साधारणतया कोई व्यक्ति उसके आसपास फटकता ही नहीं। जब वह देखती है कि शत्रु इस पर भी डरा नहीं है तो साही तेजी से उलटी भागने लगती है और शत्रु से टकराने पर ये कांटे शत्रु के शरीर में घुस जाते हैं। साही के शरीर से छूट कर ये कांटे तीर की तरह शत्रु के शरीर में घुस जाते हैं। यह एक गलत धारणा है कि इन कांटों में जहर भी होता हैं। हम हमेशा ही उसके पिंजरे मे जाते रहे हैं। दो-तीन बार उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाने पर हमें भी कांटों का प्रसाद मिला है। लेकिन उस स्थान पर कभी जलन या सूजन नहीं हुई। साही कंदमूल, पत्ते, फल खाती है। वह शाकाहारी है। उसके कांटों के कारण हम उससे खेल नहीं पाते हैं। लेकिन बार-बार उसके पास जाने तथा उसे पास बुलाने या गर्दन पर थपथपाकर खुजलाने, सिर थपथपाने वगैरा जैसे काम रहने से वह हमें पहचानती है और आवाज देने पर हमारे पास आ जाती तथा हमारा हाथ चाटती है। अन्य किसी के पिंजरे के पास जाते ही उसके कांटे खड़े हो जाते। हमारे पास जाने पर उसके व्यवहार में बस इतना ही फर्क होता है कि पीठ के कांटे खड़े नहीं होते, लेकिन पूंछ में से आवाज जरूर आती है। यह शायद उसका आनंद प्रकट करने का तरीका है।

जून 81 में कोठी गांव से सूचना आई थी कि गांव के पास एक बड़ा अजगर बकरे का मेमना खाकर सुस्त पड़ा है। अजगर बकरे जैसा कोई बड़ा शिकार निगलने पर कई दिनों तक सुस्त पड़ा रहता है—यह सारी जानकारी हमें अनुभव से मिली है। इससे पहले हमने एक बार सन् 79 में नदी पर एक बड़ा अजगर पड़ा देखा था। हमने सोचा कि चलो लौटते समय इसे पकड़ लेंगे और हम आगे बढ़ गये। दो घंटे बाद लौटने पर देखा तो वह अपनी जगह से एक इंच भी नहीं हिला था। वह बहुत ही बड़ा था। कल देखेंगे, यह सोचकर हम घर लौट गये। दूसरे दिन दवाखाने में काफी भीड़ होने और कुछ अन्य कारणों से अधिक व्यस्त रहने से हम भूल ही गये। आठ दिनों बाद जब हम फिर नदी पर गये तो देखा कि अजगर वहीं पड़ा था। कहीं मरा तो नहीं पड़ा? यह देखने के लिये हमने लकड़ी से उसे हिलाया तो वह जीवित लगा। वापस लौटते हुए हमने उसे बैलों से बांधा और खींचना चाहा। लेकिन वह इतना भारी था कि चार मील तक उसे खींच कर ले जाना हमारे लिये असंभव था। हमने उसे वहीं छोड़ दिया। कोठी गांव से सूचना आने पर हमने इसी अनुभव के आधार पर जाने की जल्दी नहीं की। दूसरे हम दिन जीप लेकर निकले। अब तक सभी

को हमारे पास बड़ा अजगर होने का पता चल गया था। जानवरों से प्यार करने वाले अनु और मोक्षा, अपनी-अपनी माताओं की इच्छा के विरुद्ध, पहले ही जीप में आ बैठे थे। हमने कोठी गांव में ही जीप छोड़ी और वहां से पैदल निकल पड़े। जंगल में घनी झाड़ी के बीच वह अजगर सुस्त पड़ा हुआ था। इतना बड़ा अजगर मैंने पहली बार देखा था। हमारा पहले वाला अजगर आठ फुट लंबा था। यह उससे भी लंबा और मोटा था। तुरंत मैंने अनु-मोक्षा को शरद के साथ दूर भेज दिया। इतना बड़ा अजगर अनु-मोक्षा जितने बड़े बच्चे तो आराम से निगल जाता। अजगर का मुंह दिखने में बेशक में छोटा हो, लेकिन वह अपना जबड़ा खूब फाड़ सकता है। इसी कारण बड़े आकार के शिकार को भी वह जबड़ा फैलाकर निगल लेता है। मैंने बड़ी लाठी से उसका मुंह दबाया। दो आदमियों ने उसकी पूंछ पकड़ी। वह मुंह से फुंफकार निकाल रहा था। लेकिन बकरी निगलने के कारण वह सुस्त था। मैंने उसका मुंह बांध कर उसे बड़े पिटारे में रखा। एक आदमी से यह पिटारा उठना संभव ही नहीं था। मैंने जीप लाकर उसमें पिटारा रखवाया। लोगों को ट्राली में बिठाया और अनु-मोक्षा को सामने की सीट पर। घर आने पर हमने अजगर का वजन किया—34 किलो था। यह अजगर हमारे पास 4 वर्ष तक रहा। पांच सियारों में से एक ही जीवित रहे सियार से उसकी गहरी दोस्ती हो गयी थी। 1985 में बस्ती से दूर जंगल में भीतर ले जाकर हमने उसे छोड़ दिया था। पहले वाला अजगर खून की उलटी होने से मरा था। पिंजरे में रखे सांप, अजगर यहां की गर्मी सह नहीं पाते थे, इसीलिये इसे फिर से जंगल में छोड़ दिया गया था।

काकाटे (बस्तर) की बोलनेवाली मैना बहुत प्रसिद्ध है। जिला बस्तर हमारे स्थान से पास ही है। महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश की सरहद पर आबूज मोड़ की पहाड़ी है। वहां के आदिवासी माड़ीया, बड़ा माड़ीया या हिल माड़ीया के नाम से जाने जाते हैं। यहां के पहाड़ पर वह मैना होती है। घने जंगल और ऊंचाई के कारण यहां गर्मी के मौसम में भी बहुत ठंड रहती है। शहरी मैना से यह मैना जरा आकार में बड़ी होती है। इसका रंग काला चमकीला या कभी गहरा काला भी होता है। पैर पीले और चोंच सिंदूरी होती है। पैरों में दो या तीन सफेद पट्टे होते हैं और पंखों में केवल दो-तीन पंख ही सफेद होते हैं।

इस वर्ष प्रथम बार एक बीमार आदिवासी मैना को हमारे पास लाया था। उस आदिवासी को भालू ने घायल किया था। दवाइयों के बदले में उसने वह मैना हमें भेंट में दी। उसके तीन छोटे बच्चे भी थे। अन्य समय आदिवासी जगदलपुर या नारायणपुर चले जाते हैं। वहां एक एक मैना के बच्चे के 300 रुपये मिलते हैं। हमें पता चला था कि अरब देशों में तो इस मैना की कीमत 5000 रु. तक है। मेरा तो अंदाज है कि मैना लेकर बस्तर जाते समय ही उस आदिवासी को रीछ ने पकड़ा होगा। दवाइयां और इलाज हमारे यहां निशुल्क हैं। हमने उसे मैना के एवज में अच्छे कपड़े दिये। मैना के बच्चे एक पिंजरे में

प्रकाश के घर में रखे। गर्मी वे सह नहीं पायेगें इसलिये उन्हें घर के भीतर रखा गया। दो महीने तक वे बढ़ती रहीं। वे हल्दी और चावल खाती थीं। लेकिन वे कुछ विशेष बोली ही नहीं थीं। नन्ही-नन्ही मैनाएं बड़े मजे से सीटी बजाती थीं। हमें बाद में पता चला कि मैनाएं एक साथ रखने पर बोलती नहीं। एक रात एक नाग मैना के पिंजरे में घुस गया। उनकी आवाज सुनकर प्रकाश जाग गया। तब तक नाग एक मैना का एक बच्चा निगल चुका था और दूसरा उसके मुंह में था। नाग को पकड़कर उनके पिंजरे से निकाला। मैना का पिंजरा घर से बाहर निकाला। तब तक नाग दो बच्चे निगल ही चुका था। दूसरे ही दिन पिंजरा साफ करते समय तीसरा बच्चा भी उड़ गया। फिर वह पकड़ में नहीं आया। वैसे, एक सप्ताह तक यह नन्ही मैना हमारे आसपास ही मंडराती रही।

दो भालू के बच्चे हमें जनवरी 82 में मिले। राजा और बाकी अन्य भालू अब बड़े हो गये थे। नये भालू रखने में खर्चे और जगह का प्रश्न था। आए हुए बच्चों को हम अस्वीकार नहीं कर पा रहे थे। लेने से मना करने पर वे फिर से वापस जंगल नहीं पहुंच पाते, बीच में ही मारे जाते। वैसे भी हमारे पाले हुए जानवर कम होते जा रहे थे। हमने एक नया प्रयोग करने का विचार किया। इन्हें अधिक स्नेह न देकर बड़ा किया जाए और फिर जंगल में छोड़ दिया जाए। उन्हें स्नेह देने से दो समस्याएं होती थीं। एक तो स्नेह होने से हम छोड़ नहीं पाते थे, और वे भी जंगल में छोड़ने के बावजूद फिर बस्ती के पास ही भटकते रहते और मारे जाते। इन बच्चों को पहले ही दिन के बाद दूध पिलाना बंद कर दिया। हाथ से भी छूना एकदम बंद। उन्हें पिंजरे में बंद रखा। दूध-भात के साथ उनका जंगली भोजन जैसे महुआ, ठेंभरू, दीमक और शहद हम उनको देते रहे। पिंजरे के पास जाते ही वे दूसरी तरफ जाकर, पिछले पैरों पर खड़े होकर जोर से चिल्लाते और हम पर झपटने का प्रयास करते। हमें जरा अजीब सा लग रहा था, लेकिन उनके भविष्य के लिये यह उचित ही था। मनुष्य से वे बहुत घबराते थे। उन्हें मनुष्य से दूर रहना अधिक पसंद था।

हिरनों के लिये बड़ा पिंजरा बनाने का काम सन् 81 में प्रारंभ किया। हमने इसे बहुत बड़े आकार का बनाने का विचार किया था। हमारी इच्छा थी कि यह 170 फुट लंबा और 120 फुट चौड़ा हो। नीचे दो फूट ऊंची ईटों की दीवार और उस पर चारों ओर से चेन-लिंक तरीके की लोहे की जाली खभों के सहारे लगी हो। जाली की ऊंचाई 11 फुट रखने का हमारा विचार था। भीतर एक पानी की टंकी हो और एक पत्रे का शेड भी। कभी कोई हिरन अधिक शरारत करने लगे तो उसे अंदर ही अलग हिस्से में रखने के लिये भीतर एक छोटा पिंजरा भी बनाने का विचार था। दो दरवाजे होंगे—उसमें से एक पैसेज में खुलेगा। सारे खर्च का अंदाज था आठ हजार रुपये। सदा की तरह गोंदिया के श्री कमलाकर कुलकर्णी द्वारा पूरे खर्च का भार उठाने से ही यह पिंजरा बनाना संभव हो सका।

भालू के बच्चे बड़ी तेजी से बढ़ रहे थे। उन्हीं दिनों हमारी सोमनाथ परिसर प्रकल्प

के लोगों ने एक मादा भालू की मांग की। बेन-लूसी उन्होंने ही हमें दिये थे। हमारे पास भालू के बच्चे होने की उन्हें खबर लगी थी। इससे पूर्व हमारे द्वारा दिया हुआ नर भालू गोट्या उनके यहां अब बड़ा हो गया था और उसी के लिये अब उन्हें एक मादा भालू की आवश्यकता थी। मादा भालू उन्हें दे दें और नर भालू को जंगल में छोड़ दें—हमने यह विचार कर 14 जून 82 को मादा भालू को गाड़ी से सोमनाथ भिजवा दिया। हमसे आत्मीय न होने से उसे गाड़ी के पिंजरे में बंद करने के लिये हमें दो घंटे प्रयास करना पड़ा। यहां केवल नर भालू अकेला रहा और हमने उसे स्नेह दिया ही नहीं था। इसलिये वह अकेला बहुत चिल्लाता रहता था।

एक धनेस पक्षी 17 जून को हमारे यहां लाया गया। हमारे पास पहले से एक बगुले के आकार की एक चिड़िया थी। फिर तीन मैनाएं 20 जून को आयीं। बड़ी दूर से बड़ा माड़ीया आदिवासी ये मैनाएं लाये थे। हम उनकी कीमत पैसों में नहीं चुका सकते थे। हमने नमक, मिट्टी का तेल, कपड़े वगैरा आवश्यक चीजें उन्हें दीं। इन वस्तुओं का मूल्य वैसे तो काफी कम था, लेकिन ये चीजें उन्हें पहाड़ियों में सुलभता से कभी नहीं मिलती थीं। इसीलिये इन चीजों का उनके हिसाब से बड़ा मूल्य था। मैना पालने का हमें पहले से अनुभव था ही।

इस बार मैना का पिंजरा जमीन पर न रखते हुए हमने ऊपर टांग दिया था। और फिर तीनों मैनाएं एक ही पिंजरे में न रख हमने उन्हें अलग-अलग रखा था। एक प्रकाश के यहां, एक मेरे घर और तीसरी दादा पांचाल के पास। प्रत्येक को उस पर ध्यान रखने में भी सुविधा होती थी। केवल चावल खाकर मैना ठीक से नहीं बढ़ती। इस कारण हमने उनके लिये नयी खुराक भी ढूंढ़ ली थी। चने की दाल का आटा, शहद और घी पानी एक जगह सानकर उसके बारीक, लंबे कीड़े जैसे आकर के टुकड़े बनाकर हम उन्हें देने लगे। पपीता, केला, भात पिंजरे में रखने लगे। भूखी मैनाएं चिल्लाकर खाना मांगतीं और यह खुराक पाकर तेजी से बढ़ने लगीं। छह महीने बाद वे तरह-तरह की आवाजें निकालने लगीं। लेकिन अभी तक यह पता नहीं चल पाया था कि वे बोलती हैं या नहीं।

नर भालू को वर्षा के मौसम में जंगल में छोड़ने का हमने विचार किया था। बरसात के मौसम में इस प्रदेश में बाहर से आनेवाले वाहनों का आवागमन बंद हो जाता है। आदिवासी लोग भी खेतों के काम में व्यस्त हो जाते हैं। वे दिवाली तक साधारणतया शिकार पर नहीं जाते। जंगल में दीमक, फल और पानी भी खूब होता है। भालू को जंगल की आदत हो जाये, इस विचार से हमने उसे एक दो बार जंगल दिखाकर वापस लाने का विचार किया। जून के अंत में वर्षा के आसार दिख रहे थे। एक-दो बार रिमझिम वर्षा हो चुकी थी। हम जानते थे कि जोरों की वर्षा जुलाई के दूसरे सप्ताह में प्रारंभ होगी। मैंने भालू को जीप के पिछले हिस्से में 27 जून को सुबह बंद किया। उसे लेकर मैं और प्रकाश चल पड़े।

सड़क छोड़कर हम इन्द्रावती के किनारे जंगल में घुसे। अब बैलगाड़ी के रास्ते भी समाप्त हो गए। अंत में पेड़ों और झाड़-झंखाड़ के कारण जीप आगे ले जाना संभव नहीं था। हमने जीप रोक दी और नीचे उतरे। जीप का पिछला दरवाजा खोल दिया था। फिर हम लोग दूर जाकर खड़े हो गये और देखते रहे। यह भालू पहली ही बार जीप गाड़ी में बैठा था, इसलिये घबराया हुआ था। वह उठकर बाहर नहीं आ रहा था। कुछ देर तक वह जंगल की गंध लेने के बाद नीचे उतरा। जीप में पीछे पायदान नहीं था। उसे उलटा होकर नीचे उतरना पड़ा। हमारी ओर देखते हुए वह पहले शांत खड़ा रहा। अब क्या करें? यह बात न उसकी समझ में आ रही थी न हमारे। वह हमें तो रोज ही देखता था। हम रोज के ही कपड़े--सफेद बनियान, सफेद निकर पहने हुए थे। कुछ क्षणों तक कुछ नहीं हुआ। जरा सी आवाज भी नहीं। इतने में एक टिटिहरी कर्कश आवाज करती हुई आयी और फिर ऊपर चली गयी।साथ ही हमारे पीछे लाल बंदर ने सावधानी के लिए दो-चार बार आवाज की। आवाजें सुनकर भालू जरा बेचैन हो ऊपर की ओर देखने लगा। टिटिहरी दोबारा चिल्लाई। फिर से बंदर ने और साथ ही भरदूल पक्षी चंडल ने आवाज दी। जब टिटिहरी को भरोसा हो गया कि जंगल के जानवर सावधान हो गये है, तब उसने लंबी आवाज करते हुए आगे उड़ना शुरू किया। यह अच्छा हुआ कि हमें बंदरों की सहायता मिली। वे आवाज न देते तो टिटिहरी हमारे सिर के आसपास मंडराते हुए चिल्लाती रहती और फिर भालू शायद बिफर जाता।

भालू टकटकी लगाये हमें देख रहा था। अब हम उसकी ओर जाने लगे। उसने मन में क्या सोचा पता नहीं, लेकिन वह मुड़कर उलटी दिशा की ओर दौड़ने लगा। जाता भी तो कितनी दूर जाता? उसे दौड़ने की आदत नहीं थी, इसी भरोसे से हम उसी दिशा में जाने लगे जिधर वह गया था। वह हमें सामने दिख रहा था। फिर घना जंगल आया और वह दिखाई नहीं दिया। हम दौड़कर आगे गये तो भालू दिखा। वह दीमक खाने में मग्न था। हमारी आहट से वह जरा चौंक गया। पिछले दो पैरों पर खड़ा होकर वह जोर से चिल्लाया। अब वह जंगल में रहने लायक हो गया था। उसने फिर से हमें पहचान लिया होगा, इसीलिये वह दिशाहीन होकर भागने लगा। हम फिर भी उसका पीछा करते रहे।

एक घंटे बाद हम थक गये। हम किस स्थान पर पहुंच चुके थे, यह हमें समझ नहीं आ रहा था। जंगल बहुत घना था। फिर हम एक जगह रुके। हम दिशा का अंदाज लेने लगे। ऊपर आसमान में काले बादल घिर आये थे। हम समझ नहीं पा रहे थे कि सूरज कहां है। जीप से करीब दो किलोमीटर दूर आ गये थे हम। हमने अब भालू का पीछा करना छोड़ दिया था। उसे तो हम बाद में भी जंगल में ही छोड़ने वाले थे, तो वह आज हो गया--हम ऐसा ही समझने लगे। अब सवाल था जीप तक वापस लौटने का। हम लोग नये जंगल में जाते समय एक नियम रखते थे। दाहिनी ओर की पेड़ों की शाखाएं तोड़ते चले जाते

थे। लौटते समय अपनी बायीं ओर देखने पर हमें भरोसा हो जाता था कि हम ठीक रास्ते से लौट रहे हैं। लेकिन आज भालू के पीछे दौड़ने में हम वह नहीं कर पाये थे। जंगल में हम भटक गये हैं, यह कल्पना ही बहुत संकटपूर्ण होती है। इस प्रकार के खतरे का अनुभव पिछले छह सात वर्षों में हमने दो-तीन बार किया था।

पिछले अनुभव की सीख ही काम में लाकर हम एक पेड़ के नीचे बैठ गये। वहां शांति से बैठकर हम नदी के पानी की आवाज सुनने की कोशिश कर रहे थे। हमें यह जानना था कि यह आवाज किस ओर से आ रही है। हमें नदी की ओर ही जाना था। नदी किनारे पहुंच जाने पर फिर जीप तक पहुंचना आसान था। यह विचार कर हमने दिशा तय की और उस ओर चलने लगे। इस बार दाहिनी ओर की पेड़ की शाखाएं तोड़ते चले गये। सुबह लगभग नौ-दस बजे का समय हो गया होगा। जंगल में दो बार हाथ की घड़ियां गिर जाने से इस बार याद करके हमने जीप से उतरते समय अपनी कलाई घड़ियां सीट के नीचे सुरक्षित रख दी थीं। अब अपने आपको ही कोसने लगे। दो-तीन किलोमीटर चलने पर भी जीप का पता नहीं चला। या तो हम उलटी दिशा में आ गये थे या दूसरी किसी ओर ही भटक गये थे। हमारे हाथ में कुल्हाड़ी भी नहीं थी। जंगल बहुत घना था। पगडंडी भी नहीं दिख रही थी। हम रास्ते में रुके। फिर अकस्मात ही याद आया। पिछली बार एक आदिवासी ने बातों ही बातों में हमें बताया था कि जंगल में रास्ता भूल जाने पर कैसे राह ढूंढ़नी चाहिये। इस जंगल में दीमक बहुत हैं। उनके घर (बांबी) बहुत दिखते हैं। ये बंबीरे आठ-दस फुट तक ऊंचे होते हैं, जैसे मंदिर के दस-बारह कलश उठे हों। इनके दो किनारे समतल होते हैं। यहां दो सपाट बाजू दक्षिण-उत्तर होते हैं। ये बंबीरे पूर्व-पश्चिम दिशा में बने होते हैं। अब उसमें पूर्व किधर और पश्चिम किस ओर है इसे जानने के लिये बांबी के कलश का ऊपरी हिस्सा जरा तोड़ना पड़ता है। साधारणतया हम यह नहीं करते थे लेकिन आज तो यह आवश्यक हो गया था। कलश का ऊपरी हिस्सा तोड़ने पर भीतर का भाग पोला होता है। उसके पूर्व की ओर की दीवार कम मोटी होती है। दिशा सही तरह तय करने के लिये हमें दो-तीन कलश तोड़ने पड़े। सही पूर्व दिशा मिल गयी। फिर हम पहली ओर न जाते हुए सही पूर्व दिशा की ओर चल पड़े। इन्द्रावती पूर्व में थी। पंद्रह मिनटों में ही नदी दिख पड़ी। जीप वहां से पांच मिनट की दूरी पर थी। इन्द्रावती के किनारे हम रास्ता भूलें, यह असंभव था। जीप भी दिख पड़ी और हमने दिशा पहचान की यह जानकारी देने वाले आदिवासी को मन ही मन हार्दिक धन्यवाद दिये।

जब जीप चालू की, तब ध्यान में आया कि हम भालू को जंगल में छोड़ने के लिये यहां आये थे। राह की तलाश के इन दो घंटों में हम उसे भूल चुके थे। मैंने घड़ी में देखा, पौने बारह बज रहे थे। बाद में हम दो-तीन दिन नदी पर आते रहे। लेकिन भालू कहीं नहीं दिखा। दो वर्षों बाद पल्ली गांव की यात्रा पर जाते समय कुछ लोगों को एक बड़ा

भालू रास्ते में दिखा। यह स्थान हमने भालू को जहां छोड़ा था उसके पास ही था। फिर भी यह कह नहीं सकते कि वह हमारा छोड़ा हुआ भालू ही था क्योंकि पहले से ही इस इलाके में भालू रहते आये हैं।

इस बार आई हुई मैनाएं ठीक तरह से बढ़ रही थीं। खुराब ठीक ही थी। तीनों मैनाएं अब अलग-अलग जगह पर थीं। प्रकाश के पास सदा ही आदिवासी लोग दवा लेने आते थे। उनके आपस के झगड़े निबटाने का काम भी बरामदे में ही होता था। अब उसे लोक अदालत आदि बड़े-बड़े नामों से जाना जाता है। बाहर से मेहमान भी आते रहते। हम में से कोई भी मैना को सामने रखकर उसे बोलना नहीं सिखाता था। उन्हें जो भी सुनाई देता वे वही बोलती थीं। प्रकाश के पास रह रही मैना की भाषा भिन्न-भिन्न प्रकार के मेहमानों को सुनकर अजीब सी हो गयी थी। माटुंगा जैसे भाग में रहनेवाला मराठीभाषी, बीस साल बाद जैसी हिंदी बोलता है, कुछ वैसी ही भाषा समझिये। यह मैना हिंदी, माड़ीया, तेलुगु, मराठी और अंग्रेजी सभी भाषाओं की खिचड़ी भाषा बोलती थी। जिसे इन भाषाओं का पता था, उसे सुनने में बड़ा मजा आता था। जब हममें से कोई भी बरामदे में नहीं हो या और कोई नया आदमी वहां आये तो उसे देख मैना "बेके मामा", "बातल मामा" जैसे प्रश्न माड़ीया भाषा में पूछती। इसका मतलब यह था, "मामा, इधर कहां? क्या चाहिए?"

हमारे दादा पांचाल पाठशाला में शिक्षक है। वह रहते भी पाठशाला के पास ही हैं। उनके यहां पाठशाला के आदिवासी विद्यार्थी आते ही रहते है। उनके यहां पल रही मैना बहुत ताकतवर थी। वैसे उनकी खुराक की गोलियां रोज सुबह एक साथ ही बनाई जातीं और तीनों घरों की मैनाओं को दादा का भाई बबन पांचाल ही भोजन देता था। लेकिन पांचाल के घर की मैना को पाठशाला के विद्यार्थी इस खुराक के अलावा और दूसरे फल देते रहते थे। वह मैना केवल माड़ीया आदिवासी भाषा ही बोलती थी। दादा के घर से ही भामरागढ़ का रास्ता दिखता था। आदिवासी बच्चों को ट्रक, जीप या कोई भी मोटर वाहन देखकर बड़ा आनंद आता है। यह रास्ता साल में छह महीने ही चलता है। कोई भी गाड़ी आने पर ये बच्चे चिल्लाते। उनकी देखा-देखी वह मैना भी दूर से ही आवाज आने पर "गाड़ी आ गयी, गाड़ी आ गयी" माड़ीया भाषा में चिल्लाती थी। यह तो सीधी- सीधी पाठशाला के विद्यार्थियों की नकल ही थी। माड़ीया भाषा में वह असली गालियां भी बहुत देती थी। किसी कारण आदिवासी दादा के घर आते तो इस मैना से मिलना नहीं भूलते थे।

मैंने मैना बरामदे में ही रखी थी। वह बहुत बोलती थी, किंतु केवल मराठी में ही। इसलिये उसका बोलना विशिष्ट लगता था। हमारी प्रकल्प के सभी लोग मेरे पास आते रहते थे। मैं उनसे बरामदे में बैठकर ही बातचीत करता था। वहीं सब सुनकर वह सारे वाक्यों को दोहराकर कहती थी। मेरे हंसने की नकल तो वह इतनी सही-सही उतारती

थी कि किसी को भी गलतफहमी हो सकती थी। एक बार मुंबई से जयश्री भाभी छुट्टियों में हमारे यहां आई हुई थीं। बंबई जैसे शहर से इधर इतने घने जंगल वाले प्रदेश में आने से वे कुछ डरी हुई भी थीं। हमारे यहां के तेंदुए, भालू आदि पिंजरे में बंद थे, लेकिन उनके मन में डर सा रहता कि वही जंगल से कोई जानवर न आ जाये? सभी को यह डर रहता है। वैसा ही डर उनके मन में भी घर कर गया था। आदिवासी जादूटोना भी करते हैं, आदि कई गलत धारणाएं भी उनमें होंगी। वे मैना की ओर पीठ किये हुए बरामदे में बैठकर कुछ पढ़ रही थीं। तभी पीछे से हंसने की आवाज आई। उन्होंने मुड़कर देखा तो वहां कोई नहीं था। मैं और भाई घर में ही थे। भाभी ने रेणुका से पूछा, "देवरजी क्यों हंस रहे थे?" रेणुका बोली, "नहीं तो।" तभी फिर से मैना मेरे जैसा हंस दी। जयश्री भाभी तुरंत उठकर भीतर आ गयी और मुझ से पूछ बैठी, "देवरजी, आप तो यहां अंदर है, फिर आप बरामदे में कैसे हंस रहे थे?" मैंने कहा, "मैं नहीं मैना हंस रही होगी।" उन्हें इस बात पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। मैं, मां और रेणुका हंसने लगे। तभी बाहर मैना तीनों के हंसने की नकल उतारने लगी। फिर उसने जब भाभी की ही नकल उतारते हुए मराठी में "देवरजी, देवरजी" कहा तो भाभी को विश्वास हुआ। दोपहर में हम सबके घर में होने पर मैना का बोलने का मूड़ होता था। बाहर से ताई, भाऊ, दाजी, ऐसी अलग-अलग आवाजें आने पर कई बार लगता कि गोविंद, शरद, तुकाराम, शांताबाई, रामचंद्र, नारायण वगैरा हमें बाहर से आवाज दे रहे हैं और हम फौरन बाहर आ जाते थे। रेणुका को सभी लोग ताई कहते थे। खेत पर काम करने वाले लोग मुझे दाजी कहते थे। एक दिन मेरे बाहर से आने पर मैना ने नारायण जैसी आवाज बनाकर दाजी कहकर आवाज दी। मैंने रेणुका से पूछा कि मैं जब घर नहीं था तो क्या नारायण घर आया था? फिर बात सही निकली। कहीं से भी घर आने पर मैना से पूछते ही वह अलग-अलग आवाजें निकालकर बता देती कि कौन-कौन आया था। रेणुका भी बाहर जाने पर मैना को बता जाती कि रसोई में जा रही हूं या पाठशाला ओर जा रही हूं, या कालोनी में जा रही हूं। फिर किसी के भी पूछने पर कि 'ताई कहां है?' मैना बराबर सारी खबर दे देती थी।

इन्द्रावती के किनारे पर बहुत सारी जंगली भैंसें दिखती हैं। जंगली गाय, बैल यानी गौर दिखते। जंगली भैसों को ही बायसन कहते हैं। इन्द्रावती के किनारे बस्तर वन विभाग ने उनके लिये एक अभ्यारण्य भी स्थापित किया हुआ है। शिकार के कारण उनकी संख्या भी काफी कम हो गयी है। मुंबई की बी.एन.एच.एस. संस्था के श्री दिवेकर ने, 77-78 वर्ष की उम्र होने पर भी यहां आकर कुछ शोध कार्य किया है। उन दिनों महाराष्ट्र प्रदेश में जंगली भैंसे नहीं दिखते थे। बोरीयां गांव से 10 नवंबर 82 को हमें खबर मिली कि भैंसे के बच्चे को शेर ने जख्मी कर दिया है, आप लोग आकर ले जाइये। हम वहां जीप लेकर गये। बड़े शेर ने ही पाड़े का शिकार करने का प्रयत्न किया था। जंगली भैसे का

यह पाड़ा भी काफी बड़ा था। उसके सिर पर गहरे जख्म थे। पाड़ा कितने दिनों से भूखा था यह समझ नहीं आ रहा था। उसके जख्मों में कीड़े पड़ने लगे थे। मैंने घर ले आने पर उसके जख्म धोकर साफ किये। हाथ से दूध पिलाना कठिन हो रहा था। हमारे यहां की घरेलू पालतू भैंसें उसे अपना पिलाने को तैयार नहीं थीं। स्वयं दूध पीने की उसमें शक्ति नहीं थी। फिर उसके मुंह में रबड़ नली डालकर उसे दूध पिलाया गया। लेकिन यह भैंसा केवल चार ही दिन जीवित रहा। शेर ने उसका पूरा सिर ही फोड़ दिया था।

मैं जनवरी 1983 में मैना को खाना दे रहा था। तभी कुछ माड़ीया लोग एक बड़ी टोकरी लेकर प्रकाश के घर जाते दिखे। मैं समझ गया कि कोई नया जानवर लाया गया है। मुझे लगा लाल मुंह का बंदर होगा। इतने में अनु दौड़ते हुए आया और बोला, "चलो जल्दी, बाबा बुला रहे हैं। तेंदुए के शावक आये हैं।" मैं एक क्षण के लिये एकदम मौन खड़ा रहा। बेन-लूसी आंखों के सामने आ गये। मैंने सोचा, चित्तेदार तेंदुए के ही शावक होंगे। पट्टेदार बाघ के शावक मिलना यहां असंभव था। मैं प्रकाश के यहां गया। वहां मैंने देखा कि तेंदुए के ही दो शावक थे। तेंदुए का एक शावक प्रकाश की गोद में था तथा दूसरे को मैंने उठा लिया। तब तक लोग भी वहां जमा हो गये थे। प्रकाश के पास नर था। मैंने देखा, मेरे पास जो शावक था वह मादा था। दोनों की आंखें अभी पूरी तरह खुली नहीं थीं। शायद नाभि-नाल भी अभी-अभी ही सूखी थी। शायद पहली जनवरी आसपास उनका जन्म हुआ था। कोसफुंड़ी गांव हमारे प्रकल्प से 10-12 कि.मी. दूर है। मुख्य सड़क से वह बहुत अंतर पर है। तीनों ओर पहाड़ और घने जंगल हैं। वहां तेंदुए हमेशा रहते हैं। क्या इन शावकों की मां मारी गई है? इस प्रश्न का उत्तर हमारे पास नहीं था। पहाड़ की गुफा में मादा ने अपने बच्चे दिए थे। ये लोग मादा के शिकार ढूंढ़ने बाहर निकलने पर वहां गये और ये बच्चे उठा लाये थे। ये लोग कह रहे थे कि मादा ने ही जंगल में इन शावकों को छोड़ दिया था। कभी-कभी वैसा होता भी है। उन लोगों की इन शावकों के बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। "यदि शावक जीवित रह गये तो हम फिर आयेंगे"—इतना कहकर वे वापस लौट गये थे।

हमें तेंदुओं को पालने का अनुभव पहले से ही था। किंतु इस बार यह बड़ी जिम्मेदारी लगती थी। लूसी-बेन तो कुछ बड़ी उम्र में आये थे। किंतु ये शावक बहुत ही छोटे थे। जिस आयु में बच्चों के लिये मां और उसका दूध आवश्यक होता है, उन्हीं दिनों मां से बिछड़कर वे यहां आये थे। उनकी मां जैसी देखभाल करनी अत्यावश्यक थी। मैंने दूध की छोटी बोतल बनाई। उन्हें दूध पिलाना हमें कठिन नहीं लग रहा था। एक बार वे बोतल से दूध पीने लगे तो फिर वे बड़े होकर हमें बहुत स्नेह देने वाले थे। उन दोनों ने थोड़ा-थोड़ा दूध पिया। वे भूखे थे। उनके नितंबों के भाग गंदे थे। मां होती तो चाटकर साफ कर देती। मैंने गिला कपड़ा लेकर उन्हें साफ किया। नाखून नुकीले थे। तेंदुए के बच्चे प्रारंभ में नाखून

बाहर निकाले रहते हैं। यह मां को पकड़े रखने के लिए बाहर रहते होंगे। दूध पिलाते समय नाखून न लगें, इसलिए चारों पैर तौलिए में लपेट कर उन्हें दूध पिलाया जाता था। पहली बार में ही वे अन्य जानवरों के समान निप्पल चूसकर दूध पी गये। लेकिन लूसी-बेन तो निप्पल चबा जाते थे।

ये शावक अपने चारों पैरों पर नहीं चल पा रहे थे। उनका पेट जरा जमीन पर घिसटता था। नर का वजन पांच सौ ग्राम था, मादा का केवल तीन सौ अस्सी ग्राम। वे दो दिनों से भूखे थे शायद। बस्तर के लोगों ने इन्हें पकड़कर कोसफुंड़ी गांव में अपने रिश्तेदारों को दिया होगा। गांव के पास ही मादा के जीवित होने पर उनके बच्चे लाने का जोखिम माड़ीया लोग नहीं लेते, यही सोचकर ऐसा लग रहा था। कुछ भी हो हमारी बहुत दिनों की इच्छा पूरी हुई थी। इन बच्चों का जीवित रहना बहुत आवश्यक था। प्रकाश बहुत चिंतित लग रहा था। अभी तो उन्हें पिंजरे में रखने का प्रश्न ही नहीं था। जहां तक संभव हो इन्हें तेंदुओं वाले पिंजरे में न रखना पड़े, यही इच्छा थी। हमारे प्रकल्प के सभी छोटे बच्चे इनसे बहुत खुश थे। बड़े लोग कुछ नाराज थे। बड़े होने पर ये एक मुसीबत बन जायेंगे। ऐसा हुआ हो हम इन्हें किसी संग्रहालय को दे देंगे। हो सकता है कि ये जीवित ही न बचें। इन्हें खून दिया, तभी ये बच पायेंगे। चावल रोटी खाकर जीवित रहने वाले ये कोई भालू तो हैं नहीं। "सभी लोग उनके नाखूनों से सावधान रहो—कहीं नाखून न लगें। वे तुम्हारे खून का स्वाद लग जाने पर बाद में तुम्हें ही फाड़ खायेंगे"—आदि-आदि ऐसी कई बातें हम दिन भर सुनते थे। इनके बड़े होने पर इन्हें हाथ नहीं लगा पायेंगें इसलिये कई लोग अभी ही हाथ लगाकर खुश हो लेते थे। कुछ लोग हलके थप्पड़ भी मार देते थे जिससे वे बूढ़े होने पर अपने नाती-पोतों को शान से बता सकें, "मैं शेर को भी थप्पड़ मार सकता था।"

मेरी आंखों के सामने लूसी-बेन आ रहे थे। हम उनकी यादें दोहरा रहे थे। दिन में अधिक समय मैं प्रकाश के ही घर रहता था। ये शावक भी प्रकाश की खाट पर ही रहते थे। दोनों एक दूसरे को पकड़े रहते थे। यह अच्छी बात थी। दोनों को ही एक दूसरे का साथ था। बीच-बीच में एक के दूर जाते ही दूसरा म्यांव-म्यांव चिल्लाने लगता। पेट के बल घिसटते हुए दूर गया हुआ शावक फिर पास आ जाता था। पहले दिन उनको चार बार दूध पिलाया। नर एक समय में सौ से डेढ़ सौ मि.ली. दूध पीता था। मादा सौ मी. ली. तक पीती थी। मादा अधिक लड़खड़ाती थी। वह कोशिश करती, हाथ पैर मारती, लेकिन वह कमजोर थी।

दूसरे दिन सुबह-सुबह जल्दी ही उन्हें दूध दिया। दोनों ने टट्टी-पेशाब किया। उनकी मां जो उन्हें चाट कर करती, वही हमने उन्हें हाथों से खुजलाकर किया। एक बार फिर हमने तसल्ली कर ली कि एक नर है और दूसरी मादा। नर के पेशाब करते समय भी उसका

नरत्व पहचानना कठिन होता है। प्रारंभ के साल डेढ़ साल तक नर और मादा पेशाब करते समय एक समान ही पिछले पैर मोड़ कर झुका लेते हैं। हमने अनुभव किया है कि इस प्रकार पहचानना कठिन होता है। जानवरों के डाक्टर के लिये भी चीते और बाघ के नर-मादा की तुरंत पहचान कठिन होती है। अभी तक प्रकाश ने कई मौकों पर तेंदुए और बाघ के गुप्तांग को पहचानकर उनके नाम बदलने को बाध्य किया है। उनमें से तीन तो विभागीय वन अधिकारी और वनसंरक्षकों के यहां पल रहे थे। पहला सोफिया का सूफी हो गया, यह चीता था। दूसरा राजीबाई से राजा हुआ जो अब हमारे पास ही है। तीसरा शेरी अब शेरू बाघ हो गया है। अमरावती क्षेत्र में एक चीता नरभक्षी हो जाने पर सन् 1981 में बड़े तामझाम के साथ पिंजरे में बंद किया गया। उसका बहुत ढिंढोरा पीटा गया। पिंजरे में ही पंद्रह दिनों के बाद उसने दो बच्चों को जन्म दिया। तब यह पता चला कि वह मादा है। यह गलती बड़ी महंगी साबित हुई क्योंकि वह मादा है और गर्भवती है, यह पता न होने से वैसी व्यवस्था नहीं की गयी थी। पहले ही दिन एक बच्चा पानी की टंकी में गिरकर मर गया। यह खबर अधिक फैल नहीं पायी। ऐसी बातें फैलने भी नहीं दी जातीं। उसके विपरीत हम अपने बच्चों के समान स्नेह देकर जानवरों को संभालते हैं। वह गैरकानूनी करार दिया जाता है। हमारे विरुद्ध मुकदमा चलाने की धमकियां वन विभाग के अधिकारी देते रहते हैं तथा उस प्रयास में लगे भी हुए हैं। जंगल में मिले जानवरों के अनगिनत बच्चों का क्या होता है? उनमें से कितने जीवित रहते हैं, कितने मर जाते हैं? जीवित रहने पर उनका क्या हाल होता हैं? यह कोई नहीं पूछता। जैसे वन अधिकारी और वन विभाग का जो मन चाहे वह करने का उन्हें अधिकार है। वन्य प्राणियों के प्रेमी और वार्डन ऐसे समय अपना मुंह बंद क्यों रखते हैं? इन बातों का स्पष्टीकरण होना ही हितकर रहेगा।

शावकों का तीसरा दिन भी ठीक बीता। दूध पीने में प्रगति हो रही थी। हमें मादा की चिंता थी क्योंकि वह बहुत कमजोर थी। चौथे दिन ही मादा को पतले दस्त होने लगे। नर ठीक था। तेंदुए को सारा शरीर चाट कर साफ रखने की आदत बचपन से ही रहती है। वे दोनों बच्चे साथ ही रहते थे, इसलिये वे एक दूसरे का शरीर चाटते रहते थे। अब साथ रखने पर यदि नर मादा का शरीर चाटता तो उसे छूत से दस्त लगने का डर था और अलग रखने पर वे चिल्लाकर आसमान सिर पर उठा लेते। आज तो नर का स्वास्थ्य ठीक था। प्रकाश डाक्टर है, उसने दोनों को ही अपच के लिये दवाई देना प्रारंभ किया। दवाई पिलाना भी एक बहुत बड़ा काम ही था। दूध में दवा देने पर दवाई की गंध के कारण वे दूध ही नहीं लेते थे। तेंदुए को गंध का ज्ञान बहुत अधिक होता है। यह हमें अनुभव से पता था। हमें बाद में भी यही अनुभव हुआ। फिर हम जबरदस्ती मुंह खोलकर चम्मच से गले में दवाई डालने लगे। हमें उनके नाखून लगते थे। नसीब से उन्हें दांत आना शुरू ही हुआ था। इसलिये काटने जैसी ताकत उनमें नहीं थी। जानवरों का डाक्टर यहां से साठ

मील दूरी पर आहेरी गांव में रहता है। फोन लिया सन् 86 में। तब तो फोन भी नहीं था। फिर दोपहर में ही चिट्ठी देकर एक आदमी को वहां भेज दिया। लेकिन वह ट्रक की राह देखते हुए रात होने तक सड़क पर ही खड़ा रहा। यहां पर बरसात के बाद अभी रास्ता दुरुस्त नहीं हुआ था, इसी कारण अभी नियमित आवागमन प्रारंभ नहीं हुआ था। यह चौथा दिन था।

पांचवा दिन और खराब रहा। नर को भी दस्त शुरू हो गये। मादा बगैर हिले-डुले पड़ी रही। स्वयं दूध पीना भी उसके लिए असंभव हो गया था। मैंने दोनों को दवाई दी तथा मादा को चम्मच से दूध पिलाया। नर स्वयं दूध पी रहा था। फिर दोपहर में मादा को सलाइन दिया। डाक्टर अभी तक नहीं आये थे। उनसे पहले कभी संपर्क नहीं हुआ था। वे भी अपने स्थान पर नये ही नियुक्त हुए थे। हमारे यहां इतने सारे जानवर थे, लेकिन हमने उन्हें कभी नहीं बुलाया था। न वे स्वयं ही यहां आये थे।

हमारा आदमी आहेरी पहुंचा। डाक्टर वहां थे। लेकिन वे कहने लगे कि कभी उन्होंने तेंदुए को दवा नहीं दी है। यह सच ही था। आखिर उनकी बहुत अनुनय की। उन्हें बताया कि डाक्टर आप चलिये, नहीं तो वह बच्चा मर जायेगा। तब उन्होंने, "तेंदुए का बच्चा है? कितना बड़ा है?" इत्यादि कई प्रश्न किये। उन्हें बताया गया कि तेंदुए का शावक एकदम छोटा है। उसके दांत भी नहीं हैं और उसकी मां भी पास नहीं है। सारी बातें बताने पर डाक्टर जीप लेकर आये। वह छठा दिन था। नर शावक को दस्त होते रहने पर भी वह वैसे ठीक ही था। वह कुछ चल-फिर भी रहा था, दूध भी पीता था। मादा शावक जीवित रहेगी या नहीं, इसका संदेह था। कल से सतत् लगातार सलाइन पर रहने से ही वह अभी तक जीवित थी। डाक्टर ने पहले तो दूर से ही बच्चों को देखा। जब हमने उन्हें बताया कि हम तो इन बच्चों को यों ही हाथ में उठा लेते हैं, तब उन्होंने उन्हें हाथ लगाकर देखा तथा दवाई भी दी। दवाइयां तो वहीं थीं जो हम उन्हें दे रहे थे। तेंदुए को भैंस का दूध हजम नहीं होगा, इसलिये इन्हें बकरी का दूध देने को कहकर वह वहां से चले गये। तेंदुए के बच्चे को बकरी का दूध? इस कल्पना से ही हमें हंसी आ गई। लेकिन हमें तो किसी भी तरह इन शावकों को जीवित रखना ही था। इसलिये इन्हें बकरी का दूध देने लगे। इस बकरी के दूध से उनकी प्रकृति और दांतों पर जो प्रभाव पड़ा, उसे कई वर्षों तक नर बच्चे को भुगतना पड़ा।

डाक्टर तो आकर चले गये मगर दूसरे ही दिन मादा शावक मर गयी। परंतु नर ठीक था। उसके दस्त कम हो गये थे। रात भर वह अपनी बहन को ढूंढ़ता रहा। रात में उसने भी दूध पीना बंद कर दिया। ऐसा होने का हमें भी अनुमान था। जबरदस्ती उसे दूध पिलाया। रात भर आवाज करते हुए वह शावक चिल्लाता रहा। रात भर चिल्लाने से वह थक गया और सुबह सो गया। सप्ताह भर वह ऐसे ही चिल्लाता रहा, फिर भूल गया। उसके दस्त

भी ठीक हो गये थे। उसका दूध पीना भी ठीक चल रहा था। वैसे तेंदुए का शावक होने के हिसाब से वह कमजोर था। महीने भर बाद भी उसका वजन एक किलो ही था। बाद में तो इसी का बच्चा, जो हमारे ही यहां अपनी मां के दूध पर पला था, एक सप्ताह में ही एक किलो वजन का हो गया था। इसका तो जन्मते ही वजन केवल साढ़े चार सौ ग्राम था। फिर पंद्रह-बीस दिन ठीक बीते। अब उसे नाम देना था। आवाज देने पर समझने लगा, पर वह अब बड़ा हो गया था। माड़ीया आदिवासियों की भाषा में तेंदुए को 'नेगल' कहते हैं। इसीलिये इस नर तेंदुए का नाम हमने नेगल ही रखा। कई लोगों को यह नाम अंग्रेजी लगता है।

मादा के मरने पर नेगल बिल्कुल अकेला रह गया हमारे यहां उन दिनों पिंकी और टिनी नाम के पामेरियन जाति के कुत्तों का जोड़ा आया था। पिंकी टिनी से सशक्त और खिलाड़ी स्वभाव का था। नेगल पिंकी के साथ रहने लगा। नेगल के दांत और नाखून बड़े नुकीले थे। पिंकी उसे अपने साथ खिलाता। नेगल के दांत या नाखून लगने पर पिंकी भौंकता। नेगल इस आवाज से डरकर कहीं छिप जाता। छिप कर बैठना और जब असावधान हो तब उस पर झपटना, यह नेगल अपने आप ही सीख गया था। एक बार इसी तरह वह पिंकी पर झपटा, पिंकी ने भी चिढ़कर नेगल को पकड़ लिया। हमने पिंकी को एक थप्पड़ मारकर फिर ऐसा न करने के बारे में समझाया। फिर कभी पिंकी ने नेगल को इस तरह नहीं पकड़ा। मौका आने पर पिंकी केवल जोर से भौंककर नेगल को दूर भगा देता था। बाद में नेगल शरीर से बहुत बड़ा हो गया। फिर तो पिंकी का नेगल को पकड़ने का सवाल ही नहीं बचा था। लेकिन इतना तगड़ा हो जाने पर भी पिंकी के भौंकने पर नेगल घबराकर भाग खड़ा होता था। उसका यह भागना इतना दयनीय लगता था कि मेहमान भी उस बात का आनंद लेकर हंस देते थे। लेकिन मुझे इस बात से बहुत दुख होता था।

फरवरी की 7 तारीख से नेगल की तबीयत फिर बिगड़ गयी। उसे फिर से दस्त होने लगे। इसलिये हमने बकरी का दूध देना भी बंद कर दिया। पंद्रह दिन तक तो ऐसा लगता रहा कि वह जीवित ही नहीं रहेगा। उसकी दवाई चल रही थी। आठ दिन से वह केवल सलाइन पर ही था। प्रकाश ने इन आठ दिनों में उसकी बहुत सेवा की। वह रात-रात भर जागता रहा। मैं, और दादा पांचाल उसकी सहायता करते रहे। तीनों साथ बैठकर उसी के संबंध में सोचते रहते थे। हमने तय किया कि इसे मरने नहीं देना है। सोमनाथ प्रकल्प को पत्र भेजकर, वहां भेजे हुए सुअर हमने फिर बुलवा लिये। गोश्त हजम करने लायक उसकी हालत नहीं थी। इसलिये कुछ दिनों तक हमने उसे दूध के साथ गोश्त का सूप देने की सोची। सुबह एक घंटा खराब कर हमने एक चूहा पकड़ा। मैं और प्रकाश शाकाहारी थे। दादा तो पूरा वैष्णव, सदा तुलसी की माला धारण करने वाला। उस कारण हम पर बड़ा धर्मसंकट आन पड़ा। फिर भी नेगल के लिये हमने सब नियम-धर्म ताक पर रख दिए।

पहले मैं पुणे में शिकार खेला करता था। वह अनुभव अब काम आया। मैंने चूहे की चमड़ी उबालकर उसका सूप बनाया। नेगल ने सूंघकर बड़े चाव से सूप पी लिया। अब हमारा रोज एक चूहा पकड़ने का कार्य प्रारंभ हुआ। अनु इस काम में मेरी सहायता करता था। एक दिन सूप पिलाने के बाद उसके उबले हुए टुकड़ों में से एक दो टुकड़े मैंने नेगल के सामने रखे। उसने फौरन वे निगल डाले। दो दिन हम चिंता करते रहे कि नेगल ये गोश्त के टुकड़े हजम कर पायेगा या नहीं। लेकिन उसे कुछ नहीं हुआ। नेगल भाग्यशाली था कि उसी सप्ताह हमारी बिल्ली ने एक मुर्गी पकड़ ली। चूंकि तुकाराम वहां पास ही खड़ा था इस वजह से बिल्ली उसे ले जा नहीं सकी। उसके हाथ एक थप्पड़ खाकर बिल्ली भाग गयी , लेकिन मुर्गी मर गयी । मैंने मुर्गी साफ की। करीब दो सौ ग्राम गोश्त का कीमा किया और नेगल को कच्चा ही खाने दिया। नेगल उसे कुछ ही मिनटों में निगल गया। बाकी बची मुर्गी मिट्टी के तेल से चलने वाले फ्रिज में रख दी। अब तो नेगल रोज ही गोश्त हजम करने लगा। मुर्गी का गोश्त चार दिनों तक चला। फिर एक बतख मार कर उसका गोश्त खिलाया। दूध भात एक थाली में उसके सामने रख देते। नेगल अब बोतल से दूध पीने में आना-कानी करता था।

मार्च में हमारी टिनी पामेरियन कुतिया ने बच्चे दिये। तीन बच्चे थे। एक दिन प्रयोग के तौर पर टिनी के बच्चों के साथ प्रकाश ने नेगल को भी टिनी का दूध पिलाने की कोशिश की। पहले दिन तो टिनी ने जरा नाराजगी जाहिर की, लेकिन बाद में वह अपने बच्चों के साथ नेगल को भी दूध पिलाने लगी। फिर तो हर रोज ही तीन बार नेगल टिनी का दूध पीने लगा। उसी समय हमारे पास पिसूरी हिरनी का एक छौना भी लाया गया। उन्हीं दिनों कुछ विदेशी मेहमान भी हमारा प्रकल्प को देखने आये थे। नेगल, जंगली गिलहरी, और कुत्ते के पिल्लों को एक साथ टिनी का दूध पीते हुए उन्हें दिखाया। उन्हें बेहद अचंभा हुआ। उन्होंने उस दृश्य के फोटो भी खींचे। हमारे मित्र श्री भास्कर भट्ट ने ये सारे फोटो पूरी जानकारी के साथ अखबारों में छपवाये। हमारे द्वारा पाले गये जंगली जानवरों की तस्वीरों को पहली बार समाचारपत्रों में स्थान मिला था।

अब नेगल अच्छी तरह बढ़ रहा था। पूरे तीन महीने का होने पर अब उसका वजन चार किलो हो गया था। नेगल के ही लिए टिनी के दो छोटे बच्चे हमने तभी दूसरी जगह भेज दिये। केवल एक टिपू नाम का नर बच्चा रख लिया था। नेगल और टिपू, टिनी का ही दूध पीकर साथ-साथ बड़े हो रहे थे। टिपू अभी भी हमारे साथ है।

मार्च के महीने में नेगल सेहत से और अच्छा होने लगा। उसे थोड़ा गोश्त रोज मिलता ही था। छिपकर घात लगाना, झपटना, ऐसे खेल वह खेलने लगा। हम लोग उसे नाम से आवाज देते तो वह समझ जाता था। मुझे, प्रकाश, दादा पांचाल और मनोहर येम्पलकर हम चारों को वह अच्छी प्रकार से पहचानता था। इसलिए वह हमारी सुनता भी था।

मोक्षदा-अनु तो उसे हाथों में उठा लेते थे। उस समय प्रकाश की लड़की आरती पांच महीने की थी। प्रकाश उसे और नेगल को साथ-साथ ही गोद में उठा लेता था। एक बगल में नेगल, दूसरी बगल में आरती। प्रारंभ से ही दोनों साथ रहते थे। नेगल जब अन्य लड़कों के साथ खेलता तो उन्हें उसके नाखून लगते, लेकिन आरती से उसका असीम प्यार था। उतना हमसे भी नहीं। आरती से वह जितने अधिक प्यार से संभलकर खेलता था उतना हमसे भी नहीं। आरती के शरीर की गंध लेते ही वह उसे चाटने लगता। सभी को इस बात से बड़ा डर लगता था, लेकिन प्रकाश का उस पर बहुत विश्वास था। प्रकाश दोनों को ही अपने साथ रखता था। नेगल को छोटे बच्चों से खेलना बहुत अच्छा लगता था। जब वह देखता कि मोक्षदा-अनु उसकी तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं तो नेगल उनके पास दौड़कर जाता और उनके पैरों को अपने पंजों में पकड़ लेता था। लेकिन आरती उसके पास सोई हो या लेटी हो, तो ऐसे में उसने आरती को पकड़ने का प्रयास कभी नहीं किया। अप्रैल में वह चार मास का हो गया था। गोश्त खाने का परिणाम उसकी सेहत पर दिखने लगा था। उसकी चाल में अब शान दिखने लगी थी। उसका वजन साढ़े पांच किलो हो गया था तथा उसके शरीर पर घने बाल आ गये थे। रंग में भी पहले से ज्यादा चमक आने लगी थी। वह अधिक नटखट भी हो रहा था। फिर प्रकाश के घर में एक कमरा उसी को अलग से दे दिया गया। दिन भर वह खुला ही रहता था। प्रकाश के दवाखाने जाते समय उसके साथ नेगल भी जाने लगा था। सुबह बगीचे में वह खुला ही घूमता रहता था। टट्टी-पेशाब वह बाहर जाकर ही करता था। उसने बगीचे की मेहंदी में छिपकर बैठना और पास से जाने वालों पर झपटने का खेल बाहर भी प्रारंभ किया था। यह वह समझ गया कि हम में से किसी के द्वारा शरारत करते हुए पकड़ने पर उसे कमरे में बंद कर दिया जाता है। इसलिये हम चारों में से किसी के भी आवाज देने पर वह मेहंदी की झाड़ी से बाहर ही नहीं निकलता था। फिर हमने एक चतुराई करने की सोची। जब हम मेहंदी के बाहर उसकी ओर पीठ करके जाते तो वह बड़ी शान से छिपते हुए दुबक कर आता और हमारी पीठ पर झपटता। उसके पीठ पर आते ही हम उसे पकड़कर कमरे में बंद कर देते थे।

सुबह बगीचे में खेल लेने के बाद नेगल दिन भर प्रकाश के घर में एक कमरे में बंद रहता था। शाम को प्रकाश, दादा और मैं उसे बाहर घुमाने ले जाते थे। हमारे यहां 22 मार्च को येवरी गांव से एक जंगली भैंसा आया। पहले जो भैंसा आया था वह जंगली भैंसा बाघ के द्वारा घायल होने के कारण जीवित नहीं बचा था। अब जो भैंसा आया था वह जंगली भैंसा बड़ा था और जख्मी भी नहीं था। उसे नाम दिया 'राजा'। वह रोज चार लीटर दूध पीता था। कोई भी भैंस उसे दूध पिलाने को तैयार नहीं थी। फिर हम एक बड़े डिब्बे में दूध रखकर रबड़ की नली से सायफन पद्धति अपनाकर दूध उसके मुंह में देने लगे। वह इस नली को मुंह में पकड़कर चूसता रहता। वह ऐसा समझ रहा था कि चूसकर खींचने

से दूध आ रहा है। आगे वह इसी प्रकार पांच महीने तक दूध पीता रहा। दूध पिलाने के लिये पहले उसके मुंह में हाथ देना पड़ता था। साथ ही सायफन की नली उसके मुंह में खिसकाकर फिर हम हाथ बाहर निकाल लेते थे। इसलिए वह केवल प्रकाश को ही मानता था। प्रकाश के न होने पर दादा पांचाल से दूध पीता था। मुझे वह अच्छी प्रकार से पहचानता था, फिर भी मेरे हाथों से उसने कभी दूध नहीं पिया। मई महीने में उसे गर्मी के कारण कष्ट होने लगा। जंगली भैंसे हमेशा नदी के पास रहते हैं और बहुत अधिक समय तक नदी में ही बैठे रहते हैं। एक दिन दोपहर मेरे आवाज देने पर राजा बरामदे में आया। धूप बहुत तेज थी, इसलिये मैंने एक बाल्टी भर पानी उसके सिर पर डाल दिया। वह इतना खुश हुआ कि पूछो मत। नीचे जमा हुए पानी में ही वह बैठ गया। फिर मैंने दो चार बाल्टियां भर-भर कर उस पर और पानी डाल दिया। दूसरे दिन से यह जंगली भैंसा राजा रोज दोपहर में हमारे आंगन में आने लगा। किसी दिन जब मैं उसे बाहर नहीं दिखता तो वह आवाज देकर मुझे बुलाता। दो-चार बाल्टी पानी से तो उसे संतोष नहीं होता था, लेकिन पानी की कमी होने से मैं कुछ अधिक पानी इस्तेमाल नहीं कर सकता था। रोज शाम नेगल के साथ राजा भी घूमने आता था। रानी भालू के बाद अब नेगल के बहुत लाड़ होते थे। घूमने जाते समय हम उसे सड़क तक गोद में उठाकर ले जाते। नाखून न लगें, इसलिए उसको चारों पैरों से उठा लेते थे। अब उसका वजन भी बढ़ रहा था। दादा पांचाल उसकी सेहत बढ़ाने का काम कर रहे थे। पहले छह महीने दादा ने इस नेगल और राजा को खूब प्यार किया। एक तो उन दिनों पाठशाला बंद थी और दूसरे दादा को स्वयं ही जानवरों से हमारे जैसा ही प्यार था।

नेगल और राजा साथ-साथ बढ़ रहे थे। घूमने जाते समय दोनों ने कभी एक दूसरे को नहीं छेड़ा। राजा जरा पीछे ही ढीली चाल से आता रहता था। फिर हमारे आवाज देने पर इतनी तेजी से दौड़ता आता कि हम भी घबरा कर एक ओर हो लेते। हमारे पास पहुंचते ही वह अपना 70-80 किलो का भारी-भरकम शरीर एकदम ब्रेक लगाकर कैसे रोकता, हमारी भी समझ में नहीं आता। नेगल कभी-कभार उसके बदन पर छलांग लगाकर चढ़ता, लेकिन इससे अधिक छेड़खानी उसने कभी नहीं की। राजा उसे आराम से कुचल सकता था। यदि कभी वह हमारे पास आता तो हमें केवल हल्का सा धक्का देता था, लेकिन यह धक्का वह प्यार जताने के लिये ही देता था। लेकिन हमारे लिये यह प्यार का प्रदर्शन भी थोड़ा कष्टदायी ही होता। उसे सींग निकलने लगे थे। फिर हम इन निकल रहे दो सींगों को पकड़ कर उसकी टक्कर को रोकने का प्रयास करते थे। हमारा एक बैल 22 जून को मर गया। अभी तक हम नेगल को मुर्गी, चूहे, खरगोश और बकरी का गोश्त दे रहे थे। मई के प्रारंभ से ही रोज आधा से एक किलो तक मांस यदि हमारे पास हो तो खिलाते ही थे। मुर्गी-चूहों की कोई समस्या नहीं थी लेकिन खरगोश रोज मिलना संभव नहीं था।

बकरी देना बहुत खर्चीला पड़ता था। हम लोग सोमनाथ से सुअर ले आये थे। उन्हें हमने अपनी कोठी और अन्य छोटे केन्द्रों पर पाल-पोसकर बड़ा करने के लिये रखा था। अगले वर्ष वे हमारे ही काम आने वाले थे। हम नेगल को बकरी, मुर्गी जो मिले सो मारकर खिलाते थे। हमें स्वयं उन्हें काटने में कोई लज्जा या घृणा नहीं आती थी। लेकिन अपने मरे हुए बैल को काटकर साफ करने के लिये कोई तैयार नहीं हो रहा था। फिर हमारे प्रकल्प में ही रहने वाले लोगों ने उस मरे हुए बैल को जंगल में ले जाकर डाल दिया। मैंने सोचा, उसका बहुत सारा मांस लाकर मिट्टी के तेल से चलने वाले फ्रिज में रखने पर वह काफी दिनों तक टिकेगा। ऐसा विचार कर कुल्हाड़ी लेकर जंगल गया तथा उस मरे हुए बैल की पिछली दोनों टांगें काटकर ले आया। फिर छुरी से उस मांस के छोटे टुकड़े कर मैंने फ्रिज में रख दिये। यह देखने पर सबको अचंभा हुआ, लेकिन नेगल को बढ़िया तरीके से बड़ा करना ही मेरा प्रमुख ध्येय था। बैल का मांस नेगल को अच्छा लगा और वह काफी दिनों तक चला। बैल मरा हुआ होने पर भी नेगल को उसके मांस के खाने में कोई कष्ट नहीं हुआ। लूसी-बेन के मरने के बाद से ही हम आगे आने वाले तेंदुओं के शावक पालने के लिये पैसे जमा कर रहे थे। लेकिन अब नेगल के लिये बकरी की कीमत दो सौ, ढ़ाई सौ रुपये और सुअर की तीन सौ, चार सौ रुपये लगती थी। यह बात हमें तब पता चली जब खरीदने गये और जब पता चला तब तक इकट्ठा किये पैसे भी समाप्त होने को आ गये थे। फिर मैंने जो किया उसमें गलत क्या था? मरे हुए जानवर आसपास कहीं हों तो हमने वहां जाने का निश्चय किया और सभी आसपास के गांवों में वैसा संदेश भी भिजवा दिया।

साधारण तौर पर जंगल में रहते हुए तेंदुए साल भर में दो बार बच्चे देते हैं। एक बार जनवरी में और दूसरी बार जून से अगस्त के बीच। जुलाई में हमें संदेश मिला कि आल्लापल्ली के जंगल में एक तेंदुए का बच्चा मिला है और वह मादा है। नेगल को भी साथ चाहिये था और वह मादा थी। हम उसे लाने के लिये प्रयास करने लगे, लेकिन सफल नहीं हुए क्योंकि वहां के विभागीय वन अधिकारी श्री नकवी ने स्वयं ही उसे अपने घर पर रखकर पालने का विचार किया था। उसके पिंजरे और खाने का खर्चा शासकीय खजाने से होना था। जुलाई में एक बार कुछ काम से प्रकाश नागपुर जाते हुए आल्लापल्ली में नकवी साहब के यहां गया। हमारे द्वारा पाले हुए जानवरों और तेंदुए के बारे में वे सब जानते थे। प्रकाश का वहां पर अच्छा स्वागत हुआ। उन्होंने 'सोफिया' मादा तेंदुआ घर में ही रखी थी। वे उसे रोज ही गले में रस्सी बांध कर बाहर निकालते थे। चार नौकर डंडे लेकर उसके चारों ओर चलते थे। प्रकाश को यह सब दिखाया गया। सोफिया पंजा आगे बढ़ाकर प्रकाश से खेलने लगी। श्रीमती और श्री नकवी जरा घबराये। "बुरी बात, बुरी बात," कहकर उन्होंने सोफिया को फटकारा। सोफिया भी यह सुनकर दूर हो गयी। उस दम्पत्ति की बात मानने की उसकी आदत थी। प्रकाश ने उन्हें बताया कि गले में रस्सी

न बांधते हुए केवल पूंछ पकड़कर भी तेंदुए के शावक को घुमा सकते हैं। इस बात पर उन दोनों को विश्वास नहीं हुआ। तेंदुओं के विषय में प्रकाश बहुत अनुभवी था। उसने उसी समय सोफिया की पूंछ पकड़कर उसे उन्हीं के बगीचे में घुमाकर दिखाया। उसे फिर उन्हें सौंपते हुए प्रकाश ने कहा, "सोफिया तो लड़की का नाम होता है ना? और यह तो नर है।" सभी पहले तो हंस दिये, लेकिन बाद में प्रकाश ने सोफिया को पीठ के बल केवल सुलाकर बता दिया कि वह मादा नहीं, नर ही है। और कहा कि, "उसके अंडकोष अभी थोड़े-थोड़े दिखने लगे हैं। दो महीने बाद और ठीक तरह से उभर कर दिख पड़ेंगे।" इतना कहने पर वे सब मान गये। इतने दिन मादा समझकर जिसे संभाला, वह नर निकला। फिर सफाई देते हुए उन्होंने कहा, "हमारी कोई गलती नहीं। ढोर-डाक्टर ने जो कहा, हम उसे मान गये। चलो आज ही से हम उसे सूफी कहकर पुकारा करेंगे।" फिर सब उसे सूफी कहने लगे।

इस मुलाकात से एक फायदा हुआ। उन्होंने प्रकाश को बताया कि "चंद्रपुर में इतने ही बड़े दो तेंदुए हैं। अब नर हैं या मादा आप ही देखकर पता लगा लें। यदि मादा हो तो आप मराठे साहब से बात कीजिये। शायद मिल जाय।" प्रकाश वहीं से चंद्रपुर चला गया। वहां तेंदुए का एक शावक पिंजरे में मोटी सांकल से बांधकर रखा गया था। वहां पर कोई अधिकारी नहीं मिला । पिंजरे में हाथ डालकर प्रकाश तेंदुए से खेलने लगा। यह तेंदुआ बहुत कमजोर था। यहां आने पर उसे किसी ने हाथ ही नहीं लगाया होगा। तेंदुए को हाथ से सहलाने पर अच्छा लगा, वह खेलने लगा। "अरे, कौन है? मरना चाहते हो क्या?" दूर से ही एक आदमी चिल्लाते हुए आया। प्रकाश को तेंदुए से खेलते हुए देखकर वह चपरासी वहीं रुक गया। उसने प्रकाश से परिचय प्राप्त किया। इतने वर्षों में हमारे जानवरों का नाम सभी ओर फैल चुका था। परिचय पाते ही उसने पिंजरा खोलकर तेंदुए को बाहर निकाला। वह भी नर ही था। इसके साथ वाला दूसरा बच्चा किस लिंग का है और कहां है? उसे इसका कोई पता नहीं था। उस दिन रविवार था। कोई अधिकारी मिलना संभव भी नहीं था। प्रकाश वहां से नागपुर चला गया।

मई 83 तक नेगल काफी बड़ा हो गया था। अब उसे संभालना बहुत कठिन हो रहा था। पूंछ पकड़ते ही वह सीधा खड़ा हो जाता। वह समझने लगा था कि पूंछ पकड़ते ही उसका अपने कमरे में जाने का समय हो गया है। फिर वह स्वयं ही कमरे की ओर चल देता था। कभी-कभी उसका और भी खेलने का मन होता था। फिर हमारे पूंछ पकड़ने पर वह जमीन पर औंधा लेट जाता और हमें ही पकड़ने लगता। हमारे पास समय होने पर हम उसके साथ खेलते भी थे। न होने पर उसे ले जाकर कमरे में बंद कर देते थे।

मई महीने के अंत में एक शाम मैं, दादा, राजा और नेगल घूमने निकले। नेगल किसी के भी पीछे पड़ जाता था, इसलिये उसे सड़क पर नहीं ले जाते थे। यहां पर माड़िया

आदिवासियों के खेत उन दिनों खाली पड़े थे। जंगल के किनारे-किनारे हम खेतों में घूमते थे। जंगली भैंसा राजा आराम से डोलता हुआ आ रहा था। मैं और दादा गप्पें मारते हुए एक साथ आगे चल रहे थे। नेगल एक किनारे ही चल रहा था। कभी सामने जाकर खेतों की बाड़ की आड़ में छिप जाता, कभी हमारे पास पहुंचने पर छलांग लगाकर हम पर कूदता, फ़िर वापस चला जाता। जब राजा हमसे बहुत पीछे रह गया तो मैंने आवाज दी। फिर तो राजा फौरन ही गुर्राकर चीखते हुए दौड़ आया। नेगल को पता नहीं क्या सूझी। उसने चुपके से दुबक कर जंगली भैंसे पर छलांग लगायी। भैंसा जरा चौंका और एकदम बेकाबू हो गया। नेगल दूर जाकर गिरा। वह घबरा कर साथ वाले जंगल में भाग गया। वह हमें दिख रहा था। राजा पास आया, हमें जरा धकिया कर फिर इधर-उधर चारा ढूंढ़ने चला गया। हम वहीं खड़े बातें कर रहे थे। हमें विश्वास था कि नेगल खुद वापस आयेगा। थोड़ी देर तक उसके न लौटने पर हम, जिधर वह गया था, उस ओर जाने लगे। हमें अचानक खूब सारे जानवरों के भागने की आवाज आयी। शाखाएं टूटने की, पेड़ों की पत्तियां कुचलने की आवाजें भी आयीं। गर्मी के मौसम के कारण इस गांव के जानवर खुले ही छोड़ दिये जाते थे। क्या हुआ होगा, हमें इसका अंदाज हो गया। नेगल जानवरों के पीछे दौड़ पड़ा होगा। वह कहीं भी भटक सकता था, इस कारण हम उस ओर दौड़ पड़े। एक सूखे तालाब में दस-बारह भैंसे खड़े थे। नेगल कहीं नहीं दिख रहा था। भैंसे बहुत भड़के हुए थे। सभी के मुंह एक ही दिशा में थे। नजरें, क्या हो रहा है, यह देख रही थीं। उसी समय उन भैंसों में से दो भैंसे सिर नीचे किये एक पेड़ की ओर दौड़ने लगे। वे उस पेड़ को टक्कर मारने लगे जिस पर नेगल चढ़कर बैठा था। वह पहले से ही बहुत घबराया हुआ दिख रहा था। मुझे अब सब समझ में आ गया। राजा समझकर नेगल इस झुंड़ में से किसी भैंसे पर झपटा होगा। सभी के मिलकर सामना करने पर वह पेड़ पर चढ़कर बैठ गया। हमने पहले तो सभी भैसों को वहां से भगाया। भैंसे बहुत चिढ़े हुए थे। वे अधिक दूर न जाकर बार-बार उस पेड़ की ओर ही लौटना चाहते थे। जब तक भैंसे पास रहेंगें तब तक नेगल नीचे उतरने वाला नहीं था। भैंसों को बहुत दूर तक भगाकर हम लौटे तो हमने देखा कि नेगल पेड़ की आड़ी वाली शाखा पर बैठा था। हम उसे नीचे बुलाने लगे। वह यह जांच रहा था कि भैंसे दूर चले गये हैं। इस बात का भरोसा हो जाने पर उसने नीचे आने के प्रयास प्रारंभ किये। पहले तो वह घबराहट और डर के कारण तुरंत पेड़ पर चढ़ गया होगा। पेड़ का तना बहुत मोटा था। अब वह नीचे नहीं उतर पा रहा था। बाघ, तेंदुआ, सिंह इन तीनों में तेंदुआ सब से अधिक आसानी से पेड़ पर चढ़ जाता है। कई बार वह अपना शिकार भी पेड़ पर चढ़ाकर रखता है। हमारा नेगल अभी छोटा था। पेड़ पर भी चढ़ता था। लेकिन इतने बड़े पेड़ पर पहली ही बार चढ़ा था। पिछले पैंरों को नीचे जमाकर वह अपने नुकीले नाखूनों का प्रयोग कर नीचे उतर सकता था। लेकिन उसके दिमाग में वह बात नहीं आ

रही थी। वह मुंह नीचे कर उतरने का प्रयास कर रहा था और उतर न पाने की वजह वह घबरा कर फिर ऊपर चला जाता था। अंत में मेरी पीठ पर चढ़कर दादा पेड़ पर चढ़ा।

उसने नेगल को अपने पास बुलाया। यह सब करने के पहले हमने ठीक से विचार नहीं किया था। नेगल एकदम आकर दादा से चिपक गया। वह बहुत घबराया हुआ था। उसने दादा को कसकर पकड़ लिया था। दोनों एकदम नीचे गिरते, लेकिन बच गये। फिर दादा ने जरा कसरत करते हुए उसे नीचे छोड़ना शुरू किया। मैंने उसके पीछे के पांव पकड़ लिये। दादा ने उसे एकदम पीछे से धकेल दिया। तने को पकड़ते हुए वह नीचे आकर जमीन पर हल्के से गिर पड़ा।

जुलाई में नेगल अच्छा बड़ा हो गया था। जुलाई के अंत में उसका वजन 14 किलो हो गया। अब उसे उठा पाना मुश्किल था। लेकिन वह बहुत अच्छी तरह खेलता था। कभी नाखून नहीं निकालता था। चिढ़ने पर ही वह अपने नाखूनो से नोंचता था। बरसात प्रारंभ हो गयी थी और सभी तरफ खेतों में काम चल रहा था। इसलिये हमनें उसे बाहर घुमाने ले जाना बंद कर दिया था। सुबह केवल बगीचे में ही उसे खुला छोड़ते थे। दिनभर तो नेगल प्रकाश के घर के एक कमरे में बंद रहता ही था। प्रकाश दोपहर में आरती को लेकर उस कमरे में बड़ी देर तक रहता था। आरती प्रकाश की गोदी में होती और नेगल पास ही में खेलता रहता था। आरती से नेगल का स्नेह बढ़ रहा था। आरती को बचपन में उससे कोई डर नहीं लगता था। वह आरंभ से ही कभी उसके कान खींचती, तो कभी उससे मुंह में हाथ डालती थी, कभी उसकी पीठ पर बैठकर उसे घोड़ा बनाकर उससे खेलती रहती। आरती की शैतानी नेगल चुपचाप सह लेता था।

नेगल की खुराक अब पहले से बढ़ गयी थी। हम लोग उसे रोज ही गोश्त देते थे। कभी-कभी आसपास के इलाके में बैल, भैंस मरने पर उसका मांस लाकर फ्रिज में भर देते थे। हमारा सहयोगी मुकुंद दीक्षित पास के गांव में दवाखाना चलाता था। वह भी हमारी सहायता करता था। महीने दो महीने में एक बार तो वह पंद्रह बीस किलो गोश्त किसी के हाथ भेज ही देता था। जानवर कहीं न कहीं मरते ही रहते थे। हम पास के गांवों के सुअर पालकर बढ़ा रहे थे। कुछ न मिलने पर सुअर खरीदकर काटते थे। प्रारंभ में हम उसकी चमड़ी फेंक देते थे। आंतें भी नहीं लेते थे। जुलाई में ही दो-चार दिन नेगल ने ठीक से खाना नहीं खाया। उसके पेट में शायद कीड़े हो गये होंगे। यह सोचकर मैंने उसे गोलियां दीं। नेगल स्वभाव से भला था, लेकिन वह प्रकाश के हाथ से ही खाता था। प्रकाश उसे अपने हाथ से गोश्त का एक-एक टुकड़ा खाने को देता था। इसी कारण उसे दवाई देने में भी कोई कठिनाई नहीं हुई। उसे गोश्त के बड़े टुकड़े में एक गोली छुपाकर दे देते थे। तेंदुए अधिकतर गोश्त नहीं चबाते, निगल जाते हैं। हां हड्डी चबाकर बारीक कर फिर निगलते हैं। गर्दन, घुटने, जांघ की हड्डियां वे केवल चूसते हैं। बाकी सब हड्डियां चबा लेते हैं। इनकी

पाचनशक्ति इतनी जबरदस्त होती है कि दूसरे दिन उसके मल में हड्डी का केवल सफेद पाउडर ही मिलता है। नेगल के दांत पीले पड़ गये थे। बचपन में मांस न मिलने और बकरी का दूध पीने का ही यह परिणाम होगा। नेगल को विटामिन की गोलियों के बदले चमड़ी, आंते, हड्डियां वगैरा अधिक मात्रा में देने लगे। इसमें हमारा भी लाभ था। सुअर-बकरी मारने पर उसका बड़ा हिस्सा पहले बेकार जाता था, अब वह भी उपयोग में आने लगा। बालों के साथ ही चमड़ी खाने से उसका पेट भी साफ रहने लगा था।

रोज सुबह नेगल को बगीचे में छोड़ने पर वह दो-तीन घंटे तक वहां खेलता रहता था। पेड़ पर चढ़ना, वहां से शाखाएं तोड़ना, उसे बहुत अच्छा लगता था। छिपकर बैठना और वहां से विद्यालय के बच्चों का पीछा करना भी चलता रहता था। जब भी वह झपटने लगे तो केवल चुपचाप खड़े रहने पर वह अपने अगले पैरों से सामने वाले के पैरों से लिपटता और फिर वापस चला जाता। उसकी यह आदत पता होने पर भी कुछ लोग तुरंत खड़े न रहकर डरकर भाग खड़े होते। यदि वह सामने वाले को नहीं पकड़ पाता तो फिर उसे पकड़ने के लिये उसके नाखून बाहर आ जाते और उसके परिणाम स्वरूप कपड़े फटना, नाखून लगने से खून निकलना आदि घटना हो जाती। इस कारण सुबह सभी लोगों का बगीचे के आसपास आना ही बंद हो गया था। घंटा भर बगीचे में खेलने के बाद नेगल मेरे आंगन में आता। अमरूद और आम के पेड़ों से उसे बड़ा लगाव था। वहां से फिर पास के पपीते के पेड़ पर चढ़कर वह मेरे घर की खिड़की में आता था। रेणुका से वह अच्छी तरह परिचित था। वह उससे नहीं घबराती, यह भी उसे पता था। खिड़की में बैठकर इसका पता कर लेता था कि क्या रेणुका वहां है। फिर रसोई के दरवाजे पर आता। रेणुका उसे एक बर्तन में पानी देती थी। थोड़ा पानी पीकर, बाकी वहीं लुढ़काकर वह नीचे उतरता। हो सके तो रेणुका से छेड़खानी करता। सावधान होने पर भी उसके आसपास मंडराता रहता और उसके द्वारा सिर थपथपाने पर वह पास के कमरे में चला जाता। पलंग के नीचे नेगल के लिये ही एक तकिया रहता। उस तकिये को मुंह से उठाकर नेगल साहब पलंग पर चढ़ जाते थे। वह तकिया नेगल ने कई बार फाड़ दिया था, लेकिन हर बार रेणुका ने उसे फिर से सीकर रख दिया था। पलंग पर लंबा लेट कर वह फिर जरा करवटें बदलता। उसने अन्य गद्दे या तकिये कभी नहीं फाड़े। वहां एक आईना लगी अलमारी थी। वह आईने में रोज देखता और अपने प्रतिबिंब पर झपटता। आईने से मुंह टकराने पर वह पलंग के नीचे जाकर अपने पंजे से मुंह सहलाता रहता था। फिर पिछले दरवाजे से वह बरामदे में जाता। मेरे घर में होने पर भी वह पिछले बरामदे में आता था। पीछे से आकर मुझ से लिपटने में उसे बहुत अच्छा लगता था। उसके दोनों पांव पकड़कर उसे नीचे गिरा देने पर वह वहीं लेट जाता। जब मैं कंघी से उसके बाल साफ किया करता तब वह बड़े मजे से पड़ा रहता। मेरे घर के पीछे ही हिरनों का बड़ा पिंजरा है। बरामदे से वह हिरनों और

नीलगाय को निहारता रहता। एकदम दोनों कान पीछे दबाकर वह दुबक कर बैठ जाता और पिंजरे की जाली पर कूद पड़ता। वहां से गोदाम के पीछे जाता, जहां काजू के पेड़ लगे हैं, और फिर गैरेज के पीछे पहुंचता। वहीं हमारी बावड़ी यानी छोटा तालाब है। वर्षा में वहां मेंढक कूदते-फिरते हैं। वह उनके पीछे भी भागता। तब तक मैं और दादा या प्रकाश उसकी पूंछ पकड़ कर उसे याद दिलाते कि अब उसके घूमने की अवधि समाप्त हो गयी है। वह फिर जरा नाराजगी से अपने कमरे की ओर चल देता।

जुलाई के महीने में नेगल सोलह किलो का हो गया था। हम लोग उसे उठाकर, कांटे पर खड़ा कर उसका वजन करते थे। दोपहर में उसके कमरे में जाने पर वह मेरे ऊपर झपटता था। मुझे पकड़कर गिराने का वह सदा ही प्रयास करता था। लेकिन काटता या खरोंचता बिलकुल नहीं था। कुछ भी हो, प्रकाश से वह बड़ी शालीनता से खेलता था, लेकिन मेरे साथ तो वह मस्ती ही अधिक करता था।

जुलाई की 20 तारीख को प्रकाश को बरोरा जाना पड़ा। नेगल बड़ा हो गया था। मैं, दादा तथा मनोहर उसके परिचित थे। हमें रोज सुबह उसे बाहर छोड़ना होता था। एक बार बगीचे में जाने पर दो घंटे तक उस पर दूर से ही नजर रखना काफी था। उसे छोड़ते समय पूंछ पकड़ी हो तो ठीक, नहीं तो घर में घुसकर वह खूब उधम मचाता। फिर से वापस लाते समय वहीं से पूंछ पकड़कर कमरे में ही लाया जाये, इसका पक्का इंतजाम करना होता था। जिस दिन प्रकाश गया, दादा ने उसे खाने को दिया। उसने गोश्त खाया, लेकिन वह धीरे-धीरे और थोड़ा-थोड़ा खा रहा था। दूसरे दिन सुबह मैं उसके कमरे में गया। वह सदा की तरह मुझसे खेल लेने के बाद पूंछ पकड़ते ही वह बाहर निकला। लेकिन वह प्रकाश के कमरे की ओर चला दिया। वह इस तेजी से जा रहा था कि मुझसे उसे रोकना मुश्किल हो गया। मेरे हाथ से उसकी पूंछ छूट गयी। मैं उसके पीछे दौड़ पड़ा। मुझे लगा कि अब नेगल कहीं जाकर कुछ चीर फाड़ करेगा। मुझ से पहले ही वह प्रकाश के कमरे में पहुंच गया था। वहां और कुछ न करते हुए वह शांति से इधर-उधर देख रहा था तथा गंध ले रहा था। वह प्रकाश को ढूंढ़ रहा था। कमरे में इधर-उधर घूम कर वह गंध लेता रहा। फिर आरती के पलंग के पास गया तथा गंध लेकर खड़ा रहा। मैं उसके पीछे गया और उसकी पूंछ पकड़ी तथा कहा, "चलो नेगल, प्रकाश बाहर गांव गया है, सप्ताह भर बाद वापस लौटेगा।" मैंने उसके सिर पर थपथपाया। उसने एक बार मेरे पांवों पर अपना सिर रगड़कर ऊपर देखा। उसकी नजर में जरा नाराजगी थी। लेकिन वह शांति से मुड़ गया और बिना कोई गड़बड़ किये आराम से बगीचे में चला गया। प्रकाश के प्रति उसके मन में असीम प्यार है और वह हमारी कही हुई बातें भी समझ जाता है, इस बात का प्रथम अनुभव मुझे उस दिन हुआ। प्रकाश के लौट आने तक वह मेरे साथ मुझसे बड़े प्यार से पेश आता रहा। मेरे हाथ से वह ठीक से खा भी रहा था। बाद में भी फिर जब कभी प्रकाश

नहीं होता तो वह मेरे साथ भी वैसा ही नम्र व्यवहार करने लगा। उसके बाद जिस आदर के साथ वह प्रकाश के साथ हमेशा व्यवहार करता था वैसा ही आदर भरा व्यवहार मुझसे भी करता रहा।

अगस्त की एक तारीख को प्रकाश वापस लौट आया। खुशी की बात यह थी कि वह नेगल के लिये घरवाली लेकर आया था। प्रकाश अपने साथ डेढ़-दो महीने का तेंदुए का जो बच्चा लाया था वह मादा थी। उसे मनुष्य के साथ-संग की कोई आदत नहीं थी। वह कहीं भी जगह देखकर छिप जाती थी। बरोरा से वापस आते समय प्रकाश चंद्रपुर रुक गया था। तेंदुए का पहला नर शावक मुंबई भेज दिया गया था, लेकिन उसकी बहन चंद्रपुर में ही थी। प्रकाश वन संरक्षक अधिकारी श्री खेड़करजी से मिला। खेड़करजी पहले इस प्रकल्प पर आ चुके थे। उन्होंने हमारे यहां के जानवर भी देखे थे। उस समय नेगल छोटा था। प्रकाश ने उन्हें बताया कि नेगल अब वयस्क हो रहा है। उसे मादा का साथ चाहिए। उसका अकेला रहना अच्छा नहीं। "आप भी तो अपने यहां रखा हुआ मादा बच्चा किसी जानवर संग्रहालय को दे ही देंगे, फिर हमें ही क्यों नहीं दे देते?" प्रकाश के खेड़करजी से अनुरोध करने पर वे बोले, "किसी शासकीय जानवर संग्रहालय को हम उसे वैसे ही दे सकते हैं। लेकिन आप को देने पर किसी अशासकीय व्यक्ति को देना होगा। वह तो बिलकुल गैरकानूनी होगा। मैं वरिष्ठ अधिकारियों को लिखता हूं, और अनुमति मिलने पर फिर आपको दे दूंगा।" लेकिन मुंबई-पुणे से अनुमति आने तक वह बच्चा बहुत बड़ा हो जाता। फिर हम उसे हाथ भी न लगा पाते। प्यार से जानवर को पाल-पोसकर बड़ा करना ही तो हमारा उद्देश्य था तथा उसी का प्रयोग हम कर रहे थे। फिर चर्चा चलने पर प्रकाश ने कहा, "यह मादा तेंदुआ हमारे पास शासकीय सम्पत्ति के रूप में रहेगी। इतना ही नहीं, उसे होने वाले बच्चे आप या शासन कभी भी हमसे ले जा सकते हैं। मैं यह लिखकर देने को तैयार हूं। फिर आप जब भी इसे वापस ले जाना चाहेंगे ले जा सकेंगे। हम उसे संभालने के लिए किसी प्रकार का खर्चा भी नहीं मांगेगे, यह भी मैं लिख देता हूं।" खेड़करजी ने कुछ विचार कर वह सब लिखवा लिया और मादा शावक प्रकाश को दे दिया। उसी का नाम रखा 'नेगली', और वह आज भी हमारे पास है।

नेगल के पास नेगली को छोड़ने में जरा डर लग रहा था। नेगली केवल तीन किलो वजन की थी। नेगल बारह किलो वजन के भारी भरकम शरीर वाला था। सबसे पहले प्रकाश ने नेगली को हाथ में लेकर नेगल को उसकी गंध लेने दी। नेगल ने गंध लेने के बाद लंबी सांस खींचकर मुंह ऊपर उठाकर जरा विचार किया। मैंने नेगली को नीचे छोड़ दिया। नेगल ने उसकी पूंछ की ओर से नेगली की गंध ली। इतने में वह तुरंत समझ गया कि यह मादा है। नेगली झट पास ही अलमारी के नीचे छिप गयी। थोड़ी देर तक हम वहीं कमरे में बैठे रहे। नेगली दो बार बाहर आयी, लेकिन नेगल ने उस पर हमला करने का

प्रयास नहीं किया।

कमरे का दरवाजा बंद हो जाने पर भी उस कमरे की एक खिड़की प्रकाश के घर के दूसरे कमरे में खुलती थी। इसे खुला रखने पर भी कोई खतरा नहीं था क्योंकि उसे बड़ी जाली लगाकर सुरक्षित किया गया था। इसलिए उसे बंद करने की जरूरत नहीं थी। वहीं सामने ही प्रकाश का पलंग था जहां से प्रकाश भीतर नजर रख सकता था। शाम तक नेगली कई बार बाहर निकली। लेकिन नेगल ने केवल गंध लेने से अधिक कुछ नहीं किया।

दूसरे दिन नेगल के साथ नेगली को भी बगीचे में छोड़ दिया गया। उसने मल-मूत्र बगीचे में ही किया। हम चाहने लगे कि उसकी भी नेगल जैसी ही अच्छी आदत हो जाये तो अच्छा हो और उसे वैसी आदत हो भी गयी। नेगल ने इतने दिनों में कभी घर में गंदगी नहीं की थी। बगीचे से वापस आने पर प्रकाश गोश्त की रकाबियां लेकर कमरे में गया। हम भी वहां पहुंचे। नेगल सदा की ही तरह शांत था। नेगली तो केवल गंध आने पर ही बड़ी जोर से अलमारी के नीचे से बाहर निकली, उसने वहीं से प्रकाश पर झपट्टा मारकर रकाबी ही नीचे गिरा दी। बिखरे हुए गोश्त के टुकड़े खाते हुए वह गुर्रा रही थी। पहले इसे शायद बहुत कम गोश्त मिलता हो। उसका यह व्यवहार हमारे लिये एकदम नया था। उसके गुर्राने से नेगल भी थोड़ा घबराया हुआ था। नेगली ने अपने हिस्से का गोश्त खत्म किया और फिर नेगल की रकाबी की ओर बढ़ी। वहां भी वह गुर्राते हुए ही पहुंची। गुर्राहट से घबरा कर नेगल एक तरफ हो गया। एक बात पक्की थी कि नेगल की ओर से उसे कोई डर नहीं था। थोड़ा सा और गोश्त खाकर वह दूर हट गयी। कोने में बैठकर अपने पांव मुंह पर फेरते हुए वह उसे साफ करने लगी। इसी बात से हमें उसके गोश्त का कोटा समझ में आ गया। मुंह साफ करते-करते वह सो गयी। फिर नेगल ने प्रकाश से मांग कर और गोश्त खाया। हम लोग दूसरे दिन से नेगली को अधिक मात्रा में मांस देने लगे। प्रकाश नेगली को पहले पकड़े रखता, फिर मैं, दादा प्लेटें लेकर अंदर जाते तथा एक कोने में रकाबियां रख देते, फिर प्रकाश उसे छोड़ता। वह गुस्से में जाकर एक पांव से रकाबी दबाये रखती और फिर गोश्त खाती। लगभग महीना भर यह सब चलता रहा और उसके स्वास्थ्य में भी सुधार हुआ। एक महीने में ही उसका वजन बढ़कर चार किलो हो गया। बाद में यह विश्वास होने पर कि उसे भरपेट गोश्त मिलता है, वह शांति से खाने लगी थी। लेकिन जब वह खाती थी, तब उसने हमें कभी पास नहीं आने दिया। अगस्त का महीना अच्छा रहा। अब तो नेगली शरीर को हाथ लगाने देती थी, लेकिन वह खुद अधिक पास नहीं आती थी। उसके बिलकुल विपरीत, नेगल को सदा ही कोई न कोई पास चाहिए था। गोद में बैठना, पीछे से गले में अगले पैर डालकर सिर के बाल मुंह में डालना आदि बराबर चलता रहता था।

सितंबर में जंगली भैंसा राजा बीमार लगने लगा। अभी भी वह कुछ खाता नहीं था। केवल दूध पीकर ही रहता था। वैसे तो वह ठीक तरह से बढ़ रहा था तथा उसके शरीर पर बाल भी अच्छे उग आये थे। लेकिन उसे पतला मल होता था। मैंने उसके लिए दवाई दी। भिन्न-भिन्न प्रकार का चारा, पेड़ों की पत्तियां हम रोज लाकर उसे खाने के लिये डालते रहे। वह खुला ही रहता। तालाब में पानी भी खूब था। जिसमें वह पड़ा रहता था। लेकिन पहले की तरह अधिक समय तक वह नहीं बैठता था। मुझे उसके बालों में पिस्सू दिखे। बी.एच.ओ. पाउडर डाला, लेकिन उसे कहीं वह चाटे नहीं, इस बात का ध्यान रखना पड़ा। थोड़ी देर बाद दवा धो डाली। फिर भी पिस्सू कम नहीं हुए, इसलिये उसके बाल ब्लेड से मूंड़ डाले। इसके लिये दस ब्लेड और चार आदमियों को सारा दिन लग गया। उसे पहले ही से कभी नहीं बांधा था। उसकी मर्जी से हम धीरे-धीरे बाल साफ कर रहे थे। वह दिन भर घूमता रहा और उसके पीछे हम भी लगे रहे। दो-चार दिन तक वह बहुत ही विचित्र दिखा। फिर धीरे-धीरे उसने दूध पीना बंद कर दिया तथा उसका पेट फूला हुआ रहने लगा। जानवरों के डाक्टर को बुलवाया। उन्होंने दवाई दी। उससे भी कुछ आराम नहीं हुआ। हमारा जंगली भैंसा 'राजा' 22 सितंबर को मर गया। हम सभी का वह बड़ा लाड़ला हो गया था। हमें दुख तो हुआ ही, मगर मन कड़ा करके मैंने एक लाड़ले का दूसरे लाड़ले के हित के लिए उपयोग करने का निश्चय किया। मैंने उस भैंसे को काटा और मांस फ्रिज में भर दिया। उसका मांस बीस दिनों तक चलता रहा। उसका गोश्त खाकर जीने वाला नेगल सामने स्वस्थ खड़ा था। यही उसकी यादगार थी। हमें बाहर से कोई सहायता नहीं मिल रही थी। पैसों की कमी महसूस हो रही थी। जानवर काटना आदि अब रोजमर्रा के काम हो गये थे। आसपास के लोग हमारी जाति पर उंगली उठाकर हमें कोस रहे थे। हम मांस खाते नहीं थे और गोश्त खाने वाले ही हमें सीख दे रहे थे। हमारे लिए तो नेगल को जीवित रखना ही सबसे महत्वपूर्ण बात थी।

नेगल-नेगली ठीक प्रकार से बड़े हो रहे थे। नेगल वजन में बीस किलो और नेगली ग्यारह किलो की हो गयी। वे दोनों रोज ही सुबह घूमने जाते थे। वैसे नेगली हम सब से अलग-अलग ही रही। खुद अपने आप घर कभी नहीं आयी। इतने दिनों से बगीचे में मुर्गियां दिखने पर भी नेगल ने कभी मुर्गी नहीं पकड़ी थी। लेकिन नेगली ने मुर्गी और कबूतर पकड़ना शुरू कर दिया था।

अक्तूबर मास में एक दुर्घटना होते-होते टली। सुबह हमेशा की तरह नेगल-नेगली खुले ही घूम रहे थे। साधारण तौर पर विद्यालय के विद्यार्थी वहां नजदीक नहीं आते थे। एक दिन भूले-भटके विद्यालय की दो लड़कियां न जाने कैसे उधर आ गयी। नेगल हमेशा की तरह खेल में छिपकर घात लगाये बैठा था। लड़कियों के पास आते ही वह उन पर झपट पड़ा। जिस लड़की पर वह कूदा था वह वहीं गिर पड़ी। दूसरी "नेगल-नेगल" चिल्लाते

हुए वहां से भागने लगी। नेगल नीचे गिरी लड़की को छोड़, भागने वाली लड़की का पीछा करने लगा। लड़की जोर से चिल्लाई। मैं, प्रकाश और मनोहर दौड़कर बाहर आये। नेगल ने उस लड़की को भी पटक दिया था और वह कहीं छूट न जाये, इसलिये उसकी गर्दन पकड़ने ही जा रहा था कि एक ही साथ हम तीनों ओर से "नो, नो" चिल्लाते भागे, जिससे वह दूर हट गया। उस लड़की की गर्दन में थोड़ा सा दांत लगा था। केवल दवाई लगाने पर दो दिन में वह ठीक हो गयी। फिर चार दिन बाद हमारे नागपल्ली प्रकल्प से एक आदमी आया। हमारे नेगल के द्वारा एक लड़की को मार डालने की अफवाह वहां पहुंच चुकी थी। अब हम सावधान हो गये थे। इन तेंदुओं की व्यर्थ ही बदनामी न हो, इसलिये उन्हें सुबह अकेला छोड़ने के बदले प्रकाश, मैं, दादा तथा मनोहर में से कोई न कोई उनके साथ रहने लगा और थोड़ी देर बाहर रखकर हम उन्हें फिर बंद कर देते थे। उनकी पूंछ हाथ की पकड़ में आ सके, बस उनसे हम इतना ही अंतर रखते थे। फिर आधे घंटे बाद ही हम उन्हें बंद कर देते। उन्हे कमरे में धूप नहीं मिलती थी। अब सुबह की बाहर की धूप भी मिलनी कम हो गयी। उनके लिए नया पिंजरा तुरंत बनाना संभव नहीं था। तभी प्रकाश बरोरा जाने वाला था। फिर सोच-विचारकर हमने तय किया कि जीप की ट्राली को ऊपर से जाली लगाकर पिंजरा बना लिया जाए। इस तरह दस दिनों में ही उनका पिंजरा बन गया। हमने उसे धूप में रखा। ट्राली का पिंजरा बन जाने से उसे कहीं भी रख सकते थे। फिर सुबह बाहर निकालकर उन्हें नित्यक्रिया के लिए जाने देते, बाद में नेगल-नेगली को धूप में इस पिंजरे में बंद रखते थे।

ट्राली वाला पिंजरा बनने पर अब उसे कभी भी, कहीं भी लाने-ले जाने की सुविधा हो गयी थी। दूसरे ही दिन ट्राली जीप में लगायी। प्रकाश, मैं और मनोहर उनको साथ ले कर निकल पड़े। हमने सोचा कि नदी पर ले जाकर इन्हें थोड़ा खुला छोड़ें, वहां उन्हें नहलायें और फिर वापस लौट आयें। खुले जंगल में नेगल बहुत दिनों बाद और नेगली तो पहली ही बार जा रही थी। वे वापस ट्राली में लौट आयेंगे, इस बारे में थोड़ी शंका थी। इसलिए हमने एक रस्सी साथ रख ली थी। एक डिब्बे में थोड़ा गोश्त भी ले लिया था। नदी तीन कि.मी. दूर थी। बरसात का मौसम था। नाले में भी पानी था। हम लोग इंद्रावती के किनारे गये। वहीं जीप खड़ी की। उन्हें खुला छोड़ने से पहले आसपास देख लिया। जब इस बात का विश्वास हो गया कि कोई जानवर, मनुष्य आसपास नहीं है, तब हमने ट्राली का पिछला दरवाजा खोल दिया। जीप की यात्रा और सड़क के गड्ढों के धचके खाकर दोनों ही कुछ बेचैन हो गये थे। दरवाजा खोलने पर दोनों जरा देर तक भीतर बैठे रहे। नेगली पहले उठी, उसने ट्राली से नीचे देखा और कूदकर आगे चलने लगी। नेगल भी कूद पड़ा और जोर से दौड़ने लगा। उसके पीछे दौड़ते-दौड़ते हम थक गये। नेगल तो सीधा नदी किनारे एक पेड़ पर चढ़ गया और नाखून साफ करने लगा। नेगली मौज से

मटकती आराम से गंध लेते हुए जहां हम थे वहां आ पहुंची और पास में ही धूप में बैठ गई। फिर हम भी निश्चिंत होकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद नेगल नीचे उतर आया और प्रकाश के पीछे से आकर आगे चलने लगा। अब वह शांति से चल रहा था। एक पेड़ के पास खड़े होकर उसने पेशाब की और बाजू में मुड़कर चलने लगा। कुछ अंतर पर चलकर फिर एक पेड़ के पास पेशाब की और फिर एक ओर समकोण में मुड़कर चलने लगा। वह अपनी सीमा निश्चित कर रहा था। हम उस पहले पेड़ के पास आकर खड़े रहे। वह वहीं वापस आ गया। यदि वह इतनी ही सीमा में रहने वाला हो तो हमें भी आराम रहता। घंटे भर बाद उसके ट्राली के पास आते ही हमने उसे ट्राली में बंद किया। नेगली उसके पास ही थी। वह भी तुरंत ही भीतर आ गयी, हम उसे भी साथ बंद कर घर लौट आये। हमें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ, इसलिए हम खुश थे। अब हमने सप्ताह में दो बार उन्हें नदी पर ले जाने का तय किया। अगली बार दोनों को नदी पर ले गये। नेगली को पूंछ पकड़कर पानी में ले जाना पड़ा। नेगल तो प्रकाश के पीछे पानी में उतर गया। गहराई आने पर वह प्रकाश को पकड़ लेता था। नेगली बार-बार पानी से बाहर आ जाती। फिर नेगल की देखा-देखी वह भी पानी में उतर गयी। बड़ी देर तक दोनों एक दूसरे से खेलते रहे। हमने पढ़ा था कि तेंदुए को पानी में खेलना अच्छा नहीं लगता है। वह नेगली को देखकर तो सही लगता था। लेकिन नेगल तो पानी के लिये पागल था। बड़ी देर बाद वह पानी से बाहर निकला। हम रेत पर बैठे थे। हमें घर भी जल्दी जाना था। हमारे समय से घर न पहुंचने पर वहां अंदेशा लगा रहता कि नेगल ने कुछ परेशान तो नहीं किया? यह चिंता करने वाले लोग वहां थे। नदी में खेलकर नेगल इतना थक गया था कि वह अपनी जगह से हिलना ही नहीं चाहता था। फिर हम आगे दौड़ने लगे। हमने सोचा था कि वह भी पीछा करेगा, लेकिन वह अपनी जगह से हिला तक नहीं। अब वह पूरा चौबीस किलो वजन का हो चुका था। उसे अकेले ही उठाकर जीप तक ले जाना हमारे बस की बात नहीं थी। प्रकाश ने आगे के और मैंने पीछे के पांव पकड़े और उसे उठाकर जीप तक ले आये। तब एकाएक हमें रानी की याद हो आयी। नेगल पांव उठाने पर अपने मुंह से प्रकाश की टांग पकड़ने का प्रयास कर रहा था।

यहां पर अब सब ठीक चल रहा था। रोज सुबह हमारे साथ इधर-उधर घूमना पूरा हो जाने पर वे दोनों ट्राली में बंद हो जाते। हम हफ्ते में दो बार उन्हें नदी पर ले जाते थे। नदी पर जाना उन्हें बहुत अच्छा लगता था। जीप की आवाज सुनते ही वे उछलने लगते। हम ट्राली में तेंदुओं को घुमाने ले जाते हैं, यह खबर सब ओर फैल चुकी थी। इस कारण हमारी जीप दिखते ही आदिवासी और अन्य लोग भी जीप में ट्राली लगी है या नहीं यह देख लेते। हमारा पामेरियन कुत्ता पिंकी भी हमारे साथ रहता था। पिंकी बचपन से ही नेगल के साथ रहा था। नेगल उसे और टिपू कुत्ते को कभी भी कुछ नहीं कहता था।

नेगली तो शुरू से ही अलग-अलग रहती थी, तथा खुद आगे बढ़कर किसी से छेड़छाड़ नहीं करती थी।

नवंबर में मैं पुणे गया। वहां करीब महीना भर रुका। नेगली की रोज ही याद आती थी। पुणे के दोस्तों को ऐसा लग रहा था कि मैं गप्पे हांक रहा हूं। मेरी बातों पर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। "ऐसा है तो फिर उनकी एक फोटो दो?" वे पूछते कि फोटो क्यों नहीं लाये? "जानवरों के खाना खिलाने के लिये ही हमारे पास पर्याप्त पैसे नहीं थे, तो फोटो खींचने के लिए कहां से खर्चा करें?" फिर मैंने अपने फोटोग्राफर दोस्त से कहा, "तुम स्वयं ही आ जाओ और फोटो खींच लो।" श्रीराम भावे इसके लिए तैयार हो गया। 25 नवंबर को मैं हेमलकसा पहुंचा। मैं रात को ही आया था। दूसरे दिन सुबह प्रकाश के यहां गया। नेगल मुझे भूला तो नहीं? मन में यूं ही यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ।

मैं कमरे में गया। नेगल ने कुछ क्षण तक मुझे देखा। फिर वह झट से पास आया। मैं वहीं खड़ा रहा। वह मेरी जांघों में तथा पैरों से अपना सिर रगड़ता रहा। मैंने उसकी गर्दन को थपथपाया। उतने में ही प्रकाश भी वहां आ गया। तब नेगल प्रकाश के पास चला गया। नेगली कोने में बैठी यह सब देख रही थी। "क्यों नेगली, क्या तुम मुझे नहीं पहचानती?" मैंने बस इतना ही कहा। वह उठी और मेरे पास आकर नीचे लेट गयी। अपने पैरों से उसने मेरे पांवों को जकड़ लिया और मुंह से पिंडली पकड़ने लगी। नेगली का खेलना उतना सुखदायक नहीं था। उसके नाखून गड़ते रहते थे। आज उसे सब माफ था। मुझे इसमें बहुत आनंद आ रहा था। मैं पुणे में ही था, तब प्रकाश ने कमरे में जीप के पुराने टायर टांग दिये थे। नेगल-नेगली को उछल-कूद के खेल खेलने की और नयी सुविधा हो गयी थी। मैं टायर पर हाथ धरे खड़ा था। नेगल टायर पर कूदने की तैयारी में था। वह कूदा और धड़ाम से नीचे गिरा। मैं और प्रकाश हंस पड़े। नेगल नीचे पड़ा हम लोगों को देख रहा था। उसने कान नीचे किये और मेरी ओर एकटक देखने लगा। प्रकाश के चिल्लाने से पहले ही नेलग ने झपट कर मेरी कमर पकड़ ली। मैं संभ्रल नहीं पाया था, इसलिए नेगल के ऊपर गिर पड़ा। नेगल ने पकड़ छोड़ दी और मेरे सीने पर सवार हो गया। मैंने हाथों से उसकी गर्दन पकड़ कर उसका जबड़ा अपने से दूर रखा। नेगल एक ओर हो गया। फिर प्रकाश के पास जाकर, वह अपना माथा उसके शरीर से रगड़कर "ऊं... ऊं" आवाज करने लगा। हम जानबूझकर चुप रहे। उसके गिर पड़ने पर हम हंस दिये थे। उससे वह नाराज हो गया था। उसकी सजा भी मुझे मिल गयी थी। मैं उसके पास गया। दोनों हाथों से मैंने उसकी गर्दन पकड़कर उसे पास लाकर पुचकारा। वह मेरे हाथ चाटने लगा।

अपने कहे अनुसार श्रीराम भावे दूसरे दिन कैमरा लेकर आ गया था। वह शाम 4 बजे पहुंचा था। चाय पीने तक भी उसे चैन नहीं था। बस यही कहता रहा, "चल यार, शेर के पास जाते हैं। कहां है उसका पिंजरा?" मैंने कहा, "अरे, पिंजरे में नहीं, वह प्रकाश

के घर में है।" बस वह निकल पड़ा। मैंने कहा, "तू खिड़की से ही देखना।" वह कहने लगा, "तुम अंदर जाओगे तो मैं भी साथ आऊंगा।" हमें यह पता था कि हमारे साथ होने पर नेगल उसे कुछ नहीं कहेगा। इसलिए हम श्रीराम को लेकर अंदर गये। प्रकाश के पीछे श्रीराम भावे था तथा उसके पीछे मैं। तभी नेगल प्रकाश के पास आने लगा। कुछ समझ आये उसके पहले ही वह प्रकाश की ओर आते-आते श्रीराम भावे पर झपट पड़ा। श्रीराम जोर से चिल्लाया। नेगल ने सभी नाखून निकालकर उसे पकड़ा था। मैंने झट से नेगल की गर्दन पकड़ी तथा प्रकाश ने पैर पकड़कर उसे पीछे खींचा। श्रीराम ने जींस की पैंट पहली थी, इस कारण नाखून अधिक नहीं गड़े थे। प्रकाश ने नेगल को पकड़ रखा था। "तुम केवल अपने हाथ को उसे सूंघ लेने दो," इतना कहने पर भी श्रीराम तैयार नहीं हुआ। फिर हमारे बार-बार कहने पर श्रीराम ने हाथ आगे किया। नेगल ने उसका हाथ सूंघा। फिर मुंह ऊपर कर उसने एक गहरी सांस ली। अब यह गंध उसे सदा याद रहने वाली थी। अब उसके दिमाग में उस गंध का पक्का निशान बन गया था। उसके साथ रहकर हमें ये सब बातें पता चल गयी थीं। गंध परिचित लगने पर वह गर्दन ऊंची कर याद करने का प्रयास करता। इसीलिए हम सभी लोगों का उससे परिचय नहीं करवाते थे। हमारे सामने किसी की गंध लेने पर वह इस तरह पूरा अभिनय कर उस गंध को ध्यान में रखता है। हम उस व्यक्ति को साथ लाये हैं, इसलिए उस व्यक्ति पर विश्वास रखा जा सकता है, शायद उसने ऐसा सोचा होगा।

नेगल-नेगली अच्छी तरह बड़े हो रहे थे। अब हमें उन्हें गोश्त देना कठिन लग रहा था। लेकिन सुअरों की संख्या भी बढ़ रही थी। एक सुअर का मांस बीस दिन तक चलता था। प्रकल्प के स्थान से सुअर 20-22 कि.मी. की दूरी पर थे। कभी-कभी समय पर संदेश न मिलने पर वहां से यथासमय सुअर नहीं आ पाता था। तब पास रखा गोश्त खत्म हो जाता। कुछ खरगोश पाल रखे थे। ऐसी कठिनाई के समय में वे ही बलि चढ़ते थे। लेकिन एक खरगोश का मांस एक दिन के लिये भी बड़ी मुश्किल से काफी होता था। दिसंबर से हम दोनों को एक ही समय भरपेट गोश्त देने लगे। अब हमने शाम को मांस खिलाना बंद कर दिया था। सुबह 10 बजे एक बार अच्छी तरह पेट भरकर खाना देने पर फिर दूसरे ही दिन देते थे। तेंदुए जब जंगल में खुले घूमते हैं तब गांवों के कुत्ते मारकर खाते हैं, हमने ऐसा सुना था। जब गांव में जानवर नहीं हाथ लगते तो वे कुत्ते मारते होंगे। लेकिन वे कुत्ते खाते हैं, इतना हमें पता था। एक बार मैंने इनके लिये एक कुत्ता मारा। उसके लिए सभी से गालियां भी खाईं और उनकी बददुआएं भी सुनीं। लेकिन नेगल-नेगली ने वह गोश्त खाने से बिलकुल इंकार कर दिया। यदि वे कुत्तों का गोश्त खाते, तो गांव में उनके लिये लावारिस कुत्ते तो बहुत थे।

दिसंबर में हमारा प्रकल्प देखने दो फ्रेंच युवतियां आयीं। पहले दिन उन्होंने हमें सुबह

नेगल-नेगली को बाहर घुमाते हुए और फिर कमरे में उनसे खेलते हुए देखा। यह देख उन्हें बड़ा अचरज हुआ। पर उन्होंने यह शिकायत की, "इन्हें बंद क्यों रखते हो? इन्हें खुला ही रहने दो।" हमने कहा, "खुला रखने पर वे मनुष्यों से खेलना चाहते हैं और उनसे कोई खेल नहीं सकता। फिर नाखून लगने पर नेगल-नेगली नाहक बदनाम होंगे। इसलिए हम उन्हें बंद कर के रखते हैं।" यह सब सुनने पर उन्होंने पूछा, "जब वे तुम्हें कुछ नहीं कहते तो औरों को भी कुछ नहीं कहेंगे?" बात बहस में बदल गयी, हम दोनों उनके साथ उनके बचपन से हैं, हमारा आपस में एक दूसरे से प्यार है। हम उन्हें अपना अनुभव सुना रहे थे। लेकिन उनकी तसल्ली नहीं हो रही थी। फिर हमने कहा, "हाथ कंगन को आरसी क्या! लेकिन फिर शिकायत न कीजियेगा।" नेगल को हमने फिर कमरे से बाहर निकाला। वह बरामदे में आया। हम पहले से ही मेहमानों के पास सावधान खड़े थे। नेगल भी यह दिखा रहा था कि उनकी ओर वह ध्यान नहीं दे रहा है। वह दूसरी ही ओर देखने लगा। मैं हंसने लगा। आगे क्या होने वाला है, यह मुझे और प्रकाश की समझ में आ रहा था। उन्हें असावधान देखकर उसी क्षण नेगल ने एक मेहमान युवती की कमर को पकड़ लिया। इस पर वह जोर से चिल्लाने लगी और दूसरी भागने लगी। नेगल पहली को छोड़कर दूसरी के पीछे भागने लगा। तब हमने बीच में आकर उन्हें छुड़ाया। भागने वाली के पैरों में नाखून की थोड़ी खरोंच लग गयी थी तथा पहले वाली की कमर में चार नाखून लगे थे। फिर हमने नेगल को बंद किया और मेहमानों को दवाखाने में पट्टी बंधवाने भेज दिया।

इसी महीने में हमारा मित्र राममोहन, अपनी पत्नी, लड़की और एक अंग्रेज मेहमान युवती को साथ लेकर आ गया। उनके लिये नेगल-नेगली ही प्रमुख आकर्षण थे। उन्होंने इन दोनों के बहुत सारे फोटो खींचे। उन्होंने आरती और नेगल के साथ-साथ फोटो भी खींचे। आरती अब थोड़ा-थोड़ा बोलने लगी थी। उसने पहला उच्चारण "नेगल" ही किया था। वह नेगल को गेंगल कहती थी। यदि प्रकाश बड़ी देर तक नेगल के कमरे में नहीं जाता तो वह "गेंगल-गेंगल" कहते हुए उससे वहां जाने की जिद करती थी। अब वह आराम से नेगल की पीठ पर बैठकर उसके कान पकड़ उसे घोड़ा बनाती थी। जितनी देर उसका खेलना चलता रहता उतने समय तक नेगल शांत बैठा रहता। राममोहन खुले माहौल में नेगल के फोटो खींचना चाहता था। इसलिए नदी तट पर जाने का निश्चय किया। सभी हमारे साथ चलने को कहने लगे। फिर गीता भाभी, विदेशी युवती तथा बच्चों, सभी को जीप में बिठा लिया। नेगल-नेगली ट्राली में थे। वैसे तो हम हमेशा नदी पर सुबह के समय जाते थे, परंतु आज शाम को जा रहे थे। हमारी जीप सभी ओर से बंद थी। कांच बंदकर सब भीतर बैठ गये थे। मैं, प्रकाश, राममोहन नीचे उतरे। राममोहन भी हमारी तरह सफेद बनियान, सफेद हाफपैंट पहने हुए था। दो दिनों से नेगल-नेगली उसे फोटो खींचते हुए देख रहे थे। विशेष बात यह थी कि नेगल उसे लगातार हमारे साथ घूमते देख रहा था।

नेगल-नेगली उस पर बिलकुल नहीं झपटे। उसने फोटो खींचे। कभी भी नदी किनारे जाने पर नेगल जिस एक विशेष पेड़ पर चढ़ता था, उस पेड़ के बारे में हमने राममोहन को पहले ही बता दिया था।

नेगल के ट्राली से बाहर आते ही वह सीधा पेड़ पर चढ़ गया। तब उसने पेड़ पर चढ़े हुए नेगल के फोटो भी खींच लिये। बाकी सभी लोग उसी जीप में बंद थे। फिर नेगल-नेगली को मैंने ट्राली में बंद कर दिया। फिर जीप का दरवाजा खोला। नेगल-नेगली को ठीक से ट्राली में बंद किया है, इस बात का पक्का विश्वास होने पर ही गीता भाभी और अन्य सभी जीप से उतरे। सभी लोग नदी पर जाकर आराम से बालू पर बैठ गये। मैं, प्रकाश, राममोहन जीप के ही पास खड़े गप्पें लगाते खड़े थे। ट्राली की जाली में से नेगल सभी को बड़ी उत्सुकता से देख रहा था। उसका नीचे उतर कर सभी के साथ खेलने का मन था। उसके चेहरे पर डर या परायेपन, तिरस्कार या घृणा का कोई भाव नहीं था। पहले जब वह बाहर खुले में खेल रहा था और बाकी सब जीप में बंद थे, उस समय उन सबके चेहरों पर खुलेपन के भाव नहीं थे। हमारी गप्पें चल रही थीं। बंदरों का विषय चल पड़ा। बंदर और मनुष्य के स्वभाव में कोई अंतर नहीं, ऐसा हम सब कह रहे थे। बाढ़ के चढ़ते पानी से बचने के लिये अपने बच्चे को पैरों के नीचे दबाने वाली बंदरिया की कथा का भी जिक्र निकला। राममोहन हमसे सहमत नहीं था। मनुष्य अब बहुत सुधर गया है, शिक्षा के परिणामस्वरूप अधिक विकसित हो गया है, आदि दर्शन की बातें वह करने लगा। मुझे पहले भी विवाद करने या अपने तर्कसंगत विचार प्रस्तुत करने की आदत कभी नहीं रही और अब इतने दिनों तक जानवरों के साथ रहने के बाद तो मैं बातों से अधिक अनुभव पर विश्वास करने लगा था। मैंने राममोहन से कहा, "गीता भाभी, मेहमान युवती तथा बच्चे गप्पें लगा रहे हैं। उन्हें यह पता है कि नेगल बंद है। लेकिन तुम उन लोगों को केवल 'भागो, भागो, नेगल आया' इतना ही जाकर कहो और फिर देखो क्या होता है।" हम दोनों आगे बढ़े। राममोहन ने चिल्लाकर पत्नी से कहा, "भागो, भागो, नेगल आया।" बस कुछ ही क्षणों में वे दोनों औरतें हमारी ओर दौड़ने लगीं। बालू में वे बराबर भाग भी नहीं पा रही थीं। फिर भी घबराहट के मारे भागी जा रही थीं। उनके बच्चे वहीं रेत में खेल रहे थे। माताएं भाग रही हैं, इतना ही वे मुड़कर देख पा रहे थे। बच्चों का वहां क्या होगा, इसकी चिंता भी वे डर के कारण नहीं कर पाई थीं। हम सब जोर-जोर से हंस रहे थे। राममोहन का अपना तर्क-दर्शन झूठा साबित हुआ, इसका गुस्सा वह पत्नी पर निकाल रहा था। यह पता चलने तक वे दोनों ही घबराई हुई थीं कि वास्तव में हुआ क्या। वास्तविकता का पता चलते ही वे बच्चों को कैसे भूल गयीं, इस बात को लेकर लज्जित हो रही थीं। अपनी वह लज्जा छिपाने के लिए, "यह कैसा मजाक है!" कहकर उलटे वे हमें ही डांट रही थीं।

अब नेगल-नेगली अच्छी प्रकार बढ़ रहे थे। हम लोग हर महीने उनका वजन जांचते रहते थे। जनवरी में नेगल 32 किलो का था और नेगली 22 किलो की हो गयी थी। अब हम लोग उन्हें पेट के नीचे हाथ डालकर उठा नहीं पाते थे। प्रकाश उन्हें पीठ पर उठाकर वजन करने के कांटे पर खड़ा होता था।

नेगल 7 जनवरी को पूरा एक वर्ष का हो गया था। उसके पहले जन्मदिन पर पहली बार एक जीवित भैंसे की बलि चढ़ाकर उसका जन्मदिन मनाया। मांस तो खैर केवल उन दोनों ने ही खाया था। एक आदिवासी अपना लंगड़ा भैंसा बेच रहा था। उसे केवल 120 रुपये देने पड़े। लंगड़ा भैंसा उसके किसी काम का नहीं था। लेकिन उसे खरीदकर हमें बहुत लाभ हुआ। पांव की बड़ी हड्डियां छोड़कर बाकी पूरे शरीर के हमने छोटे-छोटे टुकड़े किये और फ्रिज में भरकर निश्चिंत हो गये। वह भैंसा करीब महीना भर उनके भोजन के काम आया। हमें इस खुराक का दिन भर का खर्चा केवल चार-पांच रुपये प्रतिदिन पड़ा। तेंदुए के खाने का इतना कम खर्च? यह तो कमाल हो गया। सरकारी जानवर संग्रहालयों में एक बाघ पर रोज 60-70 रुपये का खर्चा आता है। हमारे तेंदुओं के साथ-साथ ही उधर नकवी साहब का तेंदुआ भी बड़ा हो रहा था। उसके लिये भैंस का गोश्त जरूरत के वक्त चंद्रपुर से लाया जाता था। एक ही तरह का गोश्त खाने से पालतू जंगली जानवर अच्छी तरह नहीं बढ़ पाता होगा। हम तो चमड़ी, हड्डी, आंतें, भेजा, गुर्दा, फेफड़े सभी के समान टुकड़े कर अलग-अलग ट्रे में रख देते थे। हमारे यहां के तेंदुए रोज ही सभी प्रकार का गोश्त थोड़ा-थोड़ा खाते रहने से बहुत स्वस्थ रहते हैं। हमें उन्हें अलग से विटामिन नहीं देने पड़ते। सुअर भी हम स्वयं ही काटते थे। सुअर के पेट में कीड़े दिखने पर हम अपने तेंदुओं को उस महीने में कीड़ों की दवाई देते रहते।

जनवरी 84 में हमारे यहां के विभागीय वन अधिकारी श्री डोरले, अपने मित्र श्री मराठे (विभागीय वन-अधिकारी, ताड़ोबा वन-उद्यान) को साथ लेकर हमारे यहां पधारे। हमारी बहुत पुरानी इच्छा पूरी हुई। मराठे साहब को 'मगर' की जाति की पहचान का अद्‌भुत अनुभव है। हमारे यहां आने पर उन्होंने मगर पकड़कर उसे उलटा किया और उसके गुदाद्वार में उंगली डालकर हमें बताया कि मगर में नर और मादा कैसे पहचानते हैं। हमारे पास पहले आया बच्चा मगर मादा था, दूसरा नर था। दोनों की आयु अब लगभग छह वर्ष की थी। उनसे हमें यह भी पता चला कि अभी और दो वर्षों बाद वे दोनों वयस्क होकर बच्चे पैदा करने योग्य होंगे। मगर के लिये सभी सुविधाओं सहित बड़ा पिंजरा बनाना आवश्यक था। मराठे साहब ने हमें आश्वासन दिया कि उनके सहायक श्री रामानंद बाद में यहां आकर हमें सारी जानकारी देंगे। मगर का पिंजरा बनना अभी रुक सकता था। नेगल-नेगली को अब जगह बहुत छोटी पड़ रही थी क्योंकि अब वे काफी बड़े जो हो गये थे। प्रकाश का कमरा अब छोटा लग रहा था। हमारे और काम भी बढ़ गये थे। उन्हें

नदी पर बार-बार ले जाना भी अब संभव नहीं हो रहा था। हम सुबह भी उन्हें बहुत ही थोड़ा समय खुला छोड़ पाते थे। हमारे प्रकल्प में एक ओर दो खुले गैराज हैं। वे इतने बड़े हैं कि वहां एक पूरा ट्रक खड़ा रह सकता है। इतने बड़े और ऊंचे गैराज के पीछे एक छोटा कमरा भी है। गैराज से पीछे वाले कमरे में खुलने वाली एक खिड़की है। एक गैराज से अभी हमारा काम चल जाता है, इसलिए दूसरा गैराज और उसके पीछे वाला कमरा मिलाकर पिंजरा बनाने की हमने योजना बनाई। दीवारें पूरी बनी हुई होने से हमने बस सामने लोहे का पक्का दरवाजा, पिछले कमरे के लिये लोहे का दरवाजा तथा तीनों खिड़कियों के लिये लोहे के फ्रेम और बीच की खिड़की के स्थान पर एक खिसकने-वाला लोहे का दरवाजा लगवाने का कार्य करवाना निश्चित किया। पिछले कमरे-में वे पूरी तरह अंदर उतर सकें, इतनी बड़ी पानी की टंकी बनवानी थी। बहुत खर्चे का काम था। इस कार्य के लिये भी गोंदिया के श्री कुलकर्णी जी ने ही सहायता की।

नेगल के पिंजरे का काम शुरू हुआ। फरवरी में पिंजरा पूरा हुआ। 12 फरवरी को नेगल को प्रकाश के घर से पिंजरे में स्थानांतरित किया गया। हम रोज सुबह उन्हें पिंजरे से बाहर निकाल कर आधे घंटे तक खुला छोड़ते थे। इस गैराज के पूर्व में खिड़कियां होने से सुबह की धूप भीतर आती थी। दोनों कमरों के अलग-अलग दरवाजे थे और बीच में सरकने वाला दरवाजा था। आवश्यकतानुसार जानवरों को एक कमरे में बंद कर दूसरा कमरा कोई भी साफ कर सकता था। दोपहर में प्रकाश पिंजरे में जा बैठता था तथा आरती को अपने साथ रखता था। पिंकी और टीपू कुत्ते भी कभी-कभी साथ रहते थे। मार्च महीने में पिंकी कुत्ता मर गया। केवल टीपू कुत्ता ही रह गया था। वह आज भी है। दोपहर और शाम को कई बार हम उस पिंजरे में ही गप्पें लगाते बैठते थे। नेगल-नेगली आपस में या हमसे खेलते रहते थे। प्रकाश पिंजरे के बीचों-बीच बैठ सकता था लेकिन मुझे किसी दीवार से पीठ लगाकर ही बैठना पड़ता था। मैं बीच में बैठूं और कितना भी सावधान क्यों न रहूं, फिर भी नेगल कभी भी आकर मेरी पीठ पर झपट पड़ता और मुझे नीचे गिरा देता था। वह मेरे साथ खेलना चाहता था, लेकिन उसके नाखून लगते थे। नेगल मुझ पर अधिक झपटता था। प्रकाश की गोद में बैठना उसे अच्छा लगता था। नेगली बड़ी देर के बाद पास आती थी। नीचे पांव पसारकर मेरी ओर आगे बढ़ती। वह चाहती कि मैं उसके पांवों और पेट पर हाथ फिराऊं। पेट खुजलाने पर वह बहुत खुश हो जाती। कभी-कभार आंखें मूंदकर पड़ी रहती। कभी लाड़ में आने पर मुझे कष्ट भी देती। नेगल की देखादेखी वह भी मेरे साथ खेलने लगती। लेकिन उसने कभी मुझे दांत नहीं लगाया। पांव-हाथ उसके मुंह में डालने पर भी वह धीरे से चबाने जैसा करती। लेकिन नाखून निकाले बिना खेलना उसे कभी जमा हीं नहीं। उसकी इच्छानुसार हम उससे खेलें, यही उसकी इच्छा रहती। पहले वह पक्की जंगली थी। लेकिन अब वह प्यार से रहती थी। कभी-कभार प्रकाश के हाथों

से वह खाना भी खा लेती थी।

नेगल मुझे कभी-कभी कष्टदायी लगने लगता। वह स्वयं खाने को तैयार नहीं होता था। खिलाने के लिए जिद करता। प्रकाश के न होने पर, मेरे या दादा किसी के भी हाथ से वह खा लेता था। प्रकाश के होने पर केवल उसी के हाथ से खाता। बाद में नेगली ने भी यही नीति अपना ली। वह खुद शायद ही खाती थी। गोश्त लेकर आगे हाथ करने पर वह फौरन पंजा मार देती या हाथ ही पकड़ लेती थी। वह केवल बैठी ही रहती। एक-एक टुकड़ा उसके आगे डालने पर ही वह खाती थी। जब वह खेल रही होती तो उसकी इच्छा और उसका मूड़ केवल उस पर नजर रखने पर ही पता चलते थे। उसकी इच्छानुसार ही हम उससे खेलते थे। दोनों—मैं और प्रकाश एक साथ ही नेगली की ओर ध्यान देने पर नेगल उससे नाराज हो जाता। फिर वह खूब उधम मचाता या क्रोधित होकर नेगली पर झपटकर अपना गुस्सा निकालता। नेगल खूब खाता था और अब बेतरतीब ढंग से मोटा हो रहा था। नेगली उस हिसाब से चंचल और पतली थी। मारामारी करते समय या उसका पीछा करते समय वह नेगल को आराम से चकमा दे देती थी। ऐसे समय नेगल अनजाने ही गिर पड़ता था और हम सब हंस देते थे। फिर वह नाराज होकर चिड़चिड़ाता। तब नेगली को छोड़ वह मुझ पर झपटता। नेगली के समान चंचल और दुबला-पतला न होने के कारण मुझे उसकी गति स्वीकार करनी पड़ती। मुझे वह बहुत सताता था। आखिर प्रकाश ही उसे संभाल पाता। प्रकाश के हंसने की सजा भी मुझे ही मिलती। एक बार खेलते हुए नेगली का नाखून प्रकाश को चुभ गया। वैसे तो हमेशा ही नाखून लगता रहता था लेकिन उस समय कुछ गहरा चुभ गया था। जख्म से खून बहने लगा। प्रकाश ने क्या सोचा पता नहीं, लेकिन उसने सीधे ही खून बहने वाला हाथ नेगल के सामने कर दिया। नेगल वह हाथ चाटने लगा। थोड़ी ही देर में खून बहना बंद हो गया। तेंदुए या बाघ के द्वारा इंसान का खून चाटने पर उसे फिर उस खून की लत लग जाती है, यह भी हमने सुना था। लेकिन नेगल पर हमें भरोसा था। प्रकाश ने हमें बताया कि नेगल ने बहुत ही कोमलता से मेरा हाथ चाटा था। वैसे जब वह हाथ, पांव, गर्दन, पीठ चाटता था तो उसकी जीभ खुरदरी लगती थी। लेकिन जख्म चाटते समय उसने बहुत ही हल्के ढंग से चाटा था। इस बात का अनुभव अगले सप्ताह मिला मुझे मिला। इस तजुर्बे से हमारी समझ में यह आया कि नेगल यदि जख्म होने पर उसे तुरंत चाट ले तो वह जल्दी ठीक हो जाता है। फिर उस पर कोई अन्य दवा भी नहीं लगानी पड़ती थी। फिर तो हमने यही तरीका अपनाया। इस तरह खून चाटने पर भी उसे हमारे खून की लत नहीं लगी, क्योंकि कभी भी स्वयं उसने हमें जख्मी नहीं किया या हमारा खून चाटने का जानबूझकर प्रयास नहीं किया।

वैसे, देखा जाए तो इस जानवर के बारे में गलतफहमियां ही ज्यादा हैं। उसी तरह हमारे इस प्रकार के प्रयोग करने के कारण हमारे बारे में बहुत लोगों को अनेक गलतफहमियां

हुई हैं। ऐसी भ्रमित धारणाएं रखनेवालों ने अपने नुकीले शब्दबाणों से हमारे दिलों को अधिक घायल किया है। इस मानसिक संताप के कारण हमारा अधिक रक्त शोषण हुआ है। इसी कारण उन्हें हमारे खून की लत लग गई होगी। हमारे जानवरों से या हमसे कुछ गलती हो जाने की वे बड़ी अधीरता से इंतजार करते रहते हैं—क्रूरता का लांछन कैसे और कब लगाया जाये!

मार्च महीने में काकड़ (हिरन) को हम लोगों ने अन्य हिरनों के बड़े पिंजरे में रख दिया। हिरनों की यह जाति बहुत बुजदिल और डरपोक होती है। बड़े पिंजरे में जाते ही वह घबराया सा इधर-उधर दौड़ने लगा। उसे पकड़ पाना भी कठिन हो रहा था। उसके दौड़ने से बाकी के हिरन भी दौड़ने लगते थे। काकड़ अकेला था। उसके लिये कोई मादा नहीं थी। इसी विचार से उसे इस पिंजरे में रखा था कि चीतल मादा के साथ वह संकरण करेगा। शाम तक पिंजरे से बाहर आने के प्रयास में काकड़ हिरन के पांव टूट गये। हमारा प्रयोग पहले ही दिन असफल रहा। वैसे, हमने बेन को पहले प्लास्टर चढ़ाया था। लेकिन इस हिरन के मामले में जरा दिक्कत थी। उसकी दोनों जांघों की हड्डियां टूट गयी थीं। दोनों जाघों में प्लास्टर लगाया गया। उसे अब अलग स्थान पर पहुंचाया गया। हमें उसकी चिंता करना आवश्यक हो गया था। वह चल भी नहीं सकता था। हम तीन-चार बार उसके पास बैठकर उसे खिलाते थे। वह गंदगी में पड़ा न रहे, इसलिये उसे दो-तीन बार उठाकर जगह बदलते थे। फिर चार दिनों बाद वह पैरों को जरा घसीटते हुए चलने लगा। एक सप्ताह बाद वह जरा टेढ़ा-मेढ़ा चलने लगा। हमें यह आशा नहीं थी कि वह जीवित भी बचेगा। सवा महीने बाद प्लास्टर निकालने पर उसके पैर ठीक हो गये थे। बाद में उसके लिये एक मादा भी मिल गयी। अब वह अपने ही बच्चों के साथ दौड़ता फिर रहा है। किसी को यह हकीकत सुनने पर सहसा भरोसा नहीं होता।

फरवरी महीने में नेगल ने दो फिल्मों में अभिनय किया। उसके हिस्से में जंगली तेंदुए की भूमिका आने से उसे जंगलीपन का अभिनय करना पड़ा था। मनोहर वर्णे ने यहां की पहाड़ी पर रहने वाले बड़ा माड़ीया आदिवासियों पर एक वर्णात्मक वृत्तचित्र बनाया था। उनके आग्रह पर नेगल को लेकर हम लोग नदी पर गये। उस दिन नेगल बहुत थोड़े समय के लिये ट्राली से बाहर लाया गया क्योंकि आसपास फिल्म शूटिंग करनेवालों का बड़ा जमघट था। कैमरे की ओर मुंह करके नेगल को आना था। यह सब बहुत आसान काम था। प्रकाश नेगल को लेकर दूर खड़ा रहा। जैसे ही कैमरा तैयार हो गया, मैं वहीं नीचे बैठ गया। मेरी पीठ नेगल की ओर थी। मेरी पीठ दिखते ही नेगल पहले दबे पांव घात लगाये हुए आगे बढ़ा और बाद में दौड़ते हुए झपटकर मेरी पीठ पर आ गिरा। जैसी उम्मीद थी, वैसा ही हुआ। लेकिन सिनेमा में मनोहर वर्णे ने नेगल को जंगली तेंदुआ ही चित्रित किया है। उस फिल्म के एकदम प्रारंभ में ही यह दृश्य दिखाया गया था। उसमें नेगल को कहीं भी ख्याति

नहीं मिली, न उसका नाम ही हुआ।

इसी महीने में सुहासिनी मुले जंगल संबंधी जानकारी देनेवाली एक फिल्म की शूटिंग के लिये आयी। वह हमारे यहां ही ठहरीं। उन्होंने मुझे नदी पर ले जाकर नेगल के साथ शूटिंग की। यह सूचनाप्रधान चित्र अभी तक प्रदर्शित नहीं हुआ है। प्रमुख भूमिका में नेगल को रखकर उसकी एक छोटी कहानी लिखकर एक फिल्म बनाने की योजना भी उन्होंने बनायी थी। लेकिन उसकी फिर आगे कुछ प्रगति नहीं हुई। उस फिल्म में नेगल कैसा दिखता है, वह भी मुझे अभी तक देखने को नहीं मिला है। मेरे मित्र श्री प्रभाकर का मूवी कैमरा और एक कोरी कैसेट उन्हीं दिनों हमारे पास रखे हुए थे। सुहासिनी मुले को विषय की जानकारी होने से मैंने उनसे अनुरोध किया। उन्होंने उसे मानकर स्वयं वह फिल्म बनाकर मुझे दी। आज भी आनंद वन प्रकल्प क्षेत्र में कोई मेहमान आता है तो हम वह फिल्म दिखाते हैं। हमारे यहां बिजली नहीं है, लेकिन प्रत्यक्ष तेंदुए तो हैं ही।

मार्च के महीने में मुंबई के श्री रंगनाथन साथ में दो कैमरामन लेकर पधारे। उनके लिये हम लोग दो दिन लगातार नदी पर गये। अब नेगल-नेगली कैमरे वाले लोगों से परिचित हो गये थे। इसलिए उन्हें परेशान नहीं करते थे। कभी-कभी तो हमें लगता कि ये स्वयं अलग- अलग पोज दे रहे हैं। रंगीन कपड़ों और गोरे रंग से उन्हें कुछ भड़काऊपन लगता होगा। सुहासिनी मुले और श्री रंगनाथन को उनके गोरे रंग के कारण नेगल ने झपटकर अपने नाखूनों का थोड़ा-सा प्रसाद दिया था। श्री रंगनाथन और उनके कैमरामन ने नेगल के नदी पर निसर्ग की गोद में सैंकड़ों फोटो उतारे। लेकिन उन्होंने हमारे पास एक भी फोटो नहीं भेजा। कुछ तस्वीरें प्रकाशन के लिये बेचकर उन्होंने पैसा अवश्य कमाया है लेकिन हमारी किसी तरह की मदद नहीं की। बच्चों की 'कब' पत्रिका में कुछ फोटो छपे हुए हमने देखे थे।

अब हमारे नेगल को अच्छी ख्याति मिल चुकी थी। दूर-दूर से लोग उसे देखने आने लगे। आते हुए वे आल्लापल्ली में नकवीसाहब का तेंदुआ 'शेरू' भी देखकर यहां आते। फिर उनकी आपसी बातचीत में नेगल से उसकी तुलना होते हुए हम सुनते। नेगल अब अच्छी प्रकार बढ़ रहा था। अप्रैल में वह 41 किलो का हो गया था। उसकी लंबाई 7 फुट नौ इंच थी। बचपन की बीमारी और खाना बराबर न मिलने से उसके दांत कुछ खराब हो रहे थे। एक बार टायर से खेलते हुए उसका एक बड़ा दांत टूट गया। दूध के दांत दसवें महीने में गिरकर फिर नये दांत आ गये थे। लेकिन यह बड़ा दांत अब दुबारा आने वाला नहीं था। गैराज में सीमेंट का फर्श था। नाखून साफ करने के लिए और खेलने के लिये एक पुराना, टेढ़ी-मेढ़ी शाखाओं वाला पेड़ लाकर रखा था। उस पर अपने नाखूनों को घिसकर वे उन्हें साफ रखते थे। कभी-कभी प्रकाश भी उनके नाखूनों के छिलके निकालकर साफ कर देता था। नेगली अब पूरी तरह आजाद थी। वह खुद ही अब अपनी सारी सफाई

आदि कर लेती थी। अगस्त में नेगली एक वर्ष की हो गयी। नेगल-नेगली के आने के बाद से हम कई पुस्तकें पढ़कर तेंदुआ जाति के संबंध में जानकारी इकट्ठा कर रहे थे। अगस्त माह से नेगल खड़ा होकर फव्वारेदार पेशाब करने लगा। उसके ये अच्छे लक्षण थे। अब वह वयस्क हो रहा था तथा उसकी मस्ती भी बढ़ रही थी। उसका खाना काफी बढ़ गया था। यदि वह अंक भरता या झपटता तो संभालना मुश्किल हो जाता था। वजन करने में प्रकाश को कठिनाई हो रही थी। पहले की तरह वह अब पीठ पर शांति से नहीं बैठता था। अब नेगली के वयस्क होने की हम आतुरता से राह देख रहे थे। क्या वे यहां बच्चे देंगे? पिंजरे में रहने वाले तेंदुए बच्चे तो देते हैं, लेकिन जंगल की अपेक्षा उसके लिये अधिक वर्ष लग जाते हैं, यह हमने पुस्तकों में पढ़ा था।

मार्च के महीने में हमारी सबसे पुरानी नीलगाय हिरनों की लड़ाई में जख्मी हो गयी। उसे रात में किसी समय बड़े चीतल का सींग लग गया होगा। सुबह वह पिंजरे में गिरी पड़ी दिखी। उसे बचाने के लिए हमने अनेक प्रयत्न किये, लेकिन दोपहर में वह मर गयी। वह हमारी पहली नीलगाय थी। उसी के आने से हमारे यहां नीलगायों की संतानें बढ़ी थीं। हमें बहुत दुख हुआ। उसका गोश्त हमने व्यर्थ नहीं जाने दिया। महीने भर तक नेगल-नेगली ने नीलगाय का मांस बड़े चाव से खाया।

नेगली की तारीफ वन विभाग द्वारा शासकीय प्रचार तथा दूरदर्शन विभाग तक पहुंचाई जा चुकी थी। श्री महाजन टी.वी. टीम लेकर हमारे यहां पधारे। मई महीने में उन्हें नदी किनारे ले जाकर उन्होंने फिल्म की शूटिंग की। नेगल कहां और कैसे बड़ा हुआ था, इस कथा को उन्होंने कुछ खास विस्तार से नहीं दिखाया था। फिर भी नागपुर टी.वी. पर कभी-कभी यह फिल्म दिखाते रहते हैं। हमारे नेगल के कारण ही हम भी टी.वी. स्टार बन सके।

नेगल को अब सुबह बाहर निकालना उसकी मस्ती के कारण बहुत कठिन हो रहा था। यदि कोई भी नया जानवर या मनुष्य दिखाई देता तो उसे संभालना हम दोनों के बस से बाहर हो जाता था। फिर उसे रोज सुबह बाहर निकालना बंद कर दिया। पिंजरे में ही नित्य-क्रिया होने के कारण कितनी भी सफाई करने के बाद भी अच्छा नहीं लगता था। पिंजरे के पीछे और एक कमरा बनवाया। उसकी छत पर टीन या खपरेल न डालकर जाली लगा दी। अब धूप भीतर आती रहती थी। इस कमरे में भी पिंजरे से प्रवेश करने के लिये बीच में, पहले कमरे जैसा ही लोहे का खिसकने वाला दरवाजा लगा दिया था। बाहर से अंदर जाने के लिए भी लोहे का दरवाजा लगाया था। आगे नेगली की प्रसूति होगी, यह विचार करके यह सब व्यवस्था की गयी थी। इस नये कमरे में जमीन पर फर्श नहीं डाला गया था। ऊपर बहुत सारी रेत बिछा दी थी। रोज सुबह दोनों को इस कमरे में ही रखने लगे। फिर इनकी सुबह टट्टी-पेशाब यहीं होती रहती थी।

अब पिंजरे के अंदर जाने वाले हम केवल चार थे। प्रकाश, मैं , दादा पांचाल और मनोहर तथा पांचवीं आरती। नेगल इतना बड़ा हो गया था, फिर भी उसने आरती को सताने का प्रयास कभी नहीं किया। दुबारा राममोहन आ गया। उसने आरती के नेगल के साथ फोटो उतारकर उसे बंगलौर की एक पत्रिका में प्रकाशित करवाये। आरती और नेगल के इन चित्रों के छपने के कारण चारों ओर उत्सुकता जागृत हो गयी। एक अमेरिकन पत्रिका ने उनके फोटो खींचने के लिए दिल्ली के अपने प्रतिनिधि को यहां पर भेज दिया।

नेगल अब पूरा वयस्क हो चुका था। पिंजरे के बाहर खड़े होने पर पेशाब की लंबी धार छोड़ना अब उसका खेल हो गया था। पिंजरे के अंदर जाने पर बार-बार हमारे शरीर से अपने शरीर को रगड़ना, कमर को पैरों से पकड़ना इत्यादि बढ़ गया था। नेगली भी बड़ी हो रही थी। लेकिन नेगल के सामने अभी वह बहुत छोटी दिखती थी। नेगल अब 49 किलो का हो गया था जब कि नेगली केवल 31 किलो की रह गयी थी। दिसंबर 84 में नेगली लगभग डेढ़ वर्ष की हो गई होगी। नेगल की दूसरी वर्षगांठ 7 जनवरी 85 को थी। हम हमेशा की तरह खाना लेकर पिंजरे में गये। आज खास नेगल की पसंद के मांस के ठोस गोले बनाये थे। हमेशा की तरह प्रकाश नेगल को खिलाने लगा। लेकिन नेगली कोने में दुबकी सी बैठी थी। उसकी पसंद की कलेजी का टुकड़ा ढूंढ़कर मैंने उसकी तरफ फेंका। उसने उस मांस के टुकड़े की ओर देखा तक नहीं। वह गले से गुर्राने की आवाज निकाल रही थी। तभी वह आवाज करते हुए मेरी ओर आने लगी। ऐसी आवाज हमने पहले कभी नहीं सुनी थी। मैं झट से चौकन्ना होकर खड़ा हो गया। प्रकाश का ध्यान भी उस ओर जाने पर वह भी खड़ा हो गया। वह धीरे-धीरे मेरी ओर आ रही थी। नेगली लाठी से डरती थी। किंतु आज मेरे हाथ में वह भी नहीं थी। पिछले दो सालों में पहली बार मैं जरा डर गया था। यदि उसने हमला किया तो? सावधानी से मैं इधर-उधर देखने लगा। तभी प्रकाश भी आ गया। वह भी नेगली का मन समझ नहीं पा रहा था। पिछले डेढ़ साल में उसने भूल से भी किसी पर हमला नहीं किया था। मैं और प्रकाश पास-पास सतर्क खड़े रहे। किसी भी तरह हमला करने पर वह गर्दन पकड़ना जानती थी। मगर वह ऊपर न झपट कर हमारे पैरों पर लेट गयी। पहली बार नाखून न निकालते हुए उसने अगले पांवों से हमारे पैरों को लपेट लिया और चाटने लगी। अब गले से आवाज और बढ़ाकर वह उठी तथा मुझसे दूर जाकर फिर पास आ गयी। वह हमारे पैरों से अपने अंग रगड़ने लगी। नेगल उठा और उसकी पूंछ की ओर जाकर गंध लेने लगा। वह एकदम बैचेन हो उठा। हम दोनों हंसने लगे। हमारे मन में यूं ही नेगली के बारे में गलत शंकाएं उठी थीं। अब वह वयस्क हो गई थी। वह मदकाल में थी। उसे नर को संगति चाहिये थी। हमारे इस नेगल को यह बात हमारे बाद ही ध्यान में आयी। नेगली की उस विचित्र आवाज से नेगल घबराया हुआ था तथा उससे दूर भाग रहा था। फिर भी नेगली बार-बार उसके पास जाती

थी। हमारे हंसने पर आज नेगल ने कोई ध्यान ही नहीं दिया। कुछ अलग ही होने की बात उसकी समझ में आ रही थी, लेकिन वह जान नहीं पा रहा था। इस नयी सी आवाज से वह घबरा रहा था। हमने ऐसा पढ़ा था कि मदकाल में नर-मादा दोनों अधीर होते हैं। हम पिंजरे से बाहर निकल आये।

अगले चार दिनों तक नेगली मस्ती में रही। पहले दो दिन नेगल घबराया हुआ था, फिर समझ गया। लेकिन उनका प्रत्यक्ष समागम हम नहीं देख पाये। इन चार दिनों में तेंदुए एक दिन में लगभग सौ से एक सौ बीस बार सम्भोग करते हैं, मेरे पढ़ने में यह आया था। नेगली उससे बार-बार लाड़ करती तथा सामने जाकर बैठ जाती थी। वह दिनभर बहुत बैचेन रहती थी। इन चार दिनों में उसने गोश्त का एक टुकड़ा भी नहीं खाया था। हमने रात्रि में पिंजरे में गोश्त रख दिया। उसमें से बहुत कम गोश्त खाया गया था। वह भी शायद नेगल ने ही खाया होगा। दूसरे दिन से हम रोज चार-पांच घंटे पिंजरे में बैठने लगे। दोनों में से किसी ने नाराजगी प्रकट नहीं की। नेगली हमारी गोद में आकर बैठती थी। चार दिनों तक कुछ न खाने से वह दुबली हो गयी थी। बाद में भी दो दिन तक उसने कुछ खास नहीं खाया था। इन दिनों ऐसा नहीं लगता था कि वह गर्भवती हो गयी हो। एकदम पहली ही मस्ती में मादा तेंदुआ गर्भवती हो जाती है, ऐसा पक्का लिखा हुआ कभी कहीं पढ़ने में नहीं आया था।

फरवरी महीने में ताड़ोबा वन प्रकल्प के उपविभागीय वनाधिकारी श्री रामानंद, हमारे मित्र श्री भास्कर भट के साथ हमारे यहां पधारे। फिर एक बार 'मगर' बाहर निकाले गये। उसमें से नर कौन-था, मादा कौन-थी,वह हमें पता था। उसे दुबारा से ठीक तरह समझ लिया। पिछले वर्ष वाला तीसरा 'मगर' छोटा था, अतः देख नहीं पाये थे। आखिर वह मादा निकली। यह अच्छा ही हुआ। एक नर था, दो मादा हो गयीं। पूंछ पर के उभरे हिस्सों को ब्लेड से काटकर मगर की आयु और उसके लिंग संबंधी निशान कैसे बनाने हैं, यह उन्होंने ही हमें सिखा दिया था। उसी प्रकार निशान लगाकर मगर फिर पानी में छोड़ दिये गये। अब दूर ही से मगर दिखने पर हमें पता चल जाता था कि वह नर है या मादा और उसकी उम्र कितनी है। मगर का बड़ा पिंजरा कैसा बनायें, इस विषय पर हमने उनसे चर्चा की। उन्होंने प्रकल्प के दो तीन स्थान सुझाये। उसमें से एक जगह पर 12×12 फुट की टंकी मकान बनाते समय से ही बनी हुई थी। उसी को काम में लाने का निश्चय किया। उससे बहुत-सा खर्चा भी बच गया। नेगली अब वयस्क हो गयी है और सालभर में वह शावक देगी यह समाचार सुनकर उन्हें बड़ा आनंद हुआ। पुनः समागम होते समय कम से कम दूरी से फोटो खींच कर रखने की उन्होंने गुजारिश की। फोटो मिलने पर भास्कर भट उन तेंदुओं पर एक लेख लिखने वाले थे। अब यदि पंद्रह-बीस दिनों में वह मस्ती में नहीं आती है तो यह समझिये कि वह गर्भवती है, यह सूचना भी उन्होंने दी। गर्भवती न

होने पर वह हर दस-पंद्रह दिनों बाद चार-पांच बार मस्ती में आती रहेगी, उन्होंने यह भी बताया था। जनवरी के बीस दिन तथा फरवरी के दस दिन और बीत गये। नेगली पुनः मस्ती में नहीं आयी। इसलिए हम खुशी से सोचने लगे कि नेगली गर्भवती हो गयी। पेट पर हाथ लगाकर देखा, वैसा कुछ नहीं लगा। वह पहली प्रसूति में एक बच्चा देगी या दो? गर्भ में शावक बहुत छोटा होता है। फिर भी, यदि एक ही होगा तो वह बाहर से ही हाथ लगाने पर समझ में आ जायेगा? पूरा गर्भकाल 92 दिनों का होता है। जनवरी 10 को गर्भवती होने पर भरी गर्मी में उसकी प्रसूति होगी। गर्मी से कहीं उसे कष्ट तो नहीं होगा? क्या पिछले कमरे में घास बिछा दें? इस तरह के कई प्रश्न सबके मन में आ रहे थे। फरवरी 16 को नेगली फिर से मस्ती में आ गयी। अब हम बेफिक्र हुए, क्योंकि अब उसकी प्रसूति गर्मी में नहीं होगी।

इस बार भी नेगली ने खाना बंद कर दिया था। नेगल इस बार आवाज से नहीं घबराया। वह और उत्सुक ही दिखा। हमारे पिंजरे के अंदर जाने पर अब वे हमारी और अधिक ध्यान नहीं देते थे। नेगल अब वजन में 52 किलो का हो गया था। शरीर से व ताकत से पहले से काफी अच्छा हो गया था। वयस्क तो वह पहले ही हो चुका था। अब इस बार ऐसा लग रहा था कि नेगली निश्चित ही गर्भवती होगी। पहले दो दिन तो ठीक-ठाक रहे। नेगल ने अधिक प्रगति नहीं की थी। वह नेगली से समागम का प्रयास तो कर रहा था, लेकिन अपने भारी भरकम शरीर व वजन के कारण जल्दी थककर एक ओर जाकर हांफने बैठ जाता। इस बार भी कुछ सफलता मिलती नहीं दिख रही थी। फिर आठ दिन तक कुछ न खाने से नगली पहले से अधिक दुबली हो गयी थी। सुअर के मांस में बहुत चर्बी होती है। उसे सुअर का गोश्त बहुत पसंद भी था। इसीलिए बैल का गोश्त होते हुए भी हम लोगों ने एक छोटा सुअर मारा था। उसे अलग रखकर सुअर का मांस देने लगे। उसे और नेगली को अलग-अलग खाना क्यों दिया जा रहा है? शायद यह विचार नेगल को थोड़ा शंकित कर रहा था। वह बीच वाली खिड़की में बैठकर मुझे नेगली को गोश्त खिलाते हुए देख रहा था और उस मांस की गंध ले रहा था। प्रकाश के द्वारा उसके आगे मांस का टुकड़ा करने पर वह गुस्से से पंजा उठाता और गुर्राता। अब यह नया झंझट पैदा हो गया। हमारे पास बैल का मांस भरपूर मात्रा में फ्रिज में रखा था। वह सब यूं ही फेंक देना हमारे लिये असंभव था। अधिक सुअर काटे तो फ्रिज में उसे रखने की जगह नहीं थी। फिर नेगली के लिये अलग से बनाये गये मांस से दो चार टुकड़े लेकर मैं नेगल के पास गया और वे उसके खाने के लिये रखे गोश्त में मिला दिये। उस पगले ने उसके स्वयं के लिये बनाये बैल के गोश्त को प्रकाश के सामने होते हुए भी मांस मेरे हाथों से खा लिया। फिर तो यही काम रोज चलने लगा। बैल का मांस समाप्त होने पर हम दोनों को सुअर का ही गोश्त देने लगे। फिर भी उसे नेगली के कटोरे से लाया हुआ गोश्त खाना अच्छा लगता

था। नेगली फिर मार्च की चार तारीख को मदकाल में आ गयी। अब कुछ दिनों से सुअर का गोश्त खाने से, नेगली का स्वास्थ्य अधिक सुधर गया था। इस बार भी नेगल पहले जैसा ही प्रयास कर रहा था। दो बार तो हमने उसे ऊपर उठाकर नेगली पर सवार किया और पकड़े रखा। आठ दिन बाद नेगली फिर शांत हो गयी।

मुझे अब नेगल की चिंता होने लगी। उसे कुछ खास ताकत की दवा देने का विचार भी होने लगा। नेगली तो बार-बार मस्ती में आती थी और उन दिनों में कुछ न खाने से उसका स्वास्थ्य खराब हो रहा था। अब तो हम दोनों को केवल सुअर का ही गोश्त देते थे। इस कारण नेगल और हष्ट-पुष्ट होने लगा था। मार्च में उसका वजन 58 किलो हो गया। इस बार वजन करते समय हम दोनों को उसके नाखून लगे थे। ऐसा लगने लगा कि नेगल का वजन करना अब संभव नहीं होगा। नेगली केवल 35 किलो की थी। हर बार मदकाल के दिनों में उसका वजन और दो-ढाई किलो कम हो जाता था। शांति के दिनों में उसे खूब खाना देकर यह कभी पूरा करने का हम प्रयास कर रहे थे। एक खास बात थी। उसे सुअर की चर्बी बहुत पसंद थी। फिर 20 मार्च के दिन नेगली मस्ती में आ गयी। अब हमें चिंता होने लगी कि नेगल से वह गर्भवती होगी या नहीं। कम से कम इसका मस्ती में आना तो बंद होना ही चाहिए। इस बार हमने कैमरा और फिल्म भी लाकर रखी थी। इन दिनों प्रकाश कुछ काम से बरोरा गया था। पिंजरे में जाकर तीन-चार फुट की दूरी से मैं फोटो उतार रहा था। एक बार मैं शायद अधिक पास पहुंच गया। तभी नेगल एकदम गुर्राते हुए मुझ पर झपटा। मैं 'नो नो' कहते ही दूर हटा। फिर भी उसका पंजा जरा सा लग ही गया। मेरे एक हाथ पर दो खरोंचे भी आ गयी। उसमें से थोड़ा सा खून निकल रहा था। कैमरा संभालते हुए मैं दूसरे हाथ से खून पोंछने लगा। तभी नेगल को अपनी भूल का एहसास हुआ। मैंने उसे कहा, "हां भाई, नेगली तेरी अकेले की ही है। मैं तो बस तुम्हारे फोटो उतार रहा हूं। तुझसे मामला जम नहीं रहा है तो उसका गुस्सा मुझ पर क्यों? "मेरे बोलने पर जैसे वह शरमा गया। 'अं... अं' आवाज कर वह मेरे पास आ गया। मैं वहीं खड़ा रहा। उसने अपनी गर्दन ऊंची कर हाथ की गंध ली। परिचित लगने पर वह अपने नाखून के जख्म का खून चाटने लगा। वह चाटते-चाटते उसी में मग्न हो गया। तभी नेगली बैचेन हो गयी। वह मेरे पास आ गयी तथा गुर्राते हुए मुझे और नेगल को धक्के देने लगी। "यहां मैं अकेली हूं और तुम दोनों आपस में क्या प्यार जमा रहे हो?" वह यह सुझाना चाहती थी। एक बार उसकी ओर देखकर नेगल फिर चाटने में व्यस्त हो गया। अब नेगली को गुस्सा आया। उसने जोर से गुर्राते हुए एक जोरदार पंजा नेगल के कान पर दे मारा। नेगल चिढ़कर उससे झपट पड़ा।

मैं एक ओर हट गया। "तुम्हारे प्यार में मैं कबाब की हड्डी क्यों बनूं?" मैंने कहा। नेगली के पास आने पर भी नेगल ने उसकी ओर ध्यान क्यों नहीं दिया था? मैं यह समझ

गया था। भूल से उसने मुझे पंजा मारा था। खरोंच से खून निकल आया था। मेरी नजर की नाराजगी भी उसने जान ली थी। वह अपनी भूल मानकर मुझे मनाने की कोशिश कर रहा था। नेगली के मदकाल में होने पर उसे प्रकाश का आसपास मंडराना पसंद नहीं था। वह अपनी नाराजगी दिखाती भी थी। वह अपनी हरकतों से सुझाती थी। प्रकाश के वापस लौटने पर मैंने उसे फोटो उतारने की खबर दी। यह सुनकर उसे बड़ा आनंद आया। नेगल से नेगली को बच्चे होंगे? या उसे और कहीं ले चलें? यह विचार भी मन में आने लगे।

मार्च का महीना अब पूरा हो गया था। एक ओर ऐसा भी लगता था कि पिछली बार मस्ती में आने पर वह गर्भवती तो नहीं हो गयी? अब प्रसूति बरसात में होगी। लेकिन अप्रैल के प्रारंभ में निराशा हाथ लगी। इस बार वह केवल बारह दिनों बाद ही मस्ती में आ गयी। हम सब अब पूरी तरह निराश हो चले थे। इसलिए हमने अधिक ध्यान नहीं दिया था। इस बार वह केवल चार दिन मस्ती में रही। हम समझ रहे थे कि अब यह वर्ष बेकार ही रहा। अब वह गर्भवती नहीं होगी और उसकी मस्ती भी अब कम होती जा रही थी। किताबें पढ़कर यह पता चला था कि अब वह 7-8 महीने तक मस्ती में आने से रही। नेगल पर हम लोगों को बड़ा गुस्सा आ रहा था। केवल खाता रहता है और शरीर से मोटा-ताजा हो रहा है, बस। ऐसी बातें हम आपस में करते रहते थे। इन बातों में अन्य किसी की कोई दिलचस्पी नहीं थी। नेगली गर्भवती हुई तो शावक देने पर वह बहुत कष्ट देगी, सब ऐसा ही समझ रहे थे। चिढ़कर हमने भी नेगल की ओर ध्यान नहीं दिया। वह भी हमसे नाराज हो रहा था। कभी प्यार से पास आता तो कभी हमारी ओर गुस्से से देखता। लगातार लाड़ दिखाता रहता, कभी मनाने का प्रयास भी करता। फिर हम हारकर उसे पास ले लेते।

अप्रैल की 25 तारीख को नेगली फिर मस्ती में आ गयी। अब तो हद हो गयी। हमने उस ओर ध्यान नहीं दिया। तीसरे दिन उनमें से कोई अजीब सी आवाज में चिल्लाया। हम वहां देखने गये। थोड़ी ही देर रुके। नेगल बार-बार चढ़ रहा था। चढ़ने पर वह वैसी अजीब आवाज भी करता था जो हमने सुनी थी। फिर वह एक तरफ हो गया। इस बार नेगली की मस्ती केवल चार दिन ही रही। मई का महीना प्रारंभ हुआ। अब सभी को बड़ी गर्मी महसूस होने लगी। नेगल-नेगली पिछले कमरे में ही रहने लगे थे। उसमें पानी की टंकी थी। कभी-कभी नेगल पानी में उतरता दिखाई दिया। हम उसे दो बार नदी पर ले भी गये। मई के मध्य में नेगली फिर मस्ती में नहीं आयी। उसके स्वभाव में भी हमें अंतर दिखाई दिया। वह गर्भवती हो गयी या नहीं? यह समझने का हमारे पास कोई साधन नहीं था। हमने तो यह मान लिया था कि शायद यह वर्ष बेकार गया है। फिर उसके स्वभाव में अंतर क्यों? इस बात पर हम लोग विचार कर रहे थे। कभी-कभी वह हमारे पास आती थी, पहले से अधिक खेलती भी थी लेकिन उसके नाखून नहीं लगते थे। खुराक भी पहले जैसी हो गयी थी। वह अपने मनपसंद टुकड़े चुनकर खाने लगी। यह फर्क जब हमारी नजर

में आया तो हमें बेहद खुशी हुई। नेगली को गर्भवती होते हुए भी दोहद तो नहीं हुए? ऐसा भी विचार आया। क्या जानवरों को भी दोहद होता है? किसे पूछें? पहले तो हमारे नेगल-नेगली के प्रणय का सब मजाक उड़ाते थे। ऐसे में और कुछ पूछने पर सब मुझे काठ का उल्लू समझते। मेरी मां भी इन दिनों हमारे साथ ही थी। आखिर उससे पूछा। मां ने हंस कर मेरे सवाल का जवाब दिया, "हो सकता है वह गाभिन हो। मुझे इन दिनों उसके व्यवहार में निरालापन लगता है।" मेरी मां दोनों तेंदुओं को बहुत चाहती थीं। भले ही वे दूर से ही उन्हें देखती रहती थीं।

उन्होंने कभी उन्हें छेड़ा नहीं था। लेकिन उनकी नजर बराबर उन पर रहती थी। एक दिन दोपहर में उन्होंने पूछा, 'बिलास, आज नेगल ने ठीक से खाना नहीं खाया?" हम नेगल को पिछले कमरे में खाना देते थे। यह बात सच थी कि आज नेगल ने भरपेट खाना नहीं खाया था।

मैंने भी 'हां' कहकर बात टाल दी। मगर फिर मुझसे रहा नहीं गया। मैंने मां से पूछा, "मां आपको यह कैसे पता चला? क्या आप पीछे की खोली की तरफ गयी थीं?" मां बोली, "अरे, इसे जानने के लिये पीछे की ओर जाने की जरूरत ही क्या है? प्रकाश का और तुम्हारा चेहरा ही साफ कह देता है कि नेगल को आज कुछ हुआ जरूर है।" अब मां भी हमारा मजाक उड़ाने लगीं, इसलिए मैंने मां की ओर देखा ही नहीं। लेकिन उनके चेहरे पर चिंता की लकीरें अवश्य दिखाई दे रही थीं। मैं मां के ये शब्द सुनकर मन ही मन कृतार्थ हुआ। हमारे मनोरथ सफल हो गये। नेगल के प्रति हमारा प्रेम और नेगल का हम लोगों के लिए स्नेह हमारे व्यवहार में भी झलकता है और हमारे चेहरों पर अंकित होने वाले भावों को समझने की क्षमता रखने वाला कोई व्यक्ति हमारे आसपास है। हम जाने गये कि मां की नजर बारीकी से हमें निहारती रहती है। आखिर मां ने ही कहा, "बेटो, जरा सतर्क रहा करो।" मां हमें बीच-बीच में बराबर सलाह देती रहती थीं।

सारा मई माह इसी तरह बीता। नेगली फिर से मस्ती में नहीं आयी। या तो वह गर्भिणी थी अथवा अब उसे अगले साल ही कामोत्तेजना होगी। लेकिन हमें यह अवश्य प्रतीत हो रहा था कि अब वह गंभीर हो गयी है। दिनों-दिन यह दृढ़ होता गया। उसे अब हम लोगों के सहारे की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। उसे हम लोगों का निकट रहना भाने लगा और वह इसके लिए प्रयत्न भी करने लगी। उसकी गतिविधियां मंद नहीं हुई थीं लेकिन नेगल के साथ होने वाली उसकी कामुक हरकतें बंद हो गयी थीं। अब यदि कोई नया व्यक्ति उसके पिंजरे के पास आता तो वह पहले से अधिक सावधानी के साथ व्यवहार करती, उसे गौर से देखती और फिर तुरंत किसी प्रकार की ओट पा जाने का प्रयत्न करती। वह शरमा जाती। हमें लगता कि उसकी आंखें कुछ धंस गयी थीं। उसकी खुराक नियमित हो गयी थी। वैसे, उसके पेट का आकार अभी बढ़ा हुआ नहीं लग रहा था। लेकिन उसके

दूध कुछ बढ़े से लग रहे थे।

जून का महीना समाप्त हुआ। बरसात आने के लक्षण दिखने लगे थे। जून के अंतिम सप्ताह में नेगली का पेट जरा बड़ा दिखने लगा था। ऐसा लगने लगा जैसे वह गर्भवती ही है।

पिंजरे के सबसे आखिरी वाले कमरे को, जो बाद में बनाया था, हमने प्रसूति के लिये तैयार करने का विचार किया। हम लोग एक लकड़ी का तख्त लाये। उसे एक ओर से लकड़ी के पटिये लगाकर बंद कर दिया। कमरे के कोने में रखने पर और दो किनारों पर दीवारें आ जाने के कारण रोक हो गयी थी। चौथी ओर की खुली चौड़ाई पर भी जमीन से एक फूट ऊंची एक पटिया और लगा दी। मैं, दादा, प्रकाश कमरे में ही सब आवश्यक समान लेकर यह सब कर रहे थे तथा नेगल बीच-बीच में आकर देख रहा था। उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि नयी बातें क्यों हो रही हैं। नेगली शांत होकर एक ओर किनारे बैठी रहती थी। अब जुलाई का महीना शुरू हो चुका था। नेगली की 31 जुलाई, 1 अगस्त या 2 अगस्त में से किसी भी दिन प्रसूति होनी थी। इस कमरे में ऊपर छत की जगह जाली फिट थी। पलंग के ऊपर वर्षा का पानी न गिरे, इस तरह हमने उसके ऊपर टीन के पत्तर डाल दिये। अब हर रोज ही इसकी चिंता हमें लगी रहती कि दिन कैसा बीतेगा। जुलाई माह में हमने इस बात का ध्यान रखा कि नेगली को भरपेट और अच्छा चुना हुआ गोश्त मिले।

नेगली 31 जुलाई को सुबह से ही पिछले कमरे में चली गयी और हमारे द्वारा बनाई हुई लकड़ी की गुफा में स्वयं को बंद कर लिया। अब उसे किसी भी समय प्रसूति होने वाली थी। कल भी जब वह पास बैठी थी तब उसके स्तनों को जरा दबाने पर उसमें से गाढ़े दूध जैसा पदार्थ आ रहा था। कल वह पूरे दिन गुफा में ही बैठी रही। उसे एकाध दिन में बच्चा होगा, यह बात जिस समय उसने अपने को गुफा में बंद कर लिया था, तभी हम लोगों की समझ में आ गयी थी।

शाम को एक बार हमने सारे इंतजाम की आखिरी जांच कर ली और अपनी पूरी तसल्ली कर ली। बरसात हो रही थी, लेकिन उस तख्त के नीचे बनाई हुई लकड़ी की गुफा में एक बूंद भी पानी नहीं टपक रहा था। हमें एक बात नजर आयी कि दीवार पर कुछ चीटें चल रहे हैं। हमने तुरंत पाउडर लाकर दरवाजे की बाहरी दहलीज पर और खिड़की के बाहरी हिस्से में फैला दिया। जब अंधेरा छाने लगा तब उस पिंजरे में जाकर हमने उस गुफा में झांककर देखा। भीतर से नेगली गुर्राई मानो वह कह रही हो कि मैं ठीक हूं, अब पास मत आइये। रात अपने बिस्तर पर लेटा अवश्य, किंतु नींद नहीं आ रही थी। रात में दो बार मैं उस खोली के पास गया और कान लगाकर आहट लेने की कोशिश की। भीतर बिल्कुल शांति थी।

भोर में प्रकाश की पुकार सुनाई दी। उस आवाज में मन का आनंद और उत्साह स्पष्ट था। वह छिप ही नहीं सकता था। आज सन् 1985 की पहली अगस्त का शुभ दिन था।

1 अगस्त 85 को 'हेमल' का जन्म हुआ। हेमल की मां नेगली के समीप रहने पर भी हमें व्यर्थ ही उसकी चिंता सताती रहती थी। नेगल जब दस दिन का था तब से हमने उसे पालपोस कर बड़ा किया था। उस समय उसकी मां नहीं थी। अब तो नेगली खुद ही अपने बच्चे के पास हाजिर है। फिर भी हम चिंता कर रहे हैं, यह बात जरूर कुछ अजीब लगती है। लेकिन यह सब इसलिए कि हम प्यार के दीवाने हैं।

पाठक परिचित ही हैं कि नेगल-नेगली के इस घर में तीन खोलियां हैं। बीच वाले कमरे में, जो भले ही जरा छोटी जगह हो, एक कोने में पानी से भरा बड़ा सा हौज है। वह खोली प्रायः बंद ही रहती थी। दूसरे और तीसरे कमरे के बीच लोहे का सरकने वाला दरवाजा है जो बाहर से बंद किया जा सकता है। पीछे का तीसरा कमरा बाद में बनाया गया है जो अधिक हवादार है। उसकी छत जाली की है जिससे उसमें काफी धूप आने की सुविधा रहती है। यहीं नेगली के लिये लकड़ी का प्रसूति-कक्ष बनाया था। साथ ही, हर कमरे के लिये अलग-अलग प्रवेश द्वार भी हैं। हम नेगली को बीच वाले कमरे में बंद करते और तीसरी खोली में जाकर उसके शावक को गुफा से बाहर निकाला करते और देखते। नेगली बीच की लोहे की जाली वाली खिड़की में बैठकर हमें देखती रहती। वह गले से गुर्राने की आवाज निकाल कर अपनी नाराजगी भी प्रकट करती थी। लेकिन उसे गुस्सा नहीं आता था, यह निश्चित है। हमारे कमरे से बाहर निकलने से पहले ही नेगली तुरंत भीतर जाकर इस बात की तसल्ली कर लेती थी कि उसका बच्चा हेमल ठीक है। एक सप्ताह बाद तक नेगली हेमल के पास गुफा में ही रहती थी। एक दिन हम बीच का दरवाजा खुला रखकर, बीच वाले कमरे में बातें कर रहे थे। गुफा से बाहर निकलकर नेगली हमें देखती रही। क्या हमारा कमरे में आने का विचार है, इस बात का वह अंदाज ले रही थी। मैंने यूं ही कहा, "नेगली! छवा कैसा है, जरा दिखा न!" नेगली तुरंत गुफा में गयी और बच्चे की गर्दन से पकड़ कर बाहर ले आई तथा मुंह ऊपर उठाये खड़ी रही। शावक उसके मुंह में ही लटक रहा था। हम अत्यंत आश्चर्यचकित होकर उसे देखते रहे। फिर वह मुड़कर गुफा में चली गयी और हेमल को अंदर रखकर बाहर आ गयी।

नेगली को हमारी बातें इतनी समझ में आ रही थीं? बच्चा दिखा दिया, अब किसी को अंदर जाने की आवश्यकता नहीं है—ऐसा ही उसका आशय रहा होगा, ऐसा समझकर हम हंसते हुए वहां से बाहर निकल आये।

सबसे बुरा हाल तो बेचारे नेगल का था। नेगली को हम सुबह थोड़े समय के लिये उसके साथ पहले कमरे में रखते थे। बीच वाले कमरे में भी वह आ सकता था। लेकिन तीसरे अंतिम कमरे में हेमल के पास वह नहीं जा पाता था। रात भर नेगली हेमल के पास

ही रहती थी। इस अंतिम कमरे में क्या है, नेगल नहीं समझ पा रहा था। वह हमेशा हक्का-बक्का हो उधर देखता रहता। उसके सामने ही नेगली को बंद कर हम दोनों को उस कमरे में जाते हुए भी उसने देखा था। जब हम वहां जा सकते हैं तो वह क्यों नहीं? इस बात की चिढ़ उसके चेहरे पर देखते ही हम हंस देते। हमारे हंसने पर वह रूठ जाता। दोपहर में हम लोग जब उसके पास जाते तो वह उस बात की अपनी नाराजगी जाहिर करता।

दसवें दिन नेगली के हेमल के पास रहते हुए पहले प्रकाश और उसके पीछे मैं अंदर गया। हेमल अब पेट के बल न घिसटते हुए अपने चारों पैरों पर चलकर गुफा के बाहर आने लगा था। तीन दिन पहले उसकी आंखें भी खुल चुकी थीं। नेगली तुरंत प्रकाश की ओर गयी। प्रकाश ने उसकी गर्दन थपथपायी तो वह प्रकाश का हाथ चाटने लगी। उतने में ही उसकी मां क्या कर रही है, यह देखने हेमल बाहर आने लगा। मैं हेमल को देख रहा था तभी एकदम नेगली झपटकर मुझ तक आ गयी। प्रकाश और मेरे "नो नो" कहते ही वह शांत हो गयी। मारे डर के मेरा सीना धक-धक कर रहा था। मुझ पर भी प्रकाश जैसा विश्वास रखने के लिए नेगली तैयार नहीं थी। यही बात हमला करके वह मुझे समझा रही थी। प्रकाश यदि साथ में हो तो मेरे वहां रहने पर उसे कोई आपत्ति नहीं थी। बाद में फिर उसने मेरी ओर खास ध्यान नहीं दिया। नेगली ने जरा गुर्राते हुए दबी हुई आवाज निकाली। हेमल बिना मुड़े ही पीछे-पीछे खिसकते हुए अदृश्य हो गया।

पंद्रह दिन होने पर भी नेगली अपने शावक को केवल दूध ही पिलाती रही। वह उसे गोश्त नहीं खाने देती थी। हम मांस के बारीक टुकड़े कर उस शावक के लिये डालते थे, लेकिन वह नेगली अपने छवे को खाने नहीं देती थी। वह स्वयं ही खा जाती थी। इतना ही नहीं, यदि बच्चे ने मांस को केवल मुंह ही लगाया हो तो उसे भी वह चाट कर साफ कर देती थी। हेमल कब गोश्त खाने लगेगा इसके लिये हम बहुत आतुर थे। फिर हम नेगली के लिए बनाया मांस का कटोरा उसी अंतिम कमरे में रखने लगे। उम्मीद यह थी कि शावक कभी खुले में आता ही होगा। वह यह खुराक खाये, इसी के लिए हमने यह प्रयोग किया था। उसके कमरे में गोश्त रखकर हम वहीं बैठे रहते। मगर नेगली गुर्राकर उसे गुफा से बाहर नहीं आने देती थी। वह शावक भी बहुत शरारती था। वह मां की डांट खाने पर भी अंदर नहीं जाता था। हम दोनों को वह अब पहचानने लगा था। हम कोई पराये नहीं है, यह बात शायद नेगली ने उसे समझा दी होगी। पहले इतने दिनों तक खुराक खाने में नखरे दिखाने वाली नेगली अब गोश्त का कटोरा चट कर जाती। हम भी कुछ कम नहीं थे। दूसरे दिन गोश्त के बारीक टुकड़े कर हम अंदर ले गये। नेगली अपने कटोरे से गोश्त खा रही थी। हेमल के पास आने पर प्रकाश उसे गोश्त के टुकड़े देने लगा। हेमल उन टुकड़ों को बड़े आनंद से खा रहा था। लेकिन नेगली का उधर ध्यान जाते ही वह अपना

खाना छोड़कर प्रकाश के पास आ गयी। उसे शंका हो गयी थी। प्रकाश ने गोश्त के टुकड़े मुट्ठी में छिपा लिये। नेगली अपने बच्चे को मुंह में उठाकर एक ओर ले गयी। हम वहीं बैठे खेल देख रहे थे कि पीछे कुछ आवाज होने पर हमने उधर देखा। नेगल बाबा बीच की खिड़की में बैठकर सारा तमाशा देख रहा था। वह अंदर आने की कोशिश कर रहा था। हेमल को शायद उसने पहली बार देखा था। उसकी दृष्टि में आश्चर्य था। नेगली एक ओर बैठी थी और हेमल उससे खेल रहा था। खेलते-खेलते मां की नजर बचाकर वह प्रकाश की ओर आने लगा। इस पर नेगली ने बैठे-बैठे ही उसे अपने पंजे से एक थप्पड़ लगा दिया। हेमल दूसरी ओर जा गिरा। हम लोग हंस दिये। नेगली ने गुस्से से हमारी ओर देखा। "मेरा बच्चा है। उसके खाने-पीने का मैं देख लूंगी, तुम्हारे बीच में आने की कोई जरूरत नहीं है।" वह स्पष्ट रूप से हमें यह जताना चाहती थी। हेमल ने थोड़ी देर तक अपने अगले पंजे से अपना मार खाया मुंह रगड़ा फिर वह वहां से चल दिया। हेमल बिलकुल अपने बाप का अनुकरण कर रहा था। नेगल भी स्वभाव से बहुत नटखट था। उसका बच्चा भी उसी की तरह था। हमारे और अपने बीच अपनी मां को देख वह अपना मोर्चा दूसरी ओर रखे गोश्त के कटोरे पर ले चला। नेगली बिलकुल शांत बैठी थी। लेकिन हेमल ने कटोरे से गोश्त का एक बड़ा टुकड़ा बड़े कष्ट से बाहर निकाला। यह देख नेगली तुरंत ही वहां गयी। उसने वह मांस का टुकड़ा हेमल के मुंह से छीनकर खुद खा डाला। अब क्या सजा मिलने वाली है? इस चिंता में बैठे हम देख रहे थे। उसने हेमल को गर्दन से पकड़कर उठाया और हमारे पास लाकर बैठ गयी। उसने अपने अगले दोनों पैरों के बीच में हेमल को रोके रखा। हेमल भी पीठ के बल लेटकर मां से खेलने का अभिनय कर रहा था। प्रकाश अपने मुंह से आवाज कर उसे अपने पास बुला रहा था। आवाज सुनते ही हेमल के साथ नेगली भी सावधान हो गयी। हम यह सब उसके कानों की हलचल से समझ गये थे। हेमल अब गोश्त का स्वाद अच्छी तरह जान गया था। उसके छोटे-छोटे नुकीले दांत अब गोश्त खाने को बैचेन हो रहे थे। खेलते-खेलते वह सीधे ही प्रकाश की ओर चल दिया। उसने दो कदम ही बढ़ाये थे कि उतने में नेगली ने अपना एक पैर उठाकर हेमल को अपने पंजे के नीचे दबाया। मैं नेगल-नेगली की ताकत से अच्छी तरह परिचित था। हेमल उस पंजे के दबाव से कभी भी छूट नहीं सकता, इसका मुझे यकीन था। हेमल बेचारा पंजे के नीचे से निकलने की जी तोड़ कोशिश कर रहा था। नेगली शांति से उसका हाथ पैर मारना देख रही थी। नेगली पर मुझे इतना गुस्सा आया जितना पहले कभी नहीं आया था। मां बनते ही वह स्वयं को बड़ी सयानी समझने लगी है। लेकिन क्या वह यह भूल गयी कि जब वह छोटी थी तब हमीं ने उसे लाड़ प्यार से बड़ा किया था। इसीलिए आज वह मां बन पायी है?

प्रकाश ने बैठे-बैठे ही अपने हाथ में रखे गोश्त के टुकड़े मेरे हाथ में खिसका दिये।

वह वहां से उठ खड़ा हुआ। नेगली ऐसा सोच रही होगी कि वह अब हेमल को उसके पंजे से छुड़ा लेगा। लेकिन प्रकाश वैसा कुछ न करते हुए वहां से उठकर सीधा लकड़ी की गुफा की छत पर जा बैठा। प्रकाश उधर क्यों गया, यह समझ न आने से नेगली हक्का-बक्का हो गयी। इस हैरानी की स्थिति में वह दौड़कर प्रकाश के पास गयी और उससे खेलने लगी। उसकी गोदी में लेट गयी। हेमल को जरा देर से यह ध्यान आया कि वह अपनी मां के पंजे से छूट गया है। फिर पैर लंबे कर उसने अंगड़ाई ली और सीधा दौड़कर मेरे पास आ गया। वह शायद गंध से जान गया था कि प्रकाश ने गोश्त के टुकड़े मुझे दिये हैं। हेमल को मैंने अपने पास लिया और मांस का एक-एक टुकड़ा उसे देने लगा। फिर तो वह गोश्त के लिये झगड़ने लगा। मैं उसे खिलाने के मूड़ में था। यह खेल हमें इतना महंगा पड़ेगा, इसकी हमें कल्पना नहीं थी। चुपचाप खाना हेमल का स्वभाव ही नहीं था, नेगल का बच्चा जो ठहरा। वह जोर-जोर से आवाज करने लगा। गोश्त मिलने का आनंद प्रकट कर रहा था शायद।

मैंने पहले प्रकाश की आवाज सुनी या नेगली ने मुझे पहले नीचे गिरा दिया, यह बता पाना कठिन है। हेमल की आवाज सुनकर नेगली सावधान हो गयी थी। मैं हेमल को गोश्त खिला रहा हूं, देखते ही वह तीर की तरह मेरी ओर दौड़ी। मुझे सावधान करने के लिये प्रकाश ने आवाज दी। लेकिन उसके पहले ही नेगली ने मेरी पीठ पर जोर से थप्पड़ मारा था। मेरे हाथ में रखा गोश्त खाकर वह उस हाथ की ओर क्रोध से देख रही थी। मैं मन में बहुत घबराया हुआ था। मैंने हाथ से उसकी गर्दन को खुजलाया। फिर कुछ देर बाद उसकी आंखो से क्रोध दूर हुआ। लेकिन नाराजगी नहीं गयी थी। अब वह हेमल की ओर मुड़ी। इतनी देर से यह सब क्या हो रहा है, यह न समझ पाने के कारण बेचारा हेमल, और गोश्त पाने की आशा से बुद्धू जैसा वहीं खड़ा था। नेगली ने बड़ी क्रूरता से हेमल को ऐसा थप्पड़ रसीद किया कि वह तीन पलटिया खाकर गिर पड़ा। डरकर वह म्यांव म्यांव चिल्लाने लगा। उसके बच्चे को कब क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, यह वह तय करेगी, यह बात नेगली ने एक बार फिर हमें और अपने बच्चे को स्पष्ट रूप से बता दी थी। हमारी चतुराई के कारण हेमल को अब अधिक मार न पड़े, यह सोचकर हम उठे और बाहर आ गये। यदि हेमल जल्दी गोश्त खाने लगे तो वह मां का दूध कम पियेगा और नेगली की तबीयत भी सुधरेगी। प्रसूति के बाद से नेगली कम खा रही थी और बच्चे के कारण और दुबली होती जा रही थी, इसलिए हम यह चाह रहे थे। यह सब उसी के भले के लिए किया जा रहा है, यह हम किस भाषा में उसे समझाते? जंगल में होती तो वह क्या करती? ऐसा सवाल अन्य लोग कर सकते हैं। लेकिन सही बात यह है कि इस प्रकार का विचार हम नहीं कर सकते।

जंगल में नर का अपने शावक से कोई सरोकार नही होता है। यहां पर क्या तरीका

अपनाया जाये, हम यह समझ ही नहीं पा रहे थे। नेगल बीच वाली खिड़की से हेमल की ओर बड़े अजरज से देखता रहता था तथा जी जान से उस कमरे में जाने का प्रयास करता था। बीस दिन होने पर भी नेगल का हेमल की ओर से ध्यान कम नहीं हुआ। हेमल से मिलने पर नेगल उसे कष्ट तो नहीं देगा? हमें ऐसा लगता तो था कि वह नहीं देगा। लेकिन इस बात पर मन पक्का भरोसा नहीं कर रहा था। प्रकाश ने पीठ पर उठाकर पिछली बार उसका वजन किया था, तब वह उनसठ किलो का था। उस बात को अब डेढ़ साल हो चुका था। अब नेगल को हम दोनों मिलकर भी उठाना चाहें तो भी मुश्किल था। वह कम से कम सत्तर किलो का हो गया होगा, ऐसा हमारा अंदाज था। उसकी शैतानी भी अब बढ़ गयी थी। मजाक में उसके द्वारा दिये गये एक धक्के से संभलना अब मेरे लिए कठिन हो रहा था। अनजाने में कहीं चोट लग जाने का भी डर था। नेगल को हम लोग रात में हर रोज अगले कमरे में अकेला रखते थे। हेमल-नेगली के लिये पिछले दो कमरे थे। चार फुट चढ़कर नेगल की बीच वाले कमरे में आने की संभावना नहीं थी। रोज सुबह बीच वाले कमरे में आने का दरवाजा खोलने से पहले ही तीसरे कमरे की ओर बीच वाला दरवाजा बंद कर लेते थे। यह दरवाजे बाहर से बंद करने की व्यवस्था होने से सफाई करने वाले वैसा रोज ही किया करते थे। एक बार नेगल के बीच वाले कमरे में बंद हो जाने पर वे अगला कमरा साफ कर सकते थे। तुकाराम 20 अगस्त को अगला कमरा साफ कर रहा था, तब मैं पीछे के दरवाजे से आखिरी कमरे में गया। हेमल क्या कर रहा है, मेरा यह देखने का इरादा था। लेकिल हेमल गुफा के बाहर नहीं था। वह गुफा में है, यह समझकर मैं आवाज देने लगा। मैं उसे गोश्त खाने को देता था। मेरी आवाज वह पहचानता था। दो-तीन आवाज देने पर भी वह जब बाहर नहीं निकला तो मैं बीच वाले कमरे के दरवाजे के पास आ गया।

बीच वाले कमरे में नेगली पानी की टंकी के किनारे पर बैठी थी। इस कमरे में लकड़ी का एक पलंग रखा हुआ था। नेगली पलंग के नीचे क्यों देख रही है, इस उत्सुकता से मैंने नीचे झुककर देखा तो मुझे अपनी आंखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। मैंने फिर एक बार ऊपर देखकर पहले यह निश्चित कर लिया कि नेगली ही ऊपर पानी की टंकी के किनारे बैठी है। फिर देखा कि नेगल लकड़ी के पलंग के नीचे बदन लंबा पसारे हुए लेटा है और उसका अपना बच्चा हेमल मजे से उसकी पीठ पर सवार उसके कान पकड़ने का प्रयास कर रहा है। हमने किताबों में पढ़ा था कि जंगल में शेरनी अपनी बच्चों के रखने का स्थान हर पंद्रह दिनों में बदलती रहती हैं, लेकिन यहां इतना सुरक्षित स्थान होने पर भी नेगली रात में बच्चे का स्थान बदल देगी, ऐसा कभी मन में सोचा ही नहीं था। चलो, नेगल की अपने बच्चे से भेंट हो गयी थी और अब उस विषय में चिंता का कोई कारण नहीं रहा था। मैं यह सोचते हुए वहीं खड़ा था और मेरी असावधानी का एक भी मौका

नेगल क्या खाली जाने देता? मुझे डराने के लिए हमेशा की तरह वह मेरे ऊपर झपट पड़ा। मैं असावधान था इसलिये एकदम चौंक गया। वह बहुत खुश हुआ। लेकिन इसी चक्कर में उसके बदन पर खेल रहे हेमल का बुरा हाल हो गया। पहले तेजी से वह नेगल के साथ आगे आ गया और बीच में कहीं उसकी नेगल के शरीर की पकड़ छूट गयी और वह गिरकर जमीन से जा टकराया। यह देखकर नेगली दौड़ते हुए अपने छवे के पास आ गयी और प्यार से उसे चाटने लगी। फिर जोर से गुर्राते हुए नेगल के ऊपर दौड़ पड़ी। नेगल अपनी पूंछ ऊंची उठाये दूर कूदा और अगले कमरे के दरवाजे की ओर लपका। बाहर से मैंने पिछले वाले कमरे का दरवाजा खोला क्योंकि अब उसे अलग बंद रखने का कोई लाभ ही नहीं था। नेगली ने बच्चे को गर्दन से मुंह में पकड़कर उठा लिया। एक ही छलांग लगाकर वह हेमल को लेकर पिछले कमरे की गुफा में चली गयी। उसके पीछे-पीछे ही नेगल भी उसी कमरे में आ गया। नेगल ने एक बार गुफा में झांका और फिर वह बड़े दिनों बाद इस कमरे में आने का आनंद प्रकट करते हुए उछलने-कूदने लगा।

अब हेमल बड़ा हो रहा था। खाना खाते समय वे तीनों और हम दोनों एक साथ रहने लगे थे। फिर भी एक महीने तक नेगली ने हमें हेमल को खाना नहीं खिलाने दिया। फिर जब हेमल बार-बार नेगली से दूध पीने की जिद्द करने लगा, तब नेगली तंग आ गयी। हम अब हेमल के खाने के लिये एक अलग कमरे में गोश्त ले जाने लगे। हेमल नेगल से अधिक तेजी से बढ़ रहा था। एक ही महीने में उसका वजन, जन्म के समय के वजन के चार गुना अर्थात दो किलो हो गया था। नेगली ने इतना वजन पाने के लिये चार महीने लगा दिये थे। हेमल जब तक हमारे यहां था तब तक हम उन्हें लेकर तीन बार जीप से नदी पर नहलाने ले गये और दो घंटे आराम से रेत पर खेलकर वापस लौट आये थे। वैसे पहले नेगली वहां से वापस लौटना नहीं चाहती थी और वापस लौटने का कहने पर तुरंत नाराज हो जाती थी। लेकिन अब हेमल का साथ होने पर वह झट से जीप में आ जाती थी। इसके विपरीत, हम हेमल को अधिक लाड़-प्यार देते हैं, इस बात पर नेगल हमसे नाराज रहता था। उस नाराजगी का प्रसाद कभी-कभी मुझे मिलता रहता था।

एक महीने के बाद, सुबह का खाना हो जाने के बाद, हेमल को अब पिंजरे में बंद न रख उसे प्रकाश के घर में खुला ही रखते थे। दिनभर वहां अनु, मोक्षा, आरती और चिंकू के साथ वह उधम करता रहता। इस विछोह से नेगली थोड़ी बैचेन जरूर हो जाती थी। लेकिन अब हमें और नेगली को हेमल से दूर रहने की आदत डालनी ही थी। हम सबने हेमल को सोमनाथ प्रकल्प में स्थानांतरित करने का निश्चय किया था। सोमनाथ में अब हमारी पहले की मादा तेंदुआ 'रूपी' नहीं थी। उनकी वहां तेंदुआ रखने की इच्छा थी और हमारे यहां तेंदुओं की संख्या बढ़ने से उन्हें पेटभर खिलाना हमारी सीमा के बाहर हो रहा था। हेमल भी बड़ा हो रहा था और साथ ही उसकी शरारतें भी बढ़ रही थीं।

दिसंबर 85 से अप्रैल 86 तक मैं 'भारत जोड़ो अभियान' में सम्मिलित होने के लिये हेमलकसा से बाहर रहने वाला था। छह मास तक नेगल-नेगली से दूर रहना बड़ा कष्टदायक लग रहा था। लेकिन और कोई चारा नहीं था। लेकिन खुशी की बात यह थी कि प्रकाश इन्हें छोड़कर कहीं जाने वाला नहीं था। यह भी शंका में मन थी कि मेरे वापस लौटने पर नेगल-नेगली मुझे पहचानेंगे भी या नहीं। फिर भी उनसे दूर रहना अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने 8 दिसंबर 85 को सुबह पिंजरे में जाकर नेगल-नेगली से विदा ली। फिर हेमल को साथ लेकर मैं और प्रकाश सोमनाथ प्रकल्प पर गये। वहां हेमल के रखने की ठीक से व्यवस्था होने पर मैं अपने अभियान के लिए चल दिया।

'भारत जोड़ो अभियान' के दौरान ही मुझे फरवरी 86 में यह अति दुखदायी समाचार मिला कि 20 जनवरी 86 के दिन सांप काटने से नेगल की मृत्यु हो गयी है। मैं बहुत रोया। साथ ही मैं मन से अभिभूत हो गया था। नेगली का अब क्या होगा, मुझे इसकी बड़ी चिंता होने लगी थी। प्रकाश के मन की हालत केवल मैं और नेगली ही जान सकते थे। बाद में इस विचार को ही मन में न आने देने का मैं प्रयास करता रहा, लेकिन वह संभव नहीं हो पा रहा था।

अप्रैल 86 के अंत में अभियान की समाप्ति पर मैं हेमलकसा लौट आया। रास्ते में ही इस खबर से बहुत खुशी हुई कि अब नेगली को राजा नाम का नया साथी मिल गया है। हेमलकसा आने पर मैंने जानबूझकर नेगली से सबसे पहले मिलना टाल दिया। पहले हिरन, नीलगाय, रानी, भालू, राजू बंदर, भैसा इन्हें मिलने के बाद अंत में मैं और प्रकाश नेगली के पास गये। नये तेंदुए राजा को आगे के बड़े कमरे में बंद कर हम बीच वाले कमरे में गये। मुझे देखकर नेगली तुरंत पास आ गयी और बड़ी ही करुण दृष्टि से मुझे देखती रही। मुझ पर क्या बीत रही थी, यह उसे अलग से बताने की आवश्यकता नहीं थी। सामने ही बीच की जाली से राजा मुझे उत्सुकता से निहार रहा था। सलाखों के बीच से हाथ डालकर प्रकाश उसे लाड़ दुलार कर रहा था। मैंने मन में जैसा सोचा था उससे राजा बहुत बड़ा था। दूध के बड़े दांत टूट कर अब वहां पक्के दांत आ चुके थे। राजा करीब डेढ़ वर्ष का होगा, ऐसा लग रहा था। दोनों के ही मन में एक ही बात होने पर भी मैं और प्रकाश 'नेगल' के विषय में बात करना टाल रहे थे। यह बात हम दोनों के साथ-साथ नेगली भी जानती थी।

मैं 8 दिसंबर को नेगल से मिलकर गया था। मैंने यह सोचा भी नहीं था कि उसके साथ मेरी वह अंतिम भेंट होगी। उस समय मुझे देखने वाली उसकी आंखें अभी भी मेरे सामने आ जाती हैं। प्रकाश ने बताया कि दुर्भाग्य से जिस दिन नेगल मरा, उस दिन वह बाहर गया था। सांप काटने पर तुरंत उसका इलाज नहीं हो पाया। प्रकाश के वहां रहने पर उसे बचाने के कुछ प्रयास अवश्य होते। अब तो ये सब अटकलें ही हैं। उस समय

आल्लापल्ली के जिला वनाधिकारी के यहां एक नर तेंदुआ था। उसे उन्हें घर में रखना कठिन हो रहा था। इसलिये वे उसे किसी जानवर संग्रहालय में रखने की सोच रहे थे। प्रकाश के कुछ पूछने से पहले ही वे प्रकाश को वह तेंदुआ देने का निश्चित कर चुके थे। 26 जनवरी 86 को उन्होंने खुद ही राजा तेंदुए को हमारे यहां पहुंचा दिया। तात्पर्य यह कि नेगली केवल सोलह दिन ही अकेली रही। आल्लापल्ली में राजा, पिंजरे में बंद रहता था। थोड़े समय के लिये उसे सांकल और मोटी रस्सी बांध कर बाहर निकालते थे। जब हमारे यहां आया, तब वह पूरा ग्यारह महीने का हो चुका था। प्रकाश के साथ कुछ ही घंटों में उसकी दोस्ती हो गयी। दो ही दिनों में नेगली ने भी अपने नये साथी के रूप में उसे स्वीकार कर लिया।

वन्य जंतुओं से कैसा व्यवहार करना चाहिए यह सीखना हो तो प्रकाश से ही सीखा जा सकता है। इतने बड़े तेंदुए से वह कितनी आसानी से तुरंत दोस्ती कर लेता है, यह देख कर कई लोगों को लगता है कि उसे कुछ दैवी शक्ति प्राप्त है। लेकिन वह जिस सहजता, सरलता से जानवरों से प्यार करता है, उसी के फलस्वरूप जानवर, कितना भी क्रूर क्यों न हो, प्रकाश को सरलता से अपना आत्मीय मान लेता है। यही तर्क मुझे सच लगता है। कम से कम मेरा तो इस निष्कर्ष पर पक्का विश्वास है। आज चौदह वर्षों से मैं उसके साथ-साथ जानवरों के साथ रह रहा हूं। लेकिन मैं इतनी सहजता से इन प्राणियों से हार्दिक प्यार नहीं कर पाता, यह भी सत्य है। इन जानवरों के साथ कैसे रहा जाए, इस बारे में वह मुझे समय-समय पर समझाता रहा है। नेगल-नेगली के साथ रहते हुए मेरा उन पर जो विश्वास था उसी कारण मैं निश्चिंत रहता था। मैंने बाद में राजा से दोस्ती करने का प्रयास किया। लेकिन मेरे प्रयास में कुछ कमी जरूर रही। पिंजरे में जाते ही मुझे पहले नेगल याद आ जाता था और उस क्षण मेरी उपस्थिति के बारे में राजा कुछ शंकित हो जाता। यह मुझे उसकी दृष्टि से ही दिखाई पड़ता। यह बात मुझे खलती थी। मैं हर बात में राजा की नेगल से तुलना करता रहता था। यही मेरी बहुत बड़ी भूल थी। अब अन्य लोगों के समान मैं भी पिंजरे के बाहर रहकर ही राजा से प्यार करने वालों में शामिल हो गया हूं।

राजा और नेगली आपस में प्यार से साथ रहते थे। नेगल के मरने के बाद नेगली एक वर्ष में दस बार मस्ती में आयी। लेकिन राजा के वयस्क न होने से उसका कोई लाभ नहीं हुआ। अब दो तेंदुओं के लिये गोश्त काफी नहीं होता था। हम घने जंगल में घूमकर मरे हुए जानवर को ढूंढते और उसका मांस काट लाते। राजा से नेगली 17 मार्च 1987 को गर्भवती हुई। 19 जून को प्रसूति होने पर उसने एक नर और एक मादा शावक को जन्म दिया। अब हमने आखिरी कमरे में बनाई हुई लकड़ी की गुफा हटा कर उस स्थान पर एक पक्की सीमेंट की गुफा बना दी थी। नेगली का व्यवहार पहले की तरह ही था।

राजा के न होने पर नेगली के सामने मैं उसके शावक से खेल सकता था।

तीन माह का होने पर मादा शावक को हेमल के साथ रहने के लिये सोमनाथ भिजवा दिया। दूसरा नर शावक वनसंरक्षक श्री अंबासकर के घर पर बड़ा होने के लिए चंद्रपुर भेज दिया। हम राजा को वनविभाग से लाये थे। उन्हें एक नर शावक वापस किया, इस बात का हमें संतोष हुआ था। लेकिन यह संतोष अधिक समय के लिये नहीं रहा। राजा तेंदुआ ही शासन को वापस करें या पांच हजार रुपये की रायल्टी दें, ऐसा आदेश हमें सरकार से मिला। बहुत ही मानसिक पीड़ा का अनुभव हुआ। राजा तेंदुआ जब तक वन-अधिकारी के यहां बड़ा हो रहा था, जब तक उसके पालन-पोषण का सारा खर्चा वन विभाग कर रहा था। लेकिन हमारे यहां आने के दिन से हमे शासन से कोई भरण भत्ता नहीं मिल रहा था, न हमने ही कभी मांग की। और फिर एक तेंदुआ भी हमने शासन को दे दिया था। हमने राजा को वापस नहीं भेजा, न रायल्टी का एक पैसा ही जमा किया। एक बार तो राजा को ले जाने के लिए चंद्रपुर तक पिंजरा भी आ गया। सौभाग्य से वन विभाग में भी कुछ अच्छे लोग हैं। फिर प्रकाश पर मुकदमा तक चलाने की बातें चलीं। दो साल बड़े ही मानसिक पीड़ा में गुजरे। भूतपूर्व वनमंत्री श्री शिवाजी राव मोघे, मंत्री वामनराव गड्डमवार, विधायक श्री टेंम्भुर्णे ने हमारी ओर से पैरवी की, तब शासन की ओर से पत्र आने बंद हुए। अभी तक तो कोई मुकदमा दायर हुआ नहीं है, लेकिन तलवार अभी भी गर्दन पर लटकी नजर आती है। राजा जितना तीन वर्ष की आयु का नर तेंदुआ वन विभाग वापस जंगल में तो छोड़ नहीं सकता, यह सभी जानते हैं। वह तो उसे किसी जानवर संग्रहालय में ही रखेंगे। फिर यहां भी वह भली प्रकार से पल रहा है। इतना ही नहीं, उससे और नेगली से प्रतिवर्ष होने वाली संताने भी शासकीय जायदाद ही हैं। हम यह भी मानते थे और शासकीय आदेशानुसार हम किसी भी जानवर संग्रहालय को शावक भी देने के लिए आतुर थे। वैसा कोई कानून नहीं है। वर्तमान कानून यदि पशुसंवर्धन प्रोत्साहित करने वाला होता तो हमारे प्रयासों से बढ़ने वाली तेंदुओं की संख्या पर शासन ऐसी रोक लगाने का प्रयास नहीं करता। हमारे इन सभी प्रयासों को डब्ल्यू डब्ल्यू एफ अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने विश्व वन्यपशु कोष से सहायता दी है। इस विश्व संगठन ने 'जंगली जानवरों का अनाथालय और सहायता केंद्र' नाम से हमें मान्यता प्रदान की है।

सन् 1988 चल रहा था। राजा और नेगली आनंद से पल रहे थे। हमारी बारह साल की लाड़ली रानी अचानक बीमार हो गयी। उसकी खुराक कम हो गयी। उसे लगातार पतले दस्त हो रहे थे। उसका इलाज भी चल रहा था। हमारा किसी काम में मन नहीं लग रहा था। आखिर 6 अप्रैल को उसने आखिरी सांस ली। उसे इज्जत के साथ ठीक ढंग में दफनाया गया। इस रानी ने ही हमें सिखाया था कि यदि जंगली जानवर के साथ प्यार का व्यवहार किया जाये तो वे हमेशा प्यार ही प्यार लौटाते हैं। यह उसके प्यार भरे व्यवहार का ही

परिणाम था कि आगे चलकर तेंदुए के समान हिंसक पशु के साथ भी खुले माहौल में विचरण करने का साहस हमें मिला। अपने बचपन में रानी ने हमें नोंचा, हमें काटा, हमें चोट पहुंचाई। वह अब नहीं रही, लेकिन उन जख्मों-खरोंचों के निशान हमारे इस शरीर पर अंत तक बने रहेंगे।

हमने चंद्रपुर के श्री अंबासकर को जो नर तेंदुआ शावक दिया था, उसे नागपुर स्थित 'सेमिनी हिल्स' में रखा गया। जो लोग वहां वन्य प्राणी देखने गये उन्होंने उस तेंदुए को वहां देखकर हमें समाचार दिया। यदि हमारे द्वारा दिये गये तेंदुए को वन विभाग एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचा देता है तो उसकी सूचना देने का उन पर साधारण सा बंधन भी नहीं है। जंगल में अनाथों की तरह पलने वाले अनगिनत जानवरों के बच्चे कहां जाते हैं और उनका क्या होता है, यह कभी कोई जान भी नहीं पाता। उस बारे में कोई पूछताछ भी नहीं होती। यदि वन विभाग ठीक तरह से उनका पालन पोषण नहीं कर पाता और हमारी तरह के कुछ व्यक्ति या संस्थाएं अपने खर्च से उन्हें पाल पोसकर बड़ा करने को तैयार हैं तो फिर उस कार्य में रोड़े क्यों अटकाये जाते हैं? जंगली जानवरों और कुदरत से मुहब्बत करने वाले व्यक्ति और संस्थाएं इसके लिए अपनी आवाज क्यों बुलंद नहीं करते?

रानी भालू के मर जाने का दुख हम इस खबर की वजह से बहुत जल्दी भूल गये कि पंजाब कृषि विद्यालय ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास कर उनके नागपुर के महाराज बाग जानवर संग्रहालय से सिंह का एक शावक हमें देना निश्चित किया है और हमें इसकी सूचना भी भेजी है। सिंह का शावक मिलने के समाचार से हमें बहुत आनंद हुआ। वह सिंह का शावक एकदम छोटा न होकर पांच महीने का था। यह बात जरा खटक रही थी। लेकिन हमारी मजबूरियां थीं। पांच महीनों तक मां और चार भाई-बहनों के साथ पला हुआ यह नर सिंह हमें कहां तक अपनायेगा? और हम उसे एक तेंदुए के साथ रख पायेंगे या नहीं, यह हमारी समझ में नहीं आ रहा था। केवल एक सिंह का शावक लाकर उसे अन्य जानवर संग्रहालयों के समान बड़ा करना हमारा कभी उद्देश्य नहीं रहा और आज भी नहीं है। वह तेंदुए के साथ अच्छी प्रकार से बढ़े तो ही अच्छा हो। जंगली जानवर एक साथ रहकर अच्छी प्रकार बड़े होते हैं यह अनुभव से सिद्ध हो चुका था। फिर आगे चलकर हम तेंदुए और सिंह का संकरण कर नयी वंश वृद्धि का प्रयास भी करते। हम स्वयं जीप से नागपुर गये और 30 मई 1988 को पांच माह का नर सिंह शावक साथ लेकर पहले आनंद वन पहुंचे और दूसरे दिन रात में ही उसे लेकर हेमलकसा आ गये।

सिंह का शावक हम पर झपटता नहीं था। हमारे पास जाते ही वह कोने में छिप जाता और हमारे हाथ लगाने का प्रयास करने पर वह हाथ पकड़ने लगता। वह आक्रामक नहीं था। किंतु कुछ शर्मीला और हमारे बारे में शंकित लगता था। इसमें उसकी कोई गलती नहीं थी। पिछले पांच महीनों में उसे अपनी मां और भाई बहनों के सिवा और किसी से

मिलने की आदत नहीं थी। आनंद वन से आते समय हम ग्रेट हाउंड और डाबरमैन जाति के कुत्तों से संकरित पिल्ली भी साथ लाये थे। प्रकाश के घर में जिस कमरे में नेगल-नेगली बड़े हुए थे उसी कमरे में इस सिंह के शावक के साथ इस पिल्ली को रखा और चौबीसों घंटे दोनों को वहां रखने लगे। पहले दो दिनों तक हमारे उस कमरे में जाने पर सिंह का शावक दूर भाग जाता था, लेकिन कुतिया की पिल्ली हमसे खेलती रहती थी। हम घंटों उसी कमरे में रहने लगे। हमें उन्हें अपने साथ रहने की आदत डालनी थी, इसलिये यह अभ्यास करना आवश्यक था। हमने एक लकड़ी की मेज कमरे में रखी हुई थी। हमारे कमरे में जाते ही शावक झट से उस मेज के नीचे जा बैठता। मेज एक कोने में थी। मेरे और प्रकाश के उसके दोनों ओर बैठ जाने पर वह बैचेन होता था। हमारे हाथ लगाने का प्रयास करने पर वह दूसरे कोने में चला जाता। हमारे वहां जाने पर वह और दूसरी ओर चला जाता। कुतिया के साथ होने पर वह शांत रहता है, यह बात ध्यान में आने पर ही हम कुतिया को उसके पास रखने लगे थे। जब कुतिया उससे सटकर बैठती तो हम शावक की पीठ पर हाथ फेर पाते थे।

सप्ताह भर बाद भी शावक के व्यवहार में विशेष अंतर नहीं दिखा। थाली में गोश्त रखने पर वह खाता था। पूरी तरह खुला छोड़ने पर वह क्या करेगा, इसकी पूरी कल्पना न होने से दस दिन बाद भी वह कमरे में ही बंद था। नित्यक्रम कमरे में ही हो रहा था। दिन में बार-बार कमरा धोने का कार्यक्रम हम बिना किसी हिचकिचाहट के कर रहे थे। फिर कुतिया को भी कमरे में छोड़ने पर वह भी वहीं गंदगी करने लगी। यह काफी कष्ट का काम हो गया।

एक दिन पिल्ली को बाहर निकालने के लिए दरवाजा खोलने पर उसके पीछे-पीछे शावक भी बाहर आ गया। हमारे दौड़ने तथा पकड़ने का प्रयास करने पर वह डर जाता या चौंक पड़ता, इसीलिये हम शांति से उसके पीछे हो लिए। कुतिया बगीचे में गयी। शावक भी वहीं गया। वह कुतिया की पिल्ली के पीछे ही जाता रहा। उसने कहीं भी भाग जाने का प्रयास नहीं किया। दो घंटे तक हम भी उन दोनों के पीछे घूमते रहे। अंत में कुतिया को खिलाते हुए वापस कमरे में बुलाने पर शावक भी आराम से उसके पीछे कमरे में आ गया। फिर रोज का उनका यही क्रम हो गया। बगीचे में शावक घंटों खुला ही खेलता रहता। कुतिया को सांकल से बांध रखने पर हम निश्चिंत हो जाते और अन्य काम करते रहते। शावक या तो कुतिया से खेलता रहता या उसके पास में सो जाता था। एक दिन हमारे कुछ विलंब से बगीचे में पहुंचने पर देखा तो शावक नहीं दिखा। पूरा बगीचा ढूंढ़ने पर वह नहीं मिला। वह इस कुतिया को अकेली छोड़ और कहां गया होगा? हम समझ नहीं पा रहे थे। ऐसा क्यों हुआ? प्रकाश ने कुतिया का कान उमेठा। ऐसा करने पर वह कर्कश आवाज में चिल्लाई। वह हमेशा यही करती थी। उसे कुछ खास दर्द नहीं होता था। लेकिन

वह दिखावा अधिक करती थी। उस शावक के कारण इसके भी लाड़ हो रहे थे, इसलिए वह जरा अधिक ही लाड़ली हो गयी थी। कान पकड़ते ही पिल्ली चिल्लाई और तुरंत सिंह का शावक प्रकाश के घर से दौड़ता हुआ बाहर आ गया। यह देखकर हम हंसने लगे। सिंह को बुलाने के लिये यह अच्छी घंटी हाथ लगी थी। बाद में तो सिंह कुतिया के पास न दिखने पर कुतिया का कान उमेठते ही वह जहां भी हो वहीं से दौड़कर आ जाता और हम फिर उसे कमरे में बंद कर देते। अब तो कुतिया भी चतुर हो गयी थी। हमारे कान पकड़ने का प्रयास करते ही वह चिल्लाने लगती। शावक तुरंत दौड़ते हुए चला आता।

शावक को हमारे पास आये एक महीना हो गया था। हमें अब वह अलग से पहचाननें लगा था। वह शरीर से तो पुष्ट हो ही रहा था। हम रोज सुबह उसे घुमाने भी ले जाने लगे। कुतिया सुबह साथ घूमने जाने को तैयार नहीं होती थी। और अगर कुतिया नहीं तो फिर शावक भी नहीं। सड़क पर आने तक कुतिया को सांकल से बांधे रखते। मेरे सुबह पांच बजे प्रकाश के घर पहुंचने के पहले प्रकाश शावक के कमरे में पहुंच जाता। अब वह स्वयं ही प्रकाश के पास आने लगा था। बस कमरे में कुतिया भर होनी चाहिए। सड़क पर घूमने जाते प्रकल्प की सीमा से बाहर जाते ही हम कुतिया की सांकल छोड़ देते। फिर वह शावक के साथ खेलते हुए हमारे पीछे आती रहती। तेरह वर्ष पहले की रानी भालू की याद ताजा हो जाती। उन दिनों नेली हमारे साथ रहा करती थी। हर दिन थोड़ी-थोड़ी दूरी का अंतर बढ़ाते हुए हम महीने बाद दो किलो मीटर दूर तक जाने लगे। घूमने फिरने से सिंह की भूख बढ़ी और तबीयत भी तेजी से सुधरने लगी। अब नया संकट सामने आया। कुतिया बीमार हो गयी। सुबह-शाम वह घूमने जाने को तैयार नहीं होती थी।

नेगली ने 26 जून को तीसरी प्रसूति में दो शावक दिये थे। इधर सिंह बड़ा हो रहा था और साथ ही पिंजरे में तेंदुए के दो शावक बढ़ रहे थे। अभी सिंह को तेंदुए के साथ नहीं रखा था। वे कैसा साथ निभायेंगे, इसकी चिंता थी। अगस्त में कुतिया मर गयी, और सिंह अकेला पड़ गया। नेगली छोटे होने के कारण सिंह को पास फटकने देगी या नहीं, इस बारे में हम शंकित थे। शाम को नेगली के शावकों को बाहर निकाल कर यह देखने का हमने विचार किया कि उनकी सिंह शावक से दोस्ती होती है या नहीं। पूरी सावधानी आवश्यक थी। प्रकाश को जानवरों पर गजब का भरोसा है। ऐसे ही बिना किसी कारण एक दूसरे को और वह भी छोटे शावकों को कष्ट देने के लिये सिंह कोई मनुष्य तो था नहीं। प्रत्यक्ष में उसी विश्वास की विजय हुई। सिंह शावक ने दोनों तेंदुए शावकों की गंध ली और उन्हें चाटने लगा। पहले दोनों शावक जरा सा घबराये, लेकिन थोड़े ही समय में वे सिंह शावक के साथ उसी खुले मन से खेलने लगे।

अब सिंह के शावक को भी हमने तेंदुओं के साथ ही रखना तय किया। पहले हम उसे अकेले ही बीच वाले कमरे में रखने लगे। पीछे के कमरे में नेगली अपने शावकों के

साथ रहती और सामने के कमरे में राजा तेंदुआ। दो-तीन घंटे ऐसा रहने पर उनकी एक दूसरे के बारे में शंकाएं कम हो गयीं। राजा तेंदुआ और सिंह शावक दोनों पहली अगस्त से साथ रहने लगे। पंद्रह दिनों बाद नेगली ने भी सिंह के शावक को स्वीकार कर लिया। अब पांचों एक साथ रहने लगे। हम लोग सिंह शावक को शाम के समय घूमने के लिये बाहर निकालते रहते थे।

इन जंगली जानवरों के कई किस्से बताने अभी बाकी हैं। वैसे तो रोज ही नयी-नयी घटनाएं होती ही रहती हैं। ...लेकिन कहीं तो पूर्णविराम लगाना ही होता है।

विशेष:

1 जुलाई 1989 : मादा मगर के अडों से चार सुंदर बच्चे हमारे दोस्तों की बिरादरी में आ गये हैं।

नेगली, राजा तेंदुआ और डेढ़ वर्ष का सिंह एक ही पिंजरे में बड़े आनंद से रहते हैं। खास बात यह है कि सिंह और मादा तेंदुए का समागम हो रहा है और वह भी राजा तेंदुए की उपस्थिति में।

देखिए, आगे और क्या होता है!

शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रयल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित